पिकाडिली सर्कस

अपने प्रिय पाठकों को

—निमाई

पिकाडिली सर्कस

यह वही हिथरो है।

हिथरो एयरपोर्ट। लोग-बाग इसे लन्दन कहते हैं। कुछ [illegible]। बात दीगर है। दुनिया के तमाम लोग लन्दन ही कहते हैं।

कोई भी एयरपोर्ट अपने नाम से दुनिया के लोगों के द्वारा जाना-पहचाना नहीं जाता। ओरली को पेरिस कहा जाता है, जॉन ऑफ कैनेडी की यादगार ताजा रखने के लिए लैंगेज टैग में यद्यपि जे० एफ० के० लिखा है लेकिन मोटे-मोटे हरूफों में लिखा है न्यूयार्क। या एन० वाई० सी०। तमाम मुल्कों में हर जगह एयरपोर्ट की अपनी पहचान रुसेशिन है। हम लोगों के देश में भी। हवाई जहाज उतरने के पहले दमदम में कितनी ही हवाई जहाज कम्पनियों की परिचारिकाएं उद्घोषणा करती हैं—वि विल बी शॉर्टली लैंडिंग एट कैलकाटा एयरपोर्ट। लोकल टाइम इज टेन पास्ट सिक्स ऐण्ड आउट साइड टेंपरेचर इज फिफ्टीन पॉइन्ट टु डिग्री सेन्टीग्रेड।···

आश्चर्य की बात है। और सिर्फ आश्चर्य की नहीं, दुःख की भी बात है। अपने नाम और गौरव से पहचाने जाने में एक तरह का आनन्द प्राप्त होता है, आत्म तृप्ति होती है। यह आनन्द और आत्मतृप्ति पाने का अधिकार सभी को है। मगर एयरपोर्ट की किस्मत में यह बदा नहीं है। यह बहुत-कुछ हमारे मुल्क की शादी-शुदा औरतों जैसी बात है। सुमित्रा, सुचित्रा, नन्दिता, प्रमीला वगैरह बड़ी बहू, मँझली मामी, गोरा की औरत हो जाती हैं। ज्यादा से ज्यादा मिसेज बैनर्जी, मिसेज घोष या मिसेज सेन।

यह सब बात सोचते ही मुझे प्याली की याद आने लगती है। वह मेरे साथ ही कमला गर्ल्स स्कूल में पढ़ती थी। कितना मीठा नाम है उसका! लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का नाम कितना सुन्दर और काव्यमय होता है! मगर प्याली जैसा सुन्दर और मीठा नाम मैंने नहीं सुना है। देखने में भी वह खासी खूबसूरत थी। हर रोज टिफिन के वक्त और छुट्टी के बाद मैं उसका गाल दबाकर स्नेह के साथ पुकारती, "ऐ प्रिया, प्याली, सुनो।"

मेरी पुकार सुनकर मन ही मन खुश होने के वावजूद शर्म से प्याली का खूबसूरत चेहरा और ज्यादा खूबसूरत हो जाता था। वह चेहरे पर दवी मुसकराहट लिए आगे वढ़कर मेरे पास चली आती और पूछती, "क्या कहना चाहती है ?"

"कुछ भी नहीं, यों ही वुला लिया।" मैं जवाव देती।

स्कूल से निकलने के बाद मैं आशुतोष कॉलेज के मॉर्निङ्ग सेक्शन में भर्ती हो गयी। प्याली ने प्रेसिडेंसी में दाखिला लिया। फिर भी हमारी दोस्ती में कोई उतार नहीं आया। चाहे हररोज न हो, मगर नियमित तौर पर हमारी मुलाकात हो जाती थी। हम गपशप करतीं, टहलने के लिए जातीं और सिनेमा देखती थीं। एक दिन सिनेमा देख-कर घर वापस आने के दौरान उसे जरा अनमनी देखकर मैंने एकाएक पूछा, "लड़के का नाम क्या है ?"

प्याली उस तरह चिहुँक उठी जैसे उसे विजली का झटका लगा हो। "लगता है, पारमिता ने तुझे वता दिया है।"

वरसात के वाद डवरे से मछली पकड़ने की उम्मीद में वहुतेरे छोटे-छोटे लड़के वंसी डालकर वैठे रहते हैं। किसी-किसी को दो-चार पोठी मछली मिल जाती है और किसी को एक भी नहीं। उन्हीं लोगों की तरह मैंने सन्देह के डवरे में छीप डाली थी मगर तत्क्षण इतनी वड़ी रोहू-कातर मछली पकड़ लूँगी, ऐसी उम्मीद न थी। जोरों से हँसी आने के वावजूद मैंने उसे जवरन रोक लिया। गंभीर होकर दुवारा सवाल किया, "नाम क्या है ?"

प्याली ने जल्दी से मेरे हाथ को दवा दिया और वोली, "आज तुझे सव कुछ वताने के ख्याल से ही वाहर निकली हूँ मगर पहले यह तो वता कि तुझे उदयन के वारे में किसने वताया ?"

उस दिन घर लौटने के वाद ही प्याली ने काफी-कुछ वताया था। आखिर में वोली, "एक मजेदार वात कहूँ ?"

"क्या ?"

"उदयन ने भी तेरी ही तरह मुझे प्रिया-प्याली कहकर पुकारना शुरू कर दिया है।"

प्रेसिडेंसी और युनिवर्सिटी का वसन्तोत्सव समाप्त होते ही प्रिया-प्याली भी खो गई। मेटल वॉक्स के जूनियर एक्जिक्यूटिव की गृहस्थी में उसे किसी ने प्याली कहकर नहीं पुकारा। घर-गृहस्थी की सरहद

में प्याली बहू और उसके बाद मिसेज सरकार के नाम से पहचानी जाने लगी।

मैं उस समय कलकत्ते में ही थी। महीने में एक-दो बार उसके घर पर जाती थी। इधर-उधर की बातें करने के बाद कहती, "चाहे जो कहो प्याली, तेरा पति बड़ा ही अरसिक है। बताओ, तुझे वह प्याली कहकर क्यों नहीं पुकारता है?"

प्याली के खूबसूरत चेहरे पर म्लान हँसी उभर आती। बस इतना ही कहती, "अच्छा ही हुआ।"

"क्यों?" मैं बगैर पूछे चुप नहीं रह सकी।

मेरी ओर एक बार ताक कर उसने निगाह सहेज ली और बोली, "यह सब नाम कॉलेज-युनिवर्सिटी तक ही अच्छा लगता है। अब क्या यह सब पोएटिक नाम शोभा देता है?"

बाद में प्याली ने एक दिन कहा था, "अच्छा ही हुआ है। प्रिया-प्याली कहकर पुकारता तो बीते दिनों की ओर ज्यादा याद आती।"

मुझे अच्छी तरह याद है, मेरी और प्याली की उसाँस एक ही साथ निकल आई थी।

इस हियरो एयरपोर्ट पर पहुँचते ही कितनी बातें याद आ रही हैं। याद आती है, विलायत से मेरे प्रथम मिलन की बात। कितने सुन्दर सपने और संभावना लेकर उस दिन हियरो एयरपोर्ट से साक्षात्कार किया था, यह सोचने पर तकलीफ महसूस हो रही है। चाहे लाख हो, हूँ तो आखिर मध्यवित्त बंगाली घर की ही लड़की। लिखने-पढ़ने में भी मैं बिलकुल साधारण थी। इसलिए लन्दन आने का सपना कभी नहीं देखा था। मेरे बजाय प्रिया-प्याली या रंजना जैसी लड़कियों को आना चाहिए था। संभव भी था उनके लिए। वे ऑक्सफोर्ड कैम्ब्रिज या लंदन स्कूल ऑफ एकोनोमिक्स में भर्ती हो सकती थी। उन लोगों जैसी लड़कियाँ हो तो भर्ती होती हैं। रिसर्च करती हैं, डॉक्टरेट प्राप्त होता है सिर उठाकर अंग्रेजों से बातचीत करती हैं, बहस-मुबाहसा करती हैं। कभी कदा उनके बीच अपने को खो देती हैं। उसके बाद एक दिन हँसते-हँसते देश लौट जाती हैं। और मैं? हम लोग? मेरे जैसे मामूली आदमी? जो अपने देश में वंचित हैं और यहाँ भी सम्मानित नहीं हैं? जिन लोगों ने भाग्य की खोज में सात समुद्र तेरह नदियाँ पार की हैं?

प्रिया-प्याली या रंजना जैसी अच्छी छात्रा न रहने पर भी मैंने थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त की है। इतिहास के बारे में मुझे थोड़ी-बहुत जानकारी है। फ्रान्सीसियों से मारीशस पाने के बाद ही मजदूरों की कमी के कारण अंग्रेज काश्तकारों का व्यापार ठप्प पड़ने की स्थिति में आ गया। दलालों के जत्थे कलकत्ता और मद्रास के बाजार में पहुँचे। गरीब और भूमिहीन किसानों को सौभाग्य का लोभ दिखाया। वैभव का लोभ दिखाया। लगभग एक सौ वर्ष तक कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहों से जहाज पर लद कर संबलहीन गरीब हिन्दू-मुसलमान युवजनों के दल हिन्द महासागर के इस उपेक्षित द्वीप की ओर आते रहे। एड़ी-चोटी का पसीना एक कर उन्होंने ईख के खेतों में सोने की फसल उगाई। कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहों से जहाज पर लद-कर इन्हीं लोगों की तरह अभागों का दल अतलान्तिक महासागर के आखिरी पश्चिमी छोर पर गया था। गायना, त्रिनिदाद, जमाइका। इन्हीं लोगों के परिश्रम के कारण ह्वाइट हॉल की ख्याति दुनिया-भर में फैली है। अंग्रेज सिर पर बोलर हैट रख लन्दन की सड़कों पर चहल कदमी करते रहे हैं। सिंहल, मलय और ब्रह्म देश के भी उद्योग-धंधे अनगिनत भारतीय कुली-मजदूरों की मेहनत के कारण फले-फूले हैं। सिर्फ कुली-मजदूर ही क्यों, पंजाब से अंग्रेज अपने साम्राज्य की रक्षा के वास्ते मलय, सिंगापुर और हांगकांग ले गये हैं। यहाँ तक कि चीन के बक्सा का विद्रोह दबाने के लिए सिख सैनिकों का इस्तेमाल किया गया था। अंग्रेजों का साम्राज्य कनाडा, कैरिबियन से लेकर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फीजी द्वीपपुंज तक फैल गया था। भारतीय मजदूर भी वहाँ जाकर बस गये थे। साथ ही इसमाइली मुसलमान और गुजराती व्यापारी भी। ब्रिटेन कितना छोटा देश है! उसके पास लोक-बल है ही कितना! अपने विश्वव्यापी साम्राज्य की रक्षा के लिए उसे बार-बार लड़ाई के मैदान में उतरना पड़ा है। अनगिन अंग्रेजों को कुर्बानियाँ देनी पड़ी हैं। अपने देश के कल-कारखानों को चालू रखने के लिए भारतीय मजदूरों की जरूरत पड़ी है। उसके बाद उन्हें ही अपना केन्द्र बनाकर दुनिया के तरह-तरह के देशों में भारतीय समाज और संप्रदाय की स्थापना हुई है।

कलकत्ते से रवाना होने के पहले मणि चाचा ने कहा था, "उस मुल्क में ज्यादा दिन मत रहना। चली आना।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया था। चुपचाप खड़ी रही। चाहे जो हो, हैं तो अध्यापक ही। मेरी अपेक्षा अधिक लिखे-पढ़े हैं। दुनिया के बारे में काफी कुछ जानकारी है।

जरा चुप रहने के बाद मणि चाचा ने कहा, "खाने-पीने की दृष्टि से अच्छी हालत में रहने के बावजूद हमेशा सेकेण्ड क्लास सिटिजन होकर ही रहना होगा।"

मैंने बहस नहीं की थी। मैं बहुत-कुछ कह सकती थी। इतिहास की तरह-तरह की घटनाओं की चर्चा कर सकती थी। कह सकती थी, हम लोगों की तरह अंग्रेज भी किसी जमाने में मात्र पैसे की जरूरत और वैभव के लोभ में देश-देशान्तर का चक्कर काटते रहे हैं। इतिहास ने नया मोड़ लिया है। आज अगर कुछेक भारतीय डॉक्टर, इंजीनियर, नर्स, स्टेनो, शिक्षक-प्राध्यापक, श्रमिक, कर्मचारी अंग्रेजों के द्वारा लूटे गये भण्डार से कुछ लौटाकर ला सकें तो इसमें शर्म की बात ही क्या है? अपमान की कौन-सी बात है। बल्कि बहादुरी और गौरव की बात है।

मेरी बात सुनकर मणि चाचा जरूर ही हँसते। हँसते हुए कहते, "तेरी क्या यही धारणा है कि जो इंडियन उस मुल्क में जाकर कुछ पौंड इस मुल्क में भेज रहे हैं वे सब यदुनाथ सरकार के शिष्य हैं?"

मणि चाचा की बात सुनकर मैं हँस देती। मगर बहस छिड़ने पर क्या उसे तत्काल रोका जा सकता है? मैं कहती, "नहीं हैं। चाहे वे इतिहास के छात्र हों या न हों लेकिन सम्मिलित तौर पर बीते दिनों के अपमान का कुछ न कुछ बदला जरूर ही ले रहे हैं।"

आखिर में मणि चाचा ने कहा, "खैर, तू ठीक ही रहेगी। चाहे जो हो, डॉक्टर इंजीनियर की कीमत वे लोग समझते हैं।"

मैंने मणि चाचा को प्रणाम किया। उन्होंने मेरे माथे पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा, "जाने के दिन दमदम आऊँगा।"

मणि चाचा की पत्नी और उनकी माँ को भी प्रणाम किया। मणि चाचा की माँ ने तत्क्षण कहा, "एक तो विलायत, उस पर इंजीनियर पति। हम लोगों को भूल मत जाना।"

प्रिया-प्याली या रंजना जैसी अच्छी छात्रा न रहने पर भी मैंने थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त की है। इतिहास के बारे में मुझे थोड़ी-बहुत जानकारी है। फ्रान्सीसियों से मारीशस पाने के बाद ही मजदूरों की कमी के कारण अंग्रेज काश्तकारों का व्यापार ठप्प पड़ने की स्थिति में आ गया। दलालों के जत्थे कलकत्ता और मद्रास के बाजार में पहुँचे। गरीब और भूमिहीन किसानों को सौभाग्य का लोभ दिखाया। वैभव का लोभ दिखाया। लगभग एक सौ वर्ष तक कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहों से जहाज पर लद कर संबलहीन गरीब हिन्दू-मुसलमान युवजनों के दल हिन्द महासागर के इस उपेक्षित द्वीप की ओर आते रहे। एड़ी-चोटी का पसीना एक कर उन्होंने ईख के खेतों में सोने की फसल उगाई। कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहों से जहाज पर लद-कर इन्हीं लोगों की तरह अभागों का दल अतलान्तिक महासागर के आखिरी पश्चिमी छोर पर गया था। गायना, त्रिनिदाद, जमाइका। इन्हीं लोगों के परिश्रम के कारण ह्वाइट हॉल की ख्याति दुनिया-भर में फैली है। अंग्रेज सिर पर बोलर हैट रख लन्दन की सड़कों पर चहल कदमी करते रहे हैं। सिंहल, मलय और ब्रह्म देश के भी उद्योग-धंधे अनगिनत भारतीय कुली-मजदूरों की मेहनत के कारण फले-फूले हैं। सिर्फ कुली-मजदूर ही क्यों, पंजाब से अंग्रेज अपने साम्राज्य की रक्षा के वास्ते मलय, सिंगापुर और हांगकांग ले गये हैं। यहाँ तक कि चीन के बक्सा का विद्रोह दबाने के लिए सिख सैनिकों का इस्तेमाल किया गया था। अंग्रेजों का साम्राज्य कनाडा, कैरिबियन से लेकर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फीजी द्वीपपुंज तक फैल गया था। भारतीय मजदूर भी वहाँ जाकर बस गये थे। साथ ही इसमाइली मुसलमान और गुजराती व्यापारी भी। ब्रिटेन कितना छोटा देश है! उसके पास लोक-बल है ही कितना! अपने विश्वव्यापी साम्राज्य की रक्षा के लिए उसे बार-बार लड़ाई के मैदान में उतरना पड़ा है। अनगिन अंग्रेजों को कुर्बानियाँ देनी पड़ी हैं। अपने देश के कल-कारखानों को चालू रखने के लिए भारतीय मजदूरों की जरूरत पड़ी है। उसके बाद उन्हें ही अपना केन्द्र बनाकर दुनिया के तरह-तरह के देशों में भारतीय समाज और संप्रदाय की स्थापना हुई है।

कलकत्ते से रवाना होने के पहले मणि चाचा ने कहा था, "उस मुल्क में ज्यादा दिन मत रहना। चली आना।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया था। चुपचाप खड़ी रही। चाहे जो हो, हैं तो अध्यापक हीं। मेरी अपेक्षा अधिक लिखे-पढ़े हैं। दुनिया के बारे में काफी कुछ जानकारी है।

जरा चुप रहने के बाद मणि चाचा ने कहा, "खाने-पीने की दृष्टि से अच्छी हालत में रहने के बावजूद हमेशा सेकेण्ड क्लास सिटिजन होकर ही रहना होगा।"

मैंने बहस नहीं की थी। मैं बहुत-कुछ कह सकती थी। इतिहास की तरह-तरह की घटनाओं की चर्चा कर सकती थी। कह सकती थी, हम लोगों की तरह अंग्रेज भी किसी जमाने में मात्र पैसे की जरूरत और वैभव के लोभ में देश-देशान्तर का चक्कर काटते रहे हैं। इतिहास ने नया मोड़ लिया है। आज अगर कुछेक भारतीय डॉक्टर, इंजीनियर, नर्स, स्टेनो, शिक्षक-प्राध्यापक, श्रमिक, कर्मचारी अंग्रेजों के द्वारा लूटे गये भण्डार से कुछ लौटाकर ला सकें तो इसमें शर्म की बात ही क्या है? अपमान की कौन-सी बात है। बल्कि बहादुरी और गौरव की बात है।

मेरी बात सुनकर मणि चाचा जरूर ही हंसते। हंसते हुए कहते, "तेरी क्या यही धारणा है कि जो इण्डियन उस मुल्क में जाकर कुछ पौंड इस मुल्क में भेज रहे हैं वे सब यदुनाथ सरकार के शिष्य हैं?"

मणि चाचा की बात सुनकर मैं हंस देती। मगर बहस छिड़ने पर क्या उसे तत्काल रोका जा सकता है? मैं कहती, "नहीं हैं। चाहे वे इतिहास के छात्र हों या न हों लेकिन सम्मिलित तौर पर बीते दिनों के अपमान का कुछ न कुछ बदला जरूर ही ले रहे हैं।"

आखिर में मणि चाचा ने कहा, "खैर, तू ठीक ही रहेगी। चाहे जो हो, डॉक्टर इंजीनियर की कीमत वे लोग समझते हैं।"

मैंने मणि चाचा को प्रणाम किया। उन्होंने मेरे माथे पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा, "जाने के दिन दमदम आऊंगा।"

मणि चाचा की पत्नी और उनकी माँ को भी प्रणाम किया। मणि चाचा की माँ ने तत्क्षण कहा, "एक तो विलायत, उस पर इंजीनियर पति। हम लोगों को भूल मत जाना।"

आज इस हिथरो एयरपोर्ट पर आने के बाद सब कुछ याद आ रहा है। आदमी हमेशा बीते दिनों की स्मृति और कहानियाँ ही याद नहीं करता। कर भी नहीं सकता। संभव नहीं है। हर रोज के सुख-दुःख, आनन्द-व्यथा, सफलता-विफलता के तले व्यतीत दब जाता है। मगर बीच-बीच में वे अपनी झलक दिखा जाते हैं। वर्त्तमान के आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। आदमी ठिठककर खड़ा हो जाता है। हम लोगों के बीते दिनों की यादगार की तरह ही इस सुन्दर, साँवली, विचित्रताओं से भरी धरती के तले भी कितना कुछ छिपा है। मसलन, जहरीली गैस और पिघला हुआ लावा। एकाएक किसी दिन वे एक असतर्क दुर्बल क्षण में धरती के सीने से बाहर आकर हमें चकाचौंध में डाल देते हैं। थोड़ी देर पहले ही इस हिथरो एयरपोर्ट पर पहुँची हूँ। इतने पहले आने की जरूरत न थी। फिर भी जान सुनकर ही आयी हूँ। चाहे जो हो, इसी हिथरो एयरपोर्ट से मेरी जिन्दगी की शुरुआत हुई है—जिन्दगी के प्रथम और द्वितीय अध्याय की। साधारण मुसाफिरों को यहाँ बेवजह वक्त जाया करने की जरूरत नहीं पड़ती। टर्मिनल थ्री के डिपार्चर विंग में प्रवेश करते ही एयरलाइन्स के काउन्टर हैं। लगातार बहुत सारे। असबाब का वजन होते न होते टिकट चेक हो जाता है और बोर्डिंग कार्ड तैयार हो जाता है। लाइटर जलाकर सिगरेट सुलगाते न सुलगाते लैगेज टिकट एयर टिकट के साथ संलग्न कर दिया जाता है। 'थैंक यू', 'धन्यवाद' का दौर भी समाप्त हो जाता है। इमिग्रेशन, पासपोर्ट, कस्टम्स, सिक्यूरिटी चेकअप के पहले वक्त रहने पर हिल्स एयरपोर्ट गिफ्ट शॉप से छोटी-मोटी चीजें भी खरीदी जा सकती हैं। सुवेनिर, कॉस्मेटिक्स, स्कार्फ, ऊन, स्वेटर, चाबी का रिंग, डेक्का रेकार्ड्स या कोई खूबसूरत-सा एसट्रे। शौकीन या पैसावाला आदमी संभवतः फ्रेंच क्रेडिल टेलीफोन खरीदेगा। या फिर बंधु-बांधवी के साथ एरोग्रिल बार में एक जग बीयर पियेगा या दो-चार पेग शराब के घूँट लेगा। साथ में लड़का-बच्चा रहने पर महिला यात्री कॅन्फेक्शनरी शॉप से कुछ चाकलेट या कैन्डी की खरीदगी करती है। कोई-कोई इन चीजों को छोड़कर सीधे बुक स्टॉल की ओर चला जाता है। किताब, पत्र-पत्रिका या अखबार ले लेता है। सैलानी पिक्चर पोस्टकार्ड या पॉप म्यूजिक का कैसेट खरीदते हैं। बहुतेरे व्यक्ति सीधे अन्दर चले जाते हैं, टिकट-पासपोर्ट दिखाकर आगे बढ़ते ही पासपोर्ट पर डिपार्चर लन्दन की मुहर

पड़ जाती है। विदेशी यात्रियों के लिए कस्टम्स का झमेला नहीं रहता है। निरापद विमान-यात्रा के लिए सिर्फ हैण्ड बैग का चेकअप किया जाता है और जेब में रिवॉलवर या बम है या नहीं—यह देखने के लिए इलेक्ट्रिक डिटेक्टर के पास लाया जाता है। उसके बाद लोग डिपार्चर लाउंज में प्रवेश करते हैं।

एयर इंडिया काउन्टर पर टिकट दिखाकर मैं बोर्डिंग कार्ड ले चुकी हूँ। हैण्ड बैग के अलावा दो बड़े-बड़े सूटकेस सुपुर्द करने के बाद मुझे लैगेज टिकट भी मिल चुका है। यानी असली काम खत्म हो चुका है। अभी मैं चुपचाप बैठी हूँ। आँखों के सामने से होकर कितने ही मुल्कों के अनगिनत आदमी दौड़-भाग कर रहे हैं। देखकर भी जैसे देख नहीं रही हूँ। देखने पर धुंधला-धुंधला जैसा दीख रहा है। किसी को भी साफ तौर पर नहीं देख पा रही हूँ। सिर्फ अपनी जिन्दगी की घटनाएँ ही मुझे स्पष्ट, उज्ज्वल और जीवन्त दीख रही हैं। मेरी जिन्दगी से जो लोग जुड़ गये हैं और जुड़ गये थे, उन्हें आँखों के सामने देख रही हूँ। यही वजह है कि मणि चाचा की बातें याद आ गयीं। साथ ही बहुत सारे लोगों की बातें याद आ रही हैं, उनकी स्मृतियाँ तैर रही हैं। उन्हें बगैर याद किये रह नहीं पा रही हूँ। जिस दिन मुल्क छोड़कर इस हियरो एयरपोर्ट पर पहले पहल आयी थी, उस दिन भी इन लोगों को याद आयी थी। सद्यः विवाहिता होकर पति के साथ घर-गृहस्थी बसाने का रोमांच और लन्दन में वास करने की खुशियाँ रहने के बावजूद सब को छोड़कर आने के कारण मन में दर्द का अहसास हुआ था। विवाह-घर की शहनाई सुनने में अच्छी लगने पर भी उसके अन्दर आँसू और रुलाई का हल्का-सा स्वर छिपा रहता है। रहेगा क्यों नहीं ? विवाह-घर की मिठाई और हँसी-मजाक के अन्दर भी एक तरह की विरह-व्यथा का स्पर्श रहता है। इंगलैण्ड की धरती पर पहली बार पैर रखने के बाद कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर अनगिन लोगों की भीड़-भाड़ के बीच देबू का दमकता हुआ चेहरा देखकर मैं अनन्त संभव-असंभव खुशियों में डुबकियाँ लगाने लगी थी, फिर भी दमदम हवाई अड्डे के बहुतेरे लोगों के व्यथा से सिक्त चेहरे मेरी आँखों के सामने नाच उठे थे। बहुत दिनों के बाद आज वे लोग नये सिरे से याद आ रहे हैं। उन्हें आँखों के सामने देख रही हूँ। मुल्क लौटने पर कब उन लोगों से फिर मुलाकात होगी, मालूम नहीं। यह भी मालूम नहीं कि मुलाकात

होगी या नहीं। जिन्हें छोड़कर चली आयी थी, उनमें से सभी अब जिन्दा नहीं हैं। माँ जिन्दा नहीं है, मणि चाचा जिन्दा नहीं हैं। और भी कुछ ऐसे लोग हैं जो अब जिन्दा नहीं हैं। माँ का न होना एक तरह से अच्छा ही है। होती तो मुश्किल का सामना करना पड़ता।

पता नहीं क्यों माँ हमेशा मेरे लिए चिन्ता में डूबी-डूबी रहती थी। हो सकता है कि पिता जी के न रहने से उनके साथ वैसा बात रही हो। मगर शादी के समय जब सब लोग खुशियों में डूब-उतर रहे थे उस वक्त भी माँ को भरपूर निश्चिन्तता की स्थिति में नहीं देखा था। उसके मन में एक तरह का द्वन्द्व हमेशा छिपे रहने के बावजूद बीच-बीच में वह जाहिर हो जाता था। बाहर का कोई आदमी भले ही इसे महसूस न कर पाता था, मगर मैं महसूस करती थी, समझती थी। माँ बहुत ही कम पढ़ी-लिखी थी, मगर उसका मन बड़ा ही निर्मल था। और-और लोग जिस चीज को देखते नहीं थे, देख नहीं सकते थे, माँ उसे देख लेती थी। उसकी सबसे बड़ी मिसाल यही है कि आज मैं मुल्क लौटकर जा रही हूँ। इसीलिए तो लग रहा है, माँ का न रहना अच्छा ही हुआ है। वह बहुत तरह की दुश्चिन्ता और अशान्ति के हाथ से छुटकारा पा गयी है। मैं भी मुक्त हूँ।

अगर दुनिया का सबसे अधिक कार्य-व्यस्त कोई हवाई अड्डा है तो वह हियरो ही है। टोकियो, सिंगापुर, बेरुत, पेरिस और मास्को तो दूर की बात, यहाँ तक कि न्यूयार्क का जॉन ऑफ केनेडी हवाई अड्डा भी इतना कार्य-व्यस्त नहीं है। इतने सारे यात्रियों का आगमन और प्रत्यागमन और किसी दूसरे स्थान से नहीं होता है। वर्ष-भर में कम से कम तीन लाख विमानों का यहाँ आगमन-प्रत्यागमन होता है। और मुसाफिर? लगभग दो करोड़ यहाँ आते हैं और यहाँ से प्रस्थान करते हैं।

मैं कुछ दिनों तक इस हवाई अड्डे के कैन्टिन और बार में काम कर चुकी हूँ। इसके इतिहास से परिचित हो चुकी हूँ और संख्यातीत लोगों का आना-जाना देख चुकी हूँ। हवाई जहाज की तरह आदमी भी दौड़ते भागते रहते हैं। जिसे अभी बार में बैठकर जिन और टॉनिक का सेवन करते देखा है, दो मिनट के बाद घूम-फिर कर आने पर देखा है, वह

नहीं है। ट्रिक समाप्त होते ही वह एयर जेटी से होता हुआ तेज कदमों से विमान के अन्दर जा चुका होता है। हो सकता है कि हवाई जहाज अब जोरो-फाइव आँबलिक टु-थ्री रनवे से टेक आँफ कर सीमाहीन आकाश में तैर रहा हो। हवाई अड्डे पर आकर कोई भी मेरी तरह चुपचाप बैठा नहीं रहता। इतना अवकाश किसी के पास नहीं है। शायद मेरी तरह जीवन-संधि के क्षण में कोई भी आकर खड़ा नहीं रहता। सिर्फ एकबार एक यात्री को डिपार्चर लाउंज में बहुत देर तक बैठा हुआ देखा था।

इस हियरो एयरपोर्ट में पचास हजार से भी ज्यादा आदमी काम करते हैं। कभी मैं भी उनमें से एक थी। बिलकुल साधारण-सा काम करती थी मैं। कतिपय भारतीय और पाकिस्तानी महिलाओं की तरह मैं भी एक एप्रेन पहन डिपार्चर लाउंज की मेज से चाय-कॉफी के गिलास उठाती थी, कागज-पत्तरों को हटाकर रख देती थी। कुछेक भारतीय और पाकिस्तानी मुसाफिरों के अलावा कोई भी मेरी या हमारी ओर नजर उठाकर नहीं देखता था। मेरी जैसी कोई भारतीय या पाकिस्तानी युवती इस तरह का काम नहीं करती थी। बाकी जितनी भी महिलाएँ थी सब की सब अधेड़ थीं। इसलिए बहुतेरे भारतीय और पाकिस्तानी यात्री एक बार मेरी ओर ताके बगैर रह नहीं पाते थे। जो लोग रसिक होते वे जरा मुसकरा देते और बाकी लोग अपनी नफरत भरी निगाह से मेरे सिर से पैर तक के हिस्से को देखते थे। कोई सरस और कोई कटु राय जाहिर करता था। मैं इन बातों की परवाह नहीं करती थी। मन लगाकर अपना काम करती और अनगिन तरह के मुसाफिरों की ओर आँखें दौड़ाती थी। बड़ा ही अच्छा लगता। इतने-इतने अजीब लोगों का शोभायात्रा मैंने कहीं नहीं देखा है। हर उम्र और हर तरह के मुसाफिर को देखती थी। कोई सद्यजात होता था और कोई मृत्यु की राह का राही। कोई सर्वहारा तो कोई दुनिया का सबसे धनी आदमी। एक को शोक मे निमग्न पाती तो दूसरे को खुशियों से चहकते हुए।

हियरो में आमतौर से दो तरह के मुसाफिरों की ही संख्या अधिक रहती है। एक दल बिजिनेस एक्सक्यूटिव होता है और दूसरा हॉली डे मेकर्स। आचार-विचार पहरावा और संगी या संगिनी को देखते ही ये लोग पहचान में आ जाते हैं। बिजिनेस एक्सक्यूटिव किसी से भी कोई

फालतू बात नहीं करते हैं। पाँच मिनट का भी वक्त रहता है तो ब्रीफ-केस से कागज-पत्तर निकाल कर एकबार सरसरी निगाह से देख लेते हैं। या फिर 'फिनैन्शल एक्सप्रेस' अथवा 'डेली टेलीग्राफ' में अपने आप को खो देते हैं। व्यवसाय से संबंधित कोई सहयात्री होते हैं तो ब्रिस्टल क्रीम शेरी की चुस्कियाँ लेते हुए विचार-विमर्श करते हैं। और होली डे मेकर्स ? कोई हँसता है, कोई गाता है, कोई नाचता है। कोई अपनी बांधवी को प्यार करता है। वे और भी बहुत-कुछ करते हैं।

होली डे मेकर्स यानी छुट्टियाँ मनाने वाले मुझे बेहद पसन्द आते थे। हर आदमी की जिन्दगी में उतार-चढ़ाव आता है, उसकी अपनी समस्या हुआ करती है। दुःख, व्यथा और निराशा आती है। इन सबों से कोई छुटकारा नहीं पा सकता है। फिर भी ये लोग हँस सकते हैं। आघात और संघात से अपने को खो नहीं देते, नहीं अपने अस्तित्व को समाप्त कर देते हैं या चेहरे की हँसी को चिर दिन के लिए विदा कर देते हैं। इसीलिए वे पूरे वर्ष की थकान को स्पेन या ग्रीस या साइप्रस के सूर्य की किरणों से झिलमिलाते समुद्र के किनारे रखकर चले आते हैं। बूढ़ा-बूढ़ी से लेकर किशोर-किशोरी तक काँस के फूल की तरह हँसते और तैरते हुए छुट्टी के दिन गुजार देते हैं। ग्रीष्मावकाश व्यतीत कर आते हैं। लन्दन शहर से निकलने के बाद शहर के निकटवर्ती मिडल सेक्स में घुसते न घुसते इन लोगों की हँसी की आवाज दूर से सुनाई पड़ती है। हिथरो में प्रवेश करते ही ये लोग फानूस की तरह जगमगाने लगते हैं। होली डे का अर्थ ही है बंधन से मुक्ति का आनन्द। जो भी आसपास मिल जाता है उसी से बातें करने लगते हैं। हँसते हैं। गिलास में मार्टिनी वारमूथ लेकर आगे बढ़ा देते हैं—"प्लीज हैव इट।" दुविधा के साथ इसे ठुकराया नहीं जा सकता। कोई ठुकराता भी नहीं है।

"चीअर्स !"

"चीअर्स !"

मैं काम करते-करते इन्हें देखती और जी में होता कि हँस पड़ूँ। इन लोगों का उच्छ्वास, आनन्द का ज्वार आसपास के तमाम लोगों को बहाकर ले जाता है। मेरे मन में भी ज्वार आकर टकराते हैं। बीच-बीच में बड़ा ही मनोरंजन होता था। कोई-कोई एक बार मेरी ओर दृष्टि उछालकर हँस देता और कोई-कोई हँसते हुए सस्वर कहता, "हैलो।" कोई-कोई जाने के पहले हाथ मिलाता और कोई-कोई अपने

हाथ को मुँह के पास ले जाकर उसे चूम लेता। कभी-कदा एक-द. व्यक्ति कान के पास फुसफुसाते हुए प्यार की दो-चार मीठी बातें करते। मैं मुसकराती हुई उन्हें धन्यवाद देती। अतिशय उत्साही, जो रोमांटिक छुट्टी मनाने वाले होते, वे मुझे अपनी बगल में रखकर तसवीर खींचते थे।

इस किस्म के लोगों को हर रोज देखती थी मगर किसी को अचल पत्थर की तरह बैठा हुआ नहीं पाती। केवल एक बार ईस्ट अफ्रीका के एक वृद्ध भले मानस को डिपार्चर लाउंज में घण्टों बैठे देखा था। ड्यूटी से वापस आने के वक्त भी मैंने उसे बैठे हुए देखा था। किसी ने उससे कोई सवाल नहीं किया। दूसरे के मामले में बेवजह उत्सुकता जाहिर करना यद्यपि हम लोगों का स्वभाव है परन्तु इस देश के लोग इसके प्रति पूरे तौर पर उदासीन रहते हैं। दूसरे के सुख-दुःख या किसी दूसरे विषय के सन्दर्भ में उनके मन में कोई कौतूहल नहीं रहता। राह-बाट, स्टेशन-ट्यूब या बस में लड़के-लड़कियां या सद्यःविवाहितों के दल प्रेम करते हैं, प्यार करते हैं लेकिन बगल का सज्जन बगैर किसी तरह का झंझट-झमेला खड़ा किये 'डेली मिरर' की शब्द पहेली का हल ढूंढ़ता है। आलिंगनबद्ध लड़के-लड़की की ओर एक बार, लहमे भर के लिए भी, मुड़कर दृष्टि फेंकने का कौतूहल किसी में नहीं है। कलकत्ते की ट्राम-बस में इस तरह का दृश्य दीख जाता तो कितने ही लोगों का मजमा इकट्ठा हो जाता या कितनी कहानियाँ कितनी रंगीन होकर दूर-दराज तक फैल जातीं, इसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है। हो सकता है लैला-मजनूं या रोमियो-जुलियट की कलकत्ते के अखबारों के पृष्ठ की सुर्खियों में एक लघु प्रेम-कथा काव्यमयी भाषा में छापी जाती। एक बार प्याली के साथ क्या वाकया हुआ था?

कलकत्ता चाहे जितना ही बुरा और गन्दा शहर क्यों न हो लेकिन यहाँ की गरमियों की शाम बड़ी ही मधुर और मनोरम होती है। गली-कूचों की साजिश और बेहिसाब कल-कारखानों के खुल्लमखुल्ला विरोध के बावजूद दक्षिण के समुद्र की स्निग्ध वायु कलकत्ते के लोगों को उदासीन और अनमना बना देती है। दिन बीतने पर, शाम के बाद घर के मोह से अपने आपको अलगकर लोग आकाश के तले आकर खड़े हो

फा: ... , गंगा के किनारे, किले के मैदान और विक्टोरिया
... जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे खुशियों में आकर दौड़ते-
...खोये युवक-युवती दबी आवाज में मन की बातें प्रकट
... कि बूढ़ा-बूढ़ी भी आइसक्रीम खाने में आना-कानी

...उदयन बीच-बीच में शाम के धुंधलके में मनी का दिया जलाकर विक्टोरिया के किनारे ब्रिगेड ग्राउण्ड के किसी सूनसान कोने में खो जाते थे। या फिर किसी दूसरी जगह हँसी-मजाक और गपशप करने के बाद वे घर लौटते थे। उस दिन वे बातचीत में इस तरह मशगूल हो गये कि थोड़ी देर हो गयी। भीड़ थोड़ी बहुत छँट गयी थी। एक क्षण के आवेग में आकर उदयन ने एकाएक प्याली को अपने निकट खींच लिया था। उस अँधेरे में से भूत की तरह दो पुलिस के आदमी बाहर निकल आये और उदयन को पकड़ लिया। व्यभिचार के विरोध में आपत्ति की। कोतवाली ले जाने को खींचतान करने लगे। प्याली जब हम लोगों के डेरे पर आयी, उस समय भी वह भय से काँप रही थी। अच्छी तरह बातचीत नहीं कर पा रही थी। आदमी के व्यक्तिगत जीवन में इस तरह की दखलन्दाजी इन देशों में कल्पना के बाहर की बात है। कुछ साल पूर्व एक सेक्स स्कैण्डल के सन्दर्भ में पार्लियामेन्ट में बहस चलने के दौरान प्राइम मिनिस्टर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—"आदमी के व्यक्तिगत जीवन या नागरिकों के शयन-कक्ष में प्रवेश करने का अधिकार किसी भी सरकार को नहीं है।" अपने देश में हम लोग अपने मामले के प्रति उदासीन रहने के बावजूद दूसरों के मामले के प्रति अत्यन्त आग्रहशील रहते हैं। चाहे पराये की निन्दा न करें लेकिन बगैर परायी चर्चा किये हम रह नहीं पाते हैं, जीवन जी नहीं पाते हैं।

उस वृद्ध गुजराती भले मानस की ओर कई बार दृष्टि दौड़ाने के बाद समझ में आ गया था कि वह किसी अव्यक्त व्यथा से पीड़ित है। सन्देह हुआ था कि शायद वह अस्वस्थ है लेकिन फिर भी उससे कोई पूछताछ नहीं की थी। न तो साहस हुआ था और न ही जरूरत महसूस की थी। मैं चेक इन कर खामोश बैठी रही। बहुत देर तक। कोई मेरी ओर देखता था और कोई नहीं देखता था। कोई मुझसे एक भी शब्द नहीं पूछ रहा है। पूछेगा भी नहीं। इसीलिए मैं इत्मीनान के साथ बीते दिनों

की बातें याद कर रही हूँ—इस हियरो एयरपोर्ट की तरह-तरह की स्मृतियाँ आ रही हैं।

खामोश बैठे रहने के बावजूद दूर या निकट का जो कुछ देख रही हूँ, उन्हें देखते ही बीते दिनों की बातें याद आ रही हैं। मैं जब इस मुल्क में आयी थी तब हियरो एयरपोर्ट इतना बड़ा नहीं था। दो ही टर्मिनल बिल्डिंग थे। यहाँ के दो नम्बर टर्मिनल बिल्डिंग से ही तमाम कन्टिनेन्टल फ्लाइट्स के यात्री आते-जाते थे। मैं भी दो नम्बर टर्मिनल होकर ही आयी थी। हेल्थ और इमिग्रेशन काउंटर के बाद ही कस्टम्स एनक्लोजर है। कस्टम्स एनक्लोजर में घुसकर बाहर जाने के रास्ते की बगल में कुछ लोगों के बीच खड़े रंजन पर मेरी दृष्टि जाती है। दूर से बहुत सारे लोगों के मजमे के बीच उसका हँसता हुआ चेहरा देखकर बहुतेरे सगे-संबंधियों को छोड़कर आने का दर्द मैं लहमे भर में भूल गयी थी। मौजूदा दिनों की बहुत सारी संभावनाओं के रोमांच से मेरा मन थिरकने लगा था।

सुना है और पढ़ा भी है कि तमाम बंगाली युवक-युवती प्रेम करते हैं। मेघना-भागीरथी नदी से धुले बंगाल के भाव प्रवण बंगालियों के जीवन में प्रेम अवश्य ही घटित होता है। और-और बंगालियों की तरह जो जवानी में प्रेम में नहीं फँसता वह विशुद्ध बंगाली नहीं, ऐसा माना जाता है। संभवतः यह बात सही भी है। मुझे तमाम बंगालियों के बारे में मालूम नहीं है। शायद कुछ अर्धशिक्षित बंगाली साहित्यिक के अतिरिक्त यह बात कोई नहीं कह सकता है। मुझे मालूम है कि मैं बंगाली हूँ। मेरे माँ-बाप बंगाली थे। उनके माँ-बाप बंगाली थे। उनके भी बाप-माँ, दादा-दादी बंगाली थे। लेकिन प्रिया, प्याली की तरह मैं जवानी में प्रेम में नहीं फँसी थी। किसी युवक को देखकर गृहस्थी बसाने का सपना नहीं देखा था। दो-चार व्यक्तियों की बातचीत, व्यवहार और बुद्धि से दीप्त चेहरे मुझे अच्छे लगे थे। ज्यादा से ज्यादा यही सोचा था कि ऐसे ही लोगों के जैसा कोई आदमी मिल जाये तो जिन्दगी में परिपूर्णता का स्वाद मिल सकता है। सुखी हो सकती हूँ। इससे अधिक कुछ भी नहीं। प्याली के घर जाने पर अक्सर उसके ममेरे भाई विवेक से मुलाकात हो जाती थी। वह छरहरे बदन का था। आँखों पर चश्मा। बाल बिखरे-बिखरे रहते थे। देखकर लगता नहीं था कि वह यादवपुर इंजीनियरिंग कॉलेज के अन्तिम वर्ष का छात्र है।

प्याली ने जिस दिन परिचय कराते हुए यह सूचना दी, मैं सुनकर आश्चर्य में आ गयी। शर्म से उसकी ओर निगाह नहीं दौड़ा सकी। प्याली की ओर देखते हुए एक तरह से अविश्वास भरे स्वर में कहा, "देखने से तो लगता है कि फर्स्ट या सकेण्ड इयर का छात्र है।"

प्याली हँस दी।

विवेक ने कहा, "डरने की कोई बात नहीं। इस फाइनल इयर में ही कई साल गुजार दूँगा।"

साहस बटोर कर किसी तरह मैंने कहा, "मैंने तो ऐसा नहीं कहा है।"

प्याली ने कहा, "इन फालतू बातों को रहने दो। जल्दी-जल्दी पास कर किसी अच्छी नौकरी में भर्ती हो जाओ।"

विवेक ने कहा, "मेरी नौकरी के लिए तू इतना परेशान क्यों है?"

"इसलिए कि तुम्हें नौकरी मिल जायेगी तो तुम्हारे पैसे से हम जरा मौज मनायेंगे।"

"हम लोग का मतलब?"

हम लोग का मतलब मैं, रुणु या मेरी दूसरी बांधवी।" विवेक ने हँसते हुए कहा, "मैं जब तक पास कर नौकरी का इन्तजाम करूँगा इसके पहले ही तुझे एक अच्छा पति मिल जायेगा। और तुम न रहोगी तो तुम्हारी सहेलियाँ क्या मेरे पैसे से मौज मनाना चाहेंगी?"

प्याली ने हँसते हुए कहा, "जब तक तुम्हारे पैसे से गुलछर्रे न उड़ा लूँगी तब तक मैं शादी नहीं करूँगी।"

विवेक ने तत्क्षण पूछा, "शादी नहीं करूँगी—इसका मतलब?"

मैं चुप्पी ओढ़े उन दो भाई-बहन की बहस सुन रही थी। प्याली ने कहा, "नहीं करूँगी का मतलब नहीं करूँगी और क्या!"

"इसका मतलब क्या यह निकलता है कि तू अपनी मर्जी से शादी करेगी?"

"अपनी मर्जी से करूँगी या नहीं, यह मालूम नहीं मगर मर्जी नहीं रहेगी तो किसी भी हालत में नहीं करूँगी।"

"ह्वाट?" विवेक चिल्ला उठा, "इसका मतलब यह है कि तू जिसके साथ विक्टोरिया के पिछवाड़े अड्डेबाजी करती है उसी के साथ....."

यह बात सुनकर हम दोनों चौंक उठीं। प्याली बोली, "क्या जो-सो बक रहे हो।"

"उफ् ! तू नर्वस क्यों हो रही है ?"

"नर्वस कहाँ हो रही हूँ ? मगर इसका मतलब यह नहीं कि तुम झूठ-मूठ का आरोप लगाते जाओ और मैं खामोश सुनती रहूँ ?"

विवेक हँसने लगा। कुछ भी नहीं बोला।

प्याली को उसकी हँसी भी बरदाश्त नहीं हुई। "इस तरह हँस रहे हो जैसे तुम उसके आस-पास थे।"

अब विवेक ने मुझसे समर्थन की माँग की, "अच्छा, यह तो बताइये कि शादी मैंने भले ही न की हो मगर बरात में भी क्या शामिल नहीं हुआ हूँ ? प्रेम नहीं किया है तो इसका मानी यह नहीं कि विक्टोरिया के आसपास चक्कर नहीं लगाऊँ।"

और कुछ देर तक दोनों पक्षों की ओर से गोलाबारी होने के बाद विवेक ने एकाएक शान्ति-प्रस्ताव रखा, "खैर इन बातों को गोली मारो। चलो, आज ही तुम लोगों को सिनेमा दिखा लाता हूँ।"

उसी दिन से मैं और प्याली उसके साथ घूमने-फिरने जाने लगी। कभी-कभार मुझसे राह-बाट में मुलाकात हो जाती थी। हम बातें करते। जरा हँसने-हँसाने का दौर भी चलता। शायद हम दोनों थोड़ा बहुत चक्कर लगाते थे। दो या तीन बार हम दोनों एक साथ सिनेमा भी देखने गये थे। मगर किसी दिन मैत्री की सरहद लाँघ मैंने भविष्य का सपना नहीं देखा था। तब हाँ, मन ही मन यह जरूर सोचा था कि विवेक जिस लड़की से शादी करेगा वह सुखी होगी ही।

प्याली की शादी के काफी कुछ दिनों के बाद काली घाट ट्राम डिपो के सामने विवेक से मुलाकात हुई। शुरू में मेरी नजर उस पर नहीं पड़ी। मुझ पर नजर पड़ते ही उसने पीछे से पुकारा, "रुनु !"

पीछे मुड़कर देखा, विवेक था। "अरे आप ?"

"इतनी अनमनी होकर कहाँ जा रही हैं ?"

"मैं अनमनी क्यों होने लगी ?"

"मैं आपके सामने ही से होकर आया लेकिन आपकी नजर मेरी ओर नहीं गयी।"

"ऐसा ?"

"आपको पुकारूँ या न पुकारूँ, यह सोचते-सोचते थोड़ी दूर आगे बढ़ गया था।"

"सच ?"

हम एक किनारे जाकर खड़े हो गये। विवेक ने कहा, "एकाएक आपका नाम लेकर पुकारे जाने पर आपने अन्यथा तो नहीं लिया ?"

"नहीं-नहीं, अन्यथा क्यों लूंगी ?"

"फिर भी....."

"फिर भी क्या ? मैं तो आपसे छोटी हूं।"

"यंग खूबसूरत लड़की क्या किसी से किसी विषय में छोटी होती है ?"

मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन हम दोनों सड़क के किनारे खड़े होकर बहुत देर तक गप करते रहे। उसके बाद विवेक ने कहा, "सड़क पर खड़े-खड़े गपशप करते रहे इसलिए लोग कितना कुछ सोचते होंगे।"

"फिर ऐसा किया ही क्यों ?"

"कहां जाकर गपशप करूं ?" जरा खामोश होकर विवेक ने मेरी ओर देखा। "आपकी सहेली होती तो कहता कि चलिये, हम सिनेमा चलें मगर....."

"आज जरा काम है नहीं तो.....।"

मुझे ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा है, फिर भी संभवतः मैं उसके साथ सिनेमा देखने गयी हूं। हम हंसे-बोले हैं, मूंगफली चबाते-चबाते सड़क पर काफी दूर निकल आये हैं। अच्छा लगा है। सिनेमा देखने, घूमने-फिरने, हंसने-बोलने और खुशियां मनाने में किसे अच्छा नहीं लगता ? सबको अच्छा लगता है। विवेक की निकटता अच्छी लगती थी मगर कभी मुझे सिहरन का अहसास नहीं होता। मन ही मन मैं सपने का जाल भी नहीं बुनती थी। रात में सोने के समय कभी उसके सान्निध्य या स्पर्श की उम्मीद नहीं करती। लेकिन लेटे-लेटे उसके बारे में सोचा जरूर है। सोचने में अच्छा लगता था। इससे अधिक कुछ भी नहीं।

एक और व्यक्ति उसी के जैसा अच्छा लगा था। वे थे अरिजित राय। वे भी इंजीनियर थे। रेलवे में नौकरी करते थे।

धनी-मानी ससुर की निगाह में अपनी मान-मर्यादा बढ़ाने के खयाल से भैया ने पुरी जाने का निश्चय किया। विरोध करने के बावजूद वह मां और मुझे भी अपने साथ लेते गये। हम बी० एन० आर० होटल में जाकर टिके। एक कमरे में भैया और भाभी और दूसरे में मैं और मां। कुछ दिनों से मां की तबीयत ठीक नहीं रह रही थी। भैया-

भाभी के आग्रह पर पुरी जाने के बावजूद माँ किसी तरह हर रोज मेरे साथ एक बार जगन्नाथ मन्दिर जाती थी, इसके अलावा और कहीं भी नहीं। जा नहीं पाती थी। भैया-भाभी के साथ मुझे चहल-कदमी करना अच्छा नहीं लगता। शर्म महसूस होती। उन्होंने बहुत दबाव डाला मगर मैं नहीं जाती थी। होटल में ही रहती और सामने के समुद्र के किनारे ही चहल-कदमी करके लौट आती थी।

अरिजित बाबू रेल के इंजीनियर थे। नयी नौकरी पाने के कुछ दिन बाद ही वे अपने माँ-बाप के साथ पुरी घूमने आये थे। पहले भैया के साथ और बाद में हम सबों के साथ उनकी जान-पहचान हुई। भैया-भाभी भुवनेश्वर, कोणार्क और चिल्का गये। मैं और माँ पुरी में ही रह गयी। उस समय सामने के बरामदे पर बैठकर हम पाँचों जने रोज सवेरे दोपहर-शाम भरपूर गपशप करते थे। बीच-बीच में सिर्फ मैं और अरिजित बाबू ही गपशप करते थे। कभी-कभी सामने के समुद्र के किनारे चहल-कदमी करने निकल जाते।

होटल के बरामदे पर बैठ माँ अरिजित बाबू के माँ-बाप के साथ गप कर रही थी। मैं और अरिजित बाबू होटल के सामने ही समुद्र के किनारे चहल-कदमी करते हुए गपशप कर रहे थे। उन्होंने हँसते हुए कहा, "कहानी-उपन्यास में पढ़ा है, घूमने-फिरने के लिए निकलने पर बहुतेरे नायक-नायिकाओं से मुलाकात होती है। मगर बहुत सारी जगहों का चक्कर लगाने के बाद आप ही पहली लड़की मिली जिससे मेरी जान-पहचान हुई।"

यह बात सुनकर मैं भी बिना हँसे रह नहीं सकी।

"मैंने सच कहा इसलिए आप हँस रही हैं?"

अब मैंने कहा, "मैंने तो यह नहीं कहा कि आप झूठ बोल रहे हैं।"

"आपने कहा नहीं है मगर...."

उन्हें बात समाप्त न करने देते हुए मैंने पूछा, "लगता है आप बहुत घूमते-फिरते रहते हैं।"

"हाँ। छुट्टी मिलते ही कहीं न कहीं निकल जाता हूँ।"

"चाहे जो हो, हैं तो आप रेल के इंजीनियर हो। आप लोग ही तो घूम-फिर सकते हैं।"

"रेल में भर्ती हुए एक साल भी नहीं हुआ है।"

"सच ?"

"हाँ।"

"इसके पहले आप क्या करते थे ?"

"पढ़ता था। कॉलेज से निकलने के बाद ही रेल की यह नौकरी मिल गयी।"

"अब तो फिर और घूमिएगा-फिरिएगा।"

"हो सकता है।"

"हो सकता है क्यों ?"

"भविष्य के बारे में क्या कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है ?"

"सो तो ठीक है।"

भैया-भाभी जितने दिनों तक बाहर का चक्कर लगाते रहे, हम दोनों गपशप में मशगूल रहे—समुद्र के किनारे, बरामदे पर बैठकर या सबसे आखिर में डिनर के समय।

कलकत्ता लौटने के बाद भी उनसे कई बार मुलाकात होती रही। सौजन्य और भलमनसाहत की ओट में एक तरह के उत्ताप का अनुभव करती थी। मुझे बड़ा ही अच्छा लगता। शैशव की दहलीज लाँघ-यौवन की परिपूर्णता के दौरान, रंजन से शादी करने के पूर्व, बहुत से युवकों के संपर्क में आयी हूँ। सबको आना पड़ता है। इनमें से किसी के साथ प्रेम या मुहब्बत नहीं की है। फिर भी विवेक और अरजित मुझे अच्छे लगते थे। मुझे अब भी वे भूले नहीं हैं। बीच-बीच में उनकी याद आ जाती है। हो सकता है भविष्य में भी याद आये। उस दिन हियरो हवाई अड्डे के दो नम्बर टर्मिनल बिल्डिंग के कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर अनगिन लोगों की भीड़ में रंजन पर नजर पड़ते ही मुझमें एक तरह का बदलाव आ गया। मेरे इर्द-गिर्द असंख्य यात्रियों की भीड़ थी। कितने ही कस्टम्स ऑफिसर थे। दूर, कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर भी बेहिसाब भीड़ है और उस भीड़ में रंजन खड़ा है। बीच-बीच में, एकाध लहमों के लिए हम दोनों ने एक दूसरे को देखा था। जरा मुसकरा दिये थे। फिर भी मन ही मन दृष्टि-विनिमय के माध्यम से हमने एक-दूसरे से कितनी ही बातें कही-सुनी थीं।

रंजन के अवकाश के आखिरी दौर में हम लोगों की शादी हुई थी उस दिन रविवार था। दूसरे दिन सोमवार को हम अस्थायी ससुराल पहुँचे। मंगलवार को प्रीतिभोज और मिलन-रात्रि मनायी गयी शनिवार की रात ही वह लन्दन चला गया। विवाह की रात कोहब

में हम दोनों एक-दूसरे की बगल में बैठे थे। हँसी-मजाक, गीत-वाद्य के दौरान उसकी दृष्टि दौड़ती हुई आकर मुझ पर टिक गयी थी। हँस रहा था। कभी-कभी वह इस तरह हिल-डुलकर बैठ जाता था कि मेरे शरीर से उसका हाथ छू जाता था। या फिर मुझे लक्ष्य बनाकर उसने दो-चार शब्द कहे थे। मैं सुनती रही, जवाब नहीं दिया। जवाब देने में अपने आपको असमर्थ महसूस कर रही थी। लेकिन मुझे मजा आ रहा था। रात के आखिरी पहर में, भोर होने के कुछ पहले, कोहबर के सभी लोग सो गये थे। यहाँ तक कि बेलामासी भी। मैं भी। एका-एक लगा कि कोई मेरे गले में हाथ डालकर मुझे खींच रहा है। भय और आतंक से चिहुँक उठते ही देखा कि रंजन हँस रहा है। अपने होंठों के सामने उँगली रखकर उसने खामोश रहने का इशारा किया। बगैर कुछ बोले वह उठकर आहिस्ता-आहिस्ता बरामदे की ओर जाने लगा और इशारे से मुझे भी आने कहा। बाद में जब कभी इस पर सोचा है तो मुझे आश्चर्य हुआ है लेकिन उस रात बगैर कुछ सोचे-विचारे मैं भी आहिस्ता से दबे पाँवों कमरे से निकल बरामदे पर चली आयी थी। बिना आये रह नहीं पायी थी। मैं जैसे ही बरामदे पर पहुँची, मेरी ओर देखकर वह मुसकरा दिया। उसके बाद जेब से एक सिगरेट निकाल कर सुलगायी। उसके बाद अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर अत्यन्त दबे स्वर में कहा, "कैसा लग रहा है?"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। सिर झुकाकर जरा मुसकरा दी। उसने मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर फुसफुसाते हुए कहा, "तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ?—रत्नु या रत्ना?"

मैंने सिर झुकाकर ही कहा, "आपको जो भी मर्जी हो।"

अब उसने हँसते हुए मुझे अपने बाहुओं में भरकर कहा, "तुम क्या मेरी बुढ़ापे की तीसरी पत्नी हो जो आप कह कर संबोधित कर रही हो?"

यह कुछ वर्ष पहले की बात है। कोहबर की रात के अन्तिम क्षणों की तमाम बातें आज इस हिथरो हवाई अड्डे पर याद नहीं आ रही हैं। सब हाँ, उसकी एक बात मुझे कभी नहीं भूलेगी, "रत्ना मैं अत्यन्त साधारण आदमी हूँ। शायद तुम जैसी लड़की से शादी करना मेरे लिए उचित नहीं था। मगर मैं प्यार से तुम्हार तमाम अभाव की पूर्ति कर दूँगा।"

"हाँ।"

"इसके पहले आप क्या करते थे?"

"पढ़ता था। कॉलेज से निकलने के बाद ही रेल की यह नौकरी मिल गयी।"

"अब तो फिर और घूमिएगा-फिरिएगा।"

"हो सकता है।"

"हो सकता है क्यों?"

"भविष्य के बारे में क्या कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है?"

"सो तो ठीक है।"

भैया-भाभी जितने दिनों तक बाहर का चक्कर लगाते रहे, हम दोनों गपशप में मशगूल रहे—समुद्र के किनारे, बरामदे पर बैठकर या सबसे आखिर में डिनर के समय।

कलकत्ता लौटने के बाद भी उनसे कई बार मुलाकात होती रही। सौजन्य और भलमनसाहत की ओट में एक तरह के उत्ताप का अनुभव करती थी। मुझे बड़ा ही अच्छा लगता। शैशव की दहलीज लाँघ-यौवन की परिपूर्णता के दौरान, रंजन से शादी करने के पूर्व, बहुत से युवकों के संपर्क में आयी हूँ। सबको आना पड़ता है। इनमें से किसी के साथ प्रेम या मुहब्बत नहीं की है। फिर भी विवेक और अरजित मुझे अच्छे लगते थे। मुझे अब भी वे भूले नहीं हैं। बीच-बीच में उनकी याद आ जाती है। हो सकता है भविष्य में भी याद आये। उस दिन हिथरो हवाई अड्डे के दो नम्बर टर्मिनल बिल्डिंग के कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर अनगिन लोगों की भीड़ में रंजन पर नजर पड़ते ही मुझमें एक तरह का बदलाव आ गया। मेरे इर्द-गिर्द असंख्य यात्रियों की भीड़ थी। कितने ही कस्टम्स ऑफिसर थे। दूर, कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर भी बेहिसाब भीड़ है और उस भीड़ में रंजन खड़ा है। बीच-बीच में, एकाध लहमों के लिए हम दोनों ने एक दूसरे को देखा था। जरा मुसकरा दिये थे। फिर भी मन ही मन दृष्टि-विनिमय के माध्यम से हमने एक-दूसरे से कितनी ही बातें कही-सुनी थीं।

रंजन के अवकाश के आखिरी दौर में हम लोगों की शादी हुई थी। उस दिन रविवार था। दूसरे दिन सोमवार को हम अस्थायी ससुराल पहुँचे। मंगलवार को प्रीतिभोज और मिलन-रात्रि मनायी गयी। शनिवार की रात ही वह लन्दन चला गया। विवाह की रात कोहबर

में हम दोनों एक-दूसरे की बगल में बैठे थे। हँसी-मजाक, गीत-वाद्य के दौरान उसकी दृष्टि दौड़ती हुई आकर मुझ पर टिक गयी थी। हँस रहा था। कभी-कभी वह इस तरह हिल-डुलकर बैठ जाता था कि मेरे शरीर से उसका हाथ छू जाता था। या फिर मुझे लक्ष्य बनाकर उसने दो-चार शब्द कहे थे। मैं सुनती रही, जवाब नहीं दिया। जवाब देने में अपने आपको असमर्थ महसूस कर रही थी। लेकिन मुझे मजा आ रहा था। रात के आखिरी पहर में, भोर होने के कुछ पहले, कोहबर के सभी लोग सो गये थे। यहाँ तक कि बेनामासी भी। मैं भी। एका-एक लगा कि कोई मेरे गले में हाथ डालकर मुझे खींच रहा है। भय और आतंक से चिहुँक उठते ही देखा कि रंजन हँस रहा है। अपने होंठों के सामने उँगली रखकर उसने खामोश रहने का इशारा किया। बगैर कुछ बोले वह उठकर आहिस्ता-आहिस्ता बरामदे की ओर जाने लगा और इशारे से मुझे भी आने कहा। बाद में जब कभी इस पर सोचा है तो मुझे आश्चर्य हुआ है लेकिन उस रात बगैर कुछ सोचे-विचारे मैं भी आहिस्ता से दबे पाँवों कमरे से निकल बरामदे पर चली आयी थी। बिना आये रह नहीं पायी थी। मैं जैसे ही बरामदे पर पहुँची, मेरी ओर देखकर वह मुसकरा दिया। उसके बाद जेब से एक सिगरेट निकाल कर सुलगायी। उसके बाद अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर अत्यन्त दबे स्वर में कहा, "कैसा लग रहा है?"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। सिर झुकाकर जरा मुसकरा दी। उसने मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर फुसफुसाते हुए कहा, "तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ?—रुनु या रुणा?"

मैंने सिर झुकाकर ही कहा, "आपकी जो भी मर्जी हो।"

अब उसने हँसते हुए मुझे अपने बाहुओं में भरकर कहा, "तुम क्या मेरी बुढ़ापे की तीसरी पत्नी हो जो आप कह कर संबोधित कर रही हो?"

यह कुछ वर्ष पहले की बात है। कोहबर की रात के अन्तिम क्षणों की तमाम बातें आज इस हिथरो हवाई अड्डे पर याद नहीं आ रही हैं। तब हाँ, उसकी एक बात मुझे कभी नहीं भूलेगी, "रुणा मैं अत्यन्त साधारण आदमी हूँ। शायद तुम जैसी लड़की से शादी करना मेरे लिए उचित नहीं था। मगर मैं प्यार से तुम्हारे तमाम अभाव की पूर्ति कर

इतनी देर के बाद जब मैंने उसके चेहरे की ओर देखा तो उसने एकाएक मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा, "मुझे प्यार करोगी तो रुणा ?"

मैं एक शब्द भी नहीं बोली। मिलन-रात्रि में मैंने पहले-पहल उससे बातें की। वह भी बिलकल मामूली बात। बीच-बीच में दो-चार शब्द। स्वयं नहीं बोली बल्कि उसके प्रश्नों के उत्तर में कहा। वह जिस दिन कललत्ते से लन्दन के लिए रवाना हो रहा था उसी दिन मैंने पहली बार बातचीत में पहल की, "पहुँचते ही तार भेजना और उसके बाद पत्र लिखना।"

मेरा हाथ अपने हाथ में थाम और मुझे अपने निकट खींचते हुए उसने पूछा, "एनीथिंग मोर ?"

"नॉट एट द मोमेन्ट।"

बाद में, हवाई अड्डे की ओर रवाना होने के पहले एकान्त में मैंने पूछा था, "मुझे कब ले चलोगे ?"

"मैं तुम्हें नहीं ले जा सकूँगा रुणा। तुम्हें अकेले ही जाना होगा।"

"लेकिन ··"

"लेकिन क्या ?"

शुरू में कहने में जरा दुविधा महसूस कर रही थी मगर अन्ततः कहना ही पड़ा, "मैं कभी हवाई जहाज पर नहीं चढ़ी हूँ।"

रंजन हँसने लगा। बोला, "इससे तुम्हें किसी तरह की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

मैं एक क्षण चुप रही। उसके बाद पूछा, "मुझे कब जाना है ?"

"जाते ही मैं तुम्हारे लिए टिकट का इन्तजाम करूँगा। टिकट मिलने के बाद तुम अपने सुविधानुसार चली आना।"

"फिर भी कितने दिनों में जाना होगा ?"

अपने दोनों हाथों के घेरे में मेरी कमर को लपेटकर हँसते हुए बोला, "शादी के बाद क्या बहुत दिनों तक अकेले रहना अच्छा लगेगा ?"

उसके चले जाने के दो महीना बाद ही मैं रवाना हो गयी। टिकट बहुत पहले ही मिल गया था मगर गयी नहीं, जानकर ही नहीं गयी। व्यग्रता महसूस नहीं की थी। मगर बाद में इस हिथरो एयरपोर्ट के कस्टम्स एनक्लोजर के बाहर अनगिनत लोगों की भीड़ के बीच रंजन को लहमे भर के लिए देखते ही मैंने महसूस किया कि वह मुझे पाने के

लिए व्यग्र था। कलकत्ते से रवाना होने के बाद, हवाई जहाज में बैठते ही बहुतेरे व्यक्तियों के बारे में सोचती रही—माँ से शुरू कर बाकी तमाम लोगों के बारे में। यहाँ तक कि अपनी दाई पुटी को माँ तक के बारे में सोचा था। इन लोगों को छोड़कर हजारों मील दूर अनजाने माहौल में पति की घर-गृहस्थी बसाने की ख्वाहिश तीव्रता से महसूस नहीं की थी। इस हवाई अड्डे पर पहुँचते ही और उस पर निगाह जाते ही कलकत्ते के तमाम लोगों की याद मेरे ध्यान से उतर गयी। प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया के आकाश में कितने तारे झिलमिलाते रहते हैं, लेकिन पूनम की रात में वे खो जाते हैं। रंजन पर आँख जाते ही मेरे मन का आकाश जैसे पूर्णिमा की चाँदनी से परिप्लावित हो गया और बहुतेरे प्रिय व्यक्तियों की स्मृति विलुप्त हो गयी। उस दिन इसी हियरो हवाई अड्डे पर मैंने पहले-पहल महसूस किया कि मैं शादीशुदा हूँ, कि मैं रंजन की पत्नी हूँ। मेरे सबसे निकट का व्यक्ति इस मोड़ में खड़ा है। हँस रहा है। मुग्ध दृष्टि से मेरी ओर ताक रहा है। अचानक ऐसा लगा जैसे मेरी जिन्दगी का इस दुनिया के और किसी व्यक्ति की कोई जरूरत नहीं है। किसी और की कोई भूमिका नहीं है। मैं अब रुनु नहीं, रुणा हूँ। अपने पति की रुणा। रंजन के स्नेह की रुणा। मैं तब भी कस्टम्स एनक्लोजर के बीच थी। कस्टम्स के अफसरों ने तब मेरे असबाब की जाँच-पड़ताल नहीं की थी। वह तब मुझसे दूर था फिर भी ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं उसे अपने भुज-बन्धन में बाँधे होऊँ। छाती की धड़कन और श्वासों के माध्यम से रंजन की निकटता का अनुभव कर रही हूँ। और आज?

उस दिन रात के अँधेरे में इस अनजाने देश की धरती पर पहले-पहल कदम रखने के बावजूद मैंने झिलमिलाती हुई रोशनी देखी थी। उसी रात एयरपोर्ट सेन्ट्रल एरिया से बाथ रोड जाने के दौरान आधा मील लम्बे टेनल के बीच मैंने एक टुकड़ा आसमान देखा था। और आज? इस सवेरे के समय सूरज की रोशनी चारों तरफ फैल गयी है लेकिन फिर भी सब कुछ धुंधला-धुंधला दीख रहा है। कोई भी चीज साफ नहीं दीख रही। सूरज की रोशनी रात के अँधेरे को पी जाती है मगर मन के अँधेरे और प्राणों के कोहरे को छू लेने की उसमें शक्ति नहीं है।

बीच-बीच में मेरे साथ ऐसा होता है। काम-धाम और जिम्मेदारी निभाने के लिए जब भाग-दौड़ में व्यस्त रहती हूँ तो कुछ भी महसूस नहीं करती। लेकिन जब कोई काम नहीं रहता है, जब मैं एकाकी चुप्पी साधे बैठी रहती हूँ और तरह-तरह की बातें सोचती हूँ तो मुझे साफ-साफ कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। आसपास के लोगों की बातें मेरे कान में नहीं पहुँचती हैं। बीच-बीच में अजीब तरह का काण्ड हो जाता है। दफ्तर से घर आते ही एक प्याली चाय पीते न पीते गृहस्थी का काम करना शुरू कर देती हूँ। सवेरे जल्दी-जल्दी बाहर निकलना पड़ता है। इसके अलावा अलस्सुबह जगकर बहुत ज्यादा काम करने की इच्छा नहीं होती है। किसी तरह मुँह में कुछ डाकर ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ जाती हूँ। अकसर ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ जूड़ा बाँधते या चेहरे पर प्रसाधन का लेप करते-करते ही नाश्ता करना पड़ता है। किसी वजह से सुबह उठने में देर हो जाये तो फिर कहना ही क्या! किसी तरह एक गिलास दूध पीकर निकल जाती हूँ। यही वजह है कि दफ्तर से लौटने के दौरान ढेर सारा काम रहता है। चाहे अकेली ही क्यों न होऊँ, फिर भी घर-गृहस्थी तो है। रसोई से लेकर तरह-तरह का काम रहता है। सब कुछ अपने ही हाथों से करना पड़ता है। इस देश में नौकर-चाकर का झमेला नहीं है।

दफ्तर से घर लौटने के दौरान हर रोज तीन पेनी खर्च कर इवनिंग स्टैण्डर्ड की एक प्रति खरीदती हूँ। ट्यूब आते न आते एक बार सरसरी निगाह से देख लेती हूँ। पहले, इस देश में आने के बाद हर रोज नींद खुलते ही अखबार पढ़ने के लिए बेचैन हो उठती थी। सवेरे चाय पीने के दौरान अखबार पढ़ने को न मिलता तो बेचैनी का अहसास होता, मगर रंजन से कुछ नहीं कहती थी। खामोश रहती थी। तीसरे पहर दफ्तर से लौटने के वक्त वह हर रोज समाचार-पत्र के सांध्य संस्करण की एक प्रति ले आता था। मुझे आश्चर्य होता। धीरे-धीरे पता चला कि इस देश में आम लोगों के लिए सवेरे अखबार पढ़ना संभव नहीं है। और न ही उनके पास वक्त है। ये लोग तीसरे पहर घर लौटने के समय अखबार खरीदते और पढ़ते हैं। केवल कुछ चिन्तनशील और भाग्यशाली ही टाइम्स, टेलिग्राफ या गार्जियन पढ़ने के बाद दिन का काम शुरू करते हैं।

बहरहाल किसी-किसी दिन दफ्तर से घर लौटने के बाद काम-

काज शुरू करने के पहले चाय पीते हुए इवनिंग स्टैण्डर्ड पर दुबारा सरसरी निगाह दौड़ा लेती हूँ। उस दिन भी उलट-पुलटकर देख लिया था। एक-दो पृष्ठ उलटते ही पिकाडिली सर्कस की दो तसवीरों पर निगाह गयी। वेस्ट मिनिस्टर सिटी काउन्सिल पिकाडिली सर्कस का नये सिरे से निर्माण करना चाहता है। इरोज की प्रतिमा के नीचे, तलघर में विशाल शॉपिंग सेन्टर बनाया जायेगा। कवेन्ट्री रोड की शक्ल बदल दी जायेगी। और भी ढेर सारी बातें। इन दोनों तस्वीरों को देखते ही पहले-पहल लन्दन आने की बात याद आ गयी थी। हर रोज तीसरे पहर मैं और रंजन चहल-कदमी करने निकलते थे। याद है कि शुरू दिन जब ट्रैफलगर स्क्वायर देखा तो मुझे बड़ा मजा आया था। अनगिनत सैलानियों की तरह मैंने भी कबूतरों के बीच खड़े होकर तस्वीर खिचवायी थी। उसके बाद रिजेन्ट स्ट्रीट पकड़कर चलते-चलते पिकाडिली सर्कस पहुँची। पिकाडिली सर्कस का नाम बहुतों से बहुत बार सुन चुकी हूँ। तसवीर भी देखी है। तिकोने ट्रैफिक आइलैण्ड के बीच इरोज की एलुमिनियम की एक छोटी-सी प्रतिमा है। चारों तरफ असख्य नियॉन लाइट के विज्ञापन। कोकाकोला का इतना बड़ा विज्ञापन संभवतः दुनिया में और कहीं नहीं है। इसके अलावा मैक्सफैक्टर, गर्डन्स जीन और बहुत सारी चीजों के विज्ञापन हैं। लन्दन कहते ही आँखों के सामने बहुत सारी तसवीरें तैर उठती हैं। बकिंघम पैलेस, वेस्ट मिनिस्टिर ऐबे, सेन्ट पॉल्स कैथेड्रल, पार्लियामेन्ट हाउस, दस नम्बर डाउनिंग स्ट्रीट, ब्रिटिश म्युजियम, लण्डन युनिवर्सिटी, लण्डन स्कूल ऑफ एकोनोमिक्स, फ्लीट स्ट्रीट, ऑक्सफोर्ड सर्कस, पिकाडिली सर्कस, ट्राफलगर स्क्वायर, टेम्स, लण्डन ब्रिज वगैरह। सब कुछ देखने में अच्छा लगता है, सिर्फ दस दस नम्बर डाउनिंग स्ट्रीट को देखने से समझ में नहीं आता कि यह ब्रिटिश प्राइमर मिनिस्टर का निवास-स्थान है। इसके अलावा पिकाडिली सर्कस को देखकर इसका महत्त्व या लोकप्रियता समझना असंभव है। पहले दिन देखकर मैं हँस पड़ी थी। रंजन ने मेरे पास आकर पूछा, "क्या हुआ रुणा, हँस क्यों रही हो?"

मैंने हँसते हुए कहा, "यही तुम लोगों का विश्वविख्यात पिकाडिली सर्कस है।"

उसने आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखा और कहा, "हाँ; मगर तुम हँस क्यों रही हो?"

"इतने छोटे-से एक ट्रैफिक आइलैण्ड के बारे में तुम लोग इतना शोर-शराबा मचाते हो ?"

एक छोटा-सा ट्रैफिक आइलैण्ड होने के बावजूद पिकाडिली सर्कस लन्दन शहर का प्राण है। वेस्ट एण्ड का नर्व सेन्टर।"

"तब नये-नये आने के बावजूद मुझे पता था कि लन्दन शहर के इस पूर्व प्रान्त पर ही इन्हें इतना फख्र है। दुनिया के बेहिसाब आदमी लन्दन देखने जो दौड़े-दौड़े आते हैं उसका प्रमुख कारण है यह वेस्ट एण्ड। भौतिकवादी मनुष्यों के सम्पत्ति-संभोग का तीर्थस्थल है यह वेस्ट एण्ड। नेपोलियन ने अंग्रेजों को 'नेशन ऑफ शॉप कीपर्स' कहकर कोई अन्याय नहीं किया था। इसका प्रमाण पिकाडिली सर्कस के चारों तरफ चहल-कदमी करने से ही मिल जाता है। केवल आकार-प्रकार से ही किसी चीज का महत्त्व समझा नहीं जा सकता है, यह मैं जानती थी। फिर भी उस दिन पहले-पहल पिकाडिली सर्कस देखकर मैं रंजन से बगैर मजाक किये रह नहीं सकी।

पिकाडिली सर्कस की उस छोटी प्रतिमा की ओर उँगली से इशारा करते हुए मैंने पूछा, "यह किसकी प्रतिमा है ?"

रंजन हँस दिया। "सुन्दरी, तुम्हारे जैसा इतिहास न पढ़ने पर भी मैं यहाँ बहुत दिनों से हूँ।"

"इससे क्या हुआ ?"

"लन्दन के बारे में मुझे थोड़ी-बहुत जानकारी है।"

"बात सही है, लेकिन पहले मेरे सवाल का जवाब दो।"

रंजन ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने वक्षस्थल तक खींच लिया और कानों में फुसफुसाते हुए कहा, "हमारे-तुम्हारे उपास्य देवता की प्रतिमा है।"

मैं बगैर हँसे रह नहीं सकी। "लगता है, तुम्हें जानकारी है।"

"चाहे और कुछ जानूँ या न जानूँ, प्रेम के देवता के बारे में जरूर जानता हूँ।"

"सो तो ठीक है। इतने दिनों तक इस देश में रहने के बावजूद प्रेम के देवता के बारे में पता न रहे, यह कैसे हो सकता है ?" जरा रुककर उसके चेहरे पर आँख टिकाते हुए कहा, "यहाँ खड़े होकर कितनी ही सुन्दरियों को हृदय सौंपा होगा। यह सब याद नहीं आ रहा ?"

रंजन एकाएक कवि हो गया, "समुद्र के किनारे खड़े होने से क्या नदी-नाला की बात याद आती है ?"

"इसका मतलब ?"

"तुम्हें पाने के बाद भी और किसी को···"

मैंने टोका, "रहने दो। अब प्यार-मुहब्बत दिखाने की जरूरत नहीं।"

वह मुसकरा दिया। "रुणा, जो सच है, वही कहा है।"

मैंने उसका एक हाथ अपनी मुट्ठी में दबा लिया और कहा, "जानती हूँ कि तुम सच कह रहे हो।"

सड़क पारकर उस छोटे से घिरे आइलैण्ड में इरोज की प्रतिमा के तले हम एक-दूसरे से सटकर बैठ गये। कुछ देर तक हम एक दूसरे की ओर ताकते रहे। एक भी शब्द न बोले। बोलने की इच्छा ही नहीं हुई। चारों तरफ से अनगिनत लोग आ-जा रहे थे लेकिन हम सब कुछ से निर्लिप्त होकर एक-दूसरे की ओर ताकते रहे। और किसी व्यक्ति को, किसी चीज को देखने का हममें आग्रह नहीं था। कुछ देर बाद सामने के क्राइटेरियन थियेटर की ओर हाथ से इशारा करते हुए रंजन बोला, "यहाँ आने के लगभग एक महीने बाद मुझे इस थियेटर में नौकरी मिली थी।"

"सच ?"

"हाँ।"

"कितने दिनों तक यहाँ काम करते रहे ?"

"सिर्फ एक महीना।"

"एक महीने बाद ही नौकरी छोड़ दी ?"

"छोड़ी नहीं, छोड़नी पड़ी।"

"क्यों ?"

"जिस लड़की के स्थान पर मैं नौकरी कर रहा था वह छुट्टी बिता कर लौट आयी।"

"उसके बाद ?"

रंजन जरा हँसा। मेरी ओर से दृष्टि हटाकर संभवतः सुदूर अतीत की ओर ले गया। क्राइटेरियन थियेटर की ओर देखता हुआ मुझसे बोला, "हाथ में बारह पौंड ले थियेटर से निकल कर यह तय नहीं कर

पाया कि क्या करूँ और आखिर में ठीक इसी स्थान में आकर चुपचाप बैठ गया·····"

"सच ?"

"हाँ, ठीक यहीं बैठकर आकाश-पाताल सोचने लगा।" क्राइटेरियन थियेटर की ओर देखकर वह जरा मुसकराया। "तरह-तरह की भावनाओं में इस कदर डूब गया कि पता ही नहीं चला कि कितने घण्टे बीत गये। अचानक एक लड़की की पुकार सुनकर चौंक पड़ा।"

मेरी निगाह उस पर टिकी थी और उत्सुकता के साथ उसके बीते दिनों की बातें सुन रही थी। मैं एक शब्द भी नहीं बोली।

रंजन ने दुबारा मेरी ओर ताकते हुए कहना शुरू किया, "देखा, वह मिस क्रॉस थी।"

"मिस क्रॉस कौन है ?"

"जिसकी जगह पर मैं काम कर रहा था।···"

"ओ।"

"मुझे उस तरह खामोश बैठा देखकर उसे आश्चर्य हुआ था। उसके बाद मेरे पास आकर उसने जैसे ही पुकारा, मैं चिहुँक उठा।"·····

"तुमसे उसकी जान-पहचान पहले से ही थी ?"

"जिस दिन वह छुट्टी पर जा रही थी उस दिन कुछ क्षणों के लिए उससे मुलाकात हुई थी। उसके बाद छुट्टी से जब लौटकर आयी तो चार-पाँच मिनट के लिए उससे मुलाकात हुई थी। दो-चार मामूली बातों के अलावा कोई गहरी जान-पहचान न थी।"

उस दिन की उस मिस क्रॉस से बाद में मेरी भी जान-पहचान हुई थी। बहुत बातें हुई थीं। एक बार उस क्राइटेरियन थियेटर में एक साथ थियेटर देख चुकी हूँ। ढेर सारी बातें सुनी हैं। उस दिन की तमाम बातें। मिस क्रॉस ने हँसते-हँसते मुझसे कहा था, "तुम्हारी हसबैण्ड को उस दिन उस तरह बैठे देखकर आइ फेल्ट वेरी बैड। उसे पुकार कर बगल के एक इटालियन रेस्तराँ में ले गयी। उसके बाद कॉफी पीते हुए सीधे पूछा, "यू वान्ट सम जॉब ?"

चाहे जो हो, है तो मर्द ही। उस पर यंगमैन। एक अधजानी-पहचानी लड़की से इस तरह का सवाल सुनकर उसके पौरुष को धक्का लगना स्वाभाविक है। रंजन ने कॉफी की प्याली से मुँह हटाकर किसी तरह उसकी ओर ताकते हुए कहा, "हाँ, नौकरी की बेहद जरूरत है।"

मिस क्रॉस ने सिगरेट का डिब्बा रंजन की ओर बढ़ाते हुए कहा, "इससे कुछ कम तनख्वाह की बुकिंग क्लर्क की नौकरी मिले तो करोगे ?"

कम तनख्वाह की का मतलब ?"

"यहाँ जितना मिलता था उससे शायद एक-डेढ़ पौंड कम मिलेगा।"

'जरूर करूँगा।"

"डॉन्ट वरी। यू विल गेट समथिंग वेरी सून।" सिगरेट का कश लेते हुए मिस क्रॉस ने कहा, "मेरा एक ब्यॉय फ्रेन्ड पैलेस थियेटर में काम करता है। उसने कहा था कि उन्हें एक आदमी की जरूरत है।"

तब मैं लन्दन नहीं आयी थी। जब रंजन से मिस क्रॉस की मुलाकात हुई थी, तब मैं बहुत दूर कलकत्ते में थी। जब वे लोग रेस्तराँ में बैठकर बातें कर रहे थे, तब मैं शायद प्याली के साथ सिनेमा देखने के बाद घर लौट रही थी। या फिर विवेक के साथ कैफे डी मनिको में दाखिल हो रही थी। आज इस हियरो हवाई अड्डे पर बैठ ऐसा लग रहा है जैसे मैं भी उस दिन पिकाडिली सर्कस के इस ग्रीक प्रेम-देवता इरोज की प्रतिमा के तले ही बैठी थी। उन दोनों के साथ मैं भी इटालियन रेस्तराँ के अन्दर गयी थी। अपने कान से उन लोगों की बातें सुनी थीं।

रंजन सिर्फ धन्यवाद कहकर सिर झुकाये बैठा रहा।

सिगरेट खत्मकर सामने के एसट्रे में फेंकते हुए मिस क्रॉस मुसकरा दीं। "डु यू नो, बहुत दिन पहले एक दिन मैं भी तुम्हारी ही तरह इसी पिकाडिली सर्कस के बीच बैठकर समय गुजार चुकी हूँ···"

रंजन ने हैरत में आकर पूछा, "क्यों ?"

"वन फाइन मॉर्निंग, मेरी माँ एकाएक मुझे छोड़कर चली गयी।"

"सच ?"

"येस शी जस्ट डेजर्टेड मी। और अचानक यह जानी-पहचानी दुनिया बिलकुल अनजानी जैसी लगने लगी।"

यहाँ के समाज के जीवन के संबंध में पूरे तौर पर अनजाने रंजन ने पूछा, "आपकी माँ एकाएक चली क्यों गयीं ?"

सवाल सुनकर मिस क्रॉस हँस देती है, "टु लिव विथ हर लवर।"

"आपके पिताजी···"

पूरी बात खत्म करने के पहले ही मिस क्रॉस ने कहा, "वे कुछ साल पहले दुनिया से विदा हो चुके थे।"

"माइ गॉड !"

"माइ फादर वाज ए वेरी काइन्ड हर्टेड मैन। बड़े ही शरीफ थे···।"

"सच ?"

"हाँ। और वे मुझे इतना प्यार करते थे कि आप सोच भी नहीं सकते। हर रोज ड्यूटी के बाद लौटने के वक्त मेरे लिए कुछ न कुछ अवश्य ही ले आते थे····।"

"अच्छा।"

"इसके अलावा हर रोज मुझे अपने साथ ले चहल-कदमी करने निकलते थे। छुट्टी के दिन हम लोग इतनी खुशियाँ मनाते थे कि क्या कहूँ ! मेरे पिताजी जैसे आदमी सचमुच ही दुर्लभ होते हैं।"

"आपकी माँ आपको छोड़कर क्यों चली गयीं ?"

"इसलिए कि दैट मैन नेवर लाइक्ड मी।"

"तो फिर उस भले आदमी को आपने देखा है ?"

"ऑफ कोर्स। पिताजी की मृत्यु के पहले भी दो-चार बार आ चुके थे, मगर पिताजी के देहान्त के बाद आने-जाने का सिलसिला बहुत बढ़ गया।"

"लगता है, वे आपको पसन्द नहीं करते थे।"

"नहीं। बिलकुल नहीं। डु यू नो द रिज्न ?"

"क्या ?"

"उस आदमी ने अचानक एक दिन मुझे अपने डेस्क से पिताजी का फोटो हटा लेने को कहा।"

रंजन को आश्चर्य होता है, "क्यों ?"

"बोला, फॉरगेट दिस डेड मैन।"

"माइ गॉड !"

"जानते हैं, मैंने क्या कहा था ?"

"क्या ?"

"कहा था, नेवर ट्राइ टु कम बिट्विन मी एण्ड माइ फादर···।"

"बात तो सही है।"

"उस दिन हमारे घर में अशान्ति फैल गयी। उस आदमी से बहस करने के कारण माँ कितने गुस्से में आ गयी ! बाप रे, वह गुस्सा ! माँ

और उस अभागे ने मेरे डेड फादर तक को गाली दी…।"

मिस क्रॉस एकाएक ठिठक कर खड़ी हो गयी। "बहरहाल उस दिन मैं पागल की तरह जहाँ-तहाँ का चक्कर लगाने के बाद इसी पिकाडिली सर्कस के इरोज की प्रतिमा के नीचे घण्टों तक खामोश बैठी रही।" बहुत देर के बाद मिस क्रॉस के चेहरे पर हल्की-सी मुसकराहट आयी, "तुम्हें देखकर मुझे बीते दिनों की याद आ गयी। समझ गयी कि तुम्हारा मन बेहद उदास है।"

रंजन चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था।

मिस क्रॉस सहसा उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "कुछ चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायेगा। सी मी डे आफ्टर टुमॉरो।"

रंजन ने और भी बातें बतायी थीं। उसकी बात का एक-एक शब्द मुझे याद आ रहा है। साथ ही मिस क्रॉस और पिकाडिली सर्कस की याद आ रही है।

आज ही नहीं बल्कि इसके पहले भी बहुत-बार तरह-तरह की वजहों से पिकाडिली सर्कस की याद आयी है। वहाँ जैसे अचानक बहुत कुछ घटित हो जाता है। व्यतीत की बहुत सारी स्मृतियाँ नये सिरे से झलक दिखा जाती हैं। खोया हुआ आदमी जैसे एकाएक सामने आकर खड़ा हो जाता है।

एक बार नहीं, अनेक बार मेरे साथ ऐसी घटना घटित हुई है। जाने क्यों, किसी वजह से वेस्ट एण्ड जाते ही मैं हमेशा पिकाडिली और रिजेंट स्ट्रीट के कोने पर खड़ी हो निरुद्देश्य दृष्टि से चारों तरफ की जनता की भीड़ की ओर देखने लगती हूँ। पिकाडिली सर्कस, ट्रैफालगेर स्क्वायर या इसी किस्म की बहुत ही जानी-पहचानी जगहों में कितने ही आदमी पूर्व निर्धारित समय पर अपने दोस्त मित्रों और परिचितों से भेंट-मुलाकात करते हैं। किसी से एप्वाइन्टमेन्ट न रहने पर भी यहाँ खड़ी होकर मैं किसी मित्र से मिलने की उम्मीद करती रहती हूँ। कभी-कभी सचमुच ही किसी से मुलाकात हो जाती है। बीच-बीच में लोगों को देखते-देखते रंजन, मिस क्रॉस, कुछ दूसरे आदमी और अपने बारे में सोचने लगती हूँ और अनमनी जैसी हो जाती हूँ।

एकाएक किसी के हाथ के स्पर्श का अनुभव अपने कन्धे पर करते ही मैं चिहुँक उठती हूँ। गरदन घुमाने पर श्रीकान्त को पाती हूँ—श्रीकान्त सरकार को। कुछ वर्ष पूर्व बंगाल इंस्टिट्यूट में सरस्वती पूजा

पूरी बात खत्म करने के पहले ही मिस क्रॉस ने कहा, "वे कुछ साल पहले दुनिया से विदा हो चुके थे।"

"माइ गॉड !"

"माइ फादर वाज ए वेरी काइन्ड हर्टेड मैन। बड़े ही शरीफ थे···।"

"सच ?"

"हाँ। और वे मुझे इतना प्यार करते थे कि आप सोच भी नहीं सकते। हर रोज ड्यूटी के बाद लौटने के वक्त मेरे लिए कुछ न कुछ अवश्य ही ले आते थे····।"

"अच्छा।"

"इसके अलावा हर रोज मुझे अपने साथ ले चहल-कदमी करने निकलते थे। छुट्टी के दिन हम लोग इतनी खुशियाँ मनाते थे कि क्या कहूँ ! मेरे पिताजी जैसे आदमी सचमुच ही दुर्लभ होते हैं।"

"आपकी माँ आपको छोड़कर क्यों चली गयीं ?"

"इसलिए कि दैट मैन नेवर लाइक्ड मी।"

"तो फिर उस भले आदमी को आपने देखा है ?"

"ऑफ कोर्स। पिताजी की मृत्यु के पहले भी दो-चार बार आ चुके थे, मगर पिताजी के देहान्त के बाद आने-जाने का सिलसिला बहुत बढ़ गया।"

"लगता है, वे आपको पसन्द नहीं करते थे।"

"नहीं। बिलकुल नहीं। डु यू नो द रिज़्न ?"

"क्या ?"

"उस आदमी ने अचानक एक दिन मुझे अपने डेस्क से पिताजी का फोटो हटा लेने को कहा।"

रंजन को आश्चर्य होता है, "क्यों ?"

"बोला, फॉरगेट दिस डेड मैन।"

"माइ गॉड !"

"जानते हैं, मैंने क्या कहा था ?"

"क्या ?"

"कहा था, नेवर ट्राइ टु कम बिट्विन मी एण्ड माइ फादर···।"

"बात तो सही है।"

"उस दिन हमारे घर में अशान्ति फैल गयी। उस आदमी से बहस करने के कारण माँ कितने गुस्से में आ गयी ! बाप रे, वह गुस्सा ! माँ

और उस अभागे ने मेरे डेड फादर तक को गाली दी...।"

मिस क्रॉस एकाएक ठिठक कर खड़ी हो गयी। "बहरहाल उस दिन मैं पागल की तरह जहाँ-तहाँ का चक्कर लगाने के बाद इसी पिकाडिली सर्कस के इरोज की प्रतिमा के नीचे घन्टों तक खामोश बैठी रही।" बहुत देर के बाद मिस क्रॉस के चेहरे पर हल्की-सी मुसकराहट आयी, "तुम्हें देखकर मुझे बीते दिनों की याद आ गयी। समझ गयी कि तुम्हारा मन बेहद उदास है।"

रंजन चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था।

मिस क्रॉस सहसा उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "कुछ चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायेगा। सी मी टे आफ्टर टुमॉरो।"

रंजन ने और भी बातें बतायी थीं। उसकी बात का एक-एक शब्द मुझे याद आ रहा है। साथ ही मिस क्रॉस और पिकाडिली सर्कस की याद आ रही है।

आज ही नहीं बल्कि इसके पहले भी बहुत-बार तरह-तरह की वजहों से पिकाडिली सर्कस की याद आयी है। वहाँ जैसे अचानक बहुत कुछ घटित हो जाता है। व्यतीत की बहुत सारी स्मृतियाँ नये सिरे से झलक दिखा जाती हैं। खोया हुआ आदमी जैसे एकाएक सामने आकर खड़ा हो जाता है।

एक बार नहीं, अनेक बार मेरे साथ ऐसी घटना घटित हुई है। जाने क्यों, किसी वजह से वेस्ट एण्ड जाते ही मैं हमेशा पिकाडिली और रिजेंट स्ट्रीट के कोने पर खड़ी हो निरुद्देश्य दृष्टि से चारों तरफ की जनता की भीड़ की ओर देखने लगती हूँ। पिकाडिली सर्कस, ट्रैफालगेर स्क्वायर या इसी किस्म की बहुत ही जानी-पहचानी जगहों में कितने ही आदमी पूर्व निर्धारित समय पर अपने दोस्त मित्रों और परिचितों से भेंट-मुलाकात करते हैं। किसी से एप्वाइन्टमेन्ट न रहने पर भी यहाँ खड़ी होकर मैं किसी मित्र से मिलने की उम्मीद करती रहती हूँ। कभी-कभी सचमुच ही किसी से मुलाकात हो जाती है। बीच-बीच में लोगों को देखते-देखते रंजन, मिस क्रॉस, कुछ दूसरे आदमी और अपने बारे में सोचने लगती हूँ और अनमनी जैसी हो जाती हूँ।

एकाएक किसी के हाथ के स्पर्श का अनुभव अपने कन्धे पर करते ही मैं चिहुँक उठती हूँ। गरदन घुमाने पर श्रीकान्त को पाती हूँ—श्रीकान्त सरकार को। कुछ वर्ष पूर्व बंगाल इंस्टिट्यूट में सरस्वती पूजा

के समय जान-पहचान हुई थी। श्रीकान्त जल्दी ही किसी को घनिष्ठ बना ले सकता है। मुझे अच्छी तरह याद है, उस सरस्वती पूजा के दिन कुछेक घंटों की जान-पहचान के बाद ही वह एकाएक मेरे पास आया और कहा, "रुणु, पाँच पौंड के इस नोट को तुड़ा दोगी ?"

मामूली जान-पहचान रहने के बावजूद नाम लेकर पुकारे जाने पर हैरानी हुई थी लेकिन आश्चर्य नहीं हुआ था। हमउम्र औरत-मर्द का नाम लेकर पुकारे जाने का रिवाज हमारे देश में न रहने पर भी इस देश में है। बगैर कुछ बोले मैंने उसके पाँच पौंड के नोट को तुड़ा दिया था।

सरस्वती पूजा के तकरीबन एक महीने बाद एक रविवार की सुबह श्रीकान्त ने टेलीफोन किया, "तुम कहाँ रहती हो ?"

"रहूँगी कहाँ ? दफ्तर और घर आते-जाते ही दिन गुजर जाता है।"

"जानती हो, मैं कितने दिनों से टेलीफोन कर रहा हूँ ?"

"इसके पहले भी टेलीफोन किया है ?"

"जरूर।" उसकी हल्की हँसी की आवाज टेलीफोन पर तैरती हुई आयी।

"तुम्हारी जैसी सुन्दरियाँ क्या एक बार टेलीफोन करने से ही मिल जाती हैं ?"

मैं भी हँस पड़ी। "बात क्या है ?"

"अगले रविवार को 'झिन्द का बन्दी' देखने चलोगी न ?"

"अगले रविार को बंगला सिनेमा हो रहा है ?"

"माइ गॉड ! तुम्हें यह भी मालूम नहीं ?"

"नहीं।"

श्रीकान्त ने व्यंग्य करते हुए जानना चाहा, "तुम लन्दन में थीं या मेडिटेरियन कॉस्ट घूमने-फिरने गयी थीं ?"

मैं दुबारा हँस पड़ती हूँ। कहती हूँ, "मरने गयी थी।"

"मरी क्यों नहीं ? मर जाती तो कम से कम कुछ लोग शान्ति से सो सकते थे।"

श्रीकान्त की बातचीत का तौर-तरीका इसी तरह का है। जो लोग उसे पहचानते नहीं, वे उसकी बात सुनकर झल्ला सकते हैं या आश्चर्य

में आ सकते हैं। मुझे मालूम है कि वह इसी तरह का हँसी-मजाक करता है।" तुम शान्ति से सो सकते हो तो ?"

"कोशिश तो करता हूँ, मगर हमेशा ऐसा होना मुमकिन है ?"

"मेरी वजह से तुम्हें नींद नहीं आती थी, इसका क्या हुआ ?"

"अगले रविवार को झिन्द का वन्दी देखने के वक्त तुम्हारे कानों में कहूँगा।"

श्रीकान्त जैसे युवकों के सिर पर भूत सवार रहता है। एक बार दिमाग में कोई बात आनी चाहिए, फिर छुटकारा मिलना मुश्किल है। अगले रविवार को मैं सचमुच ही झिन्द का बन्दी देखने गयी। सिनेमा देखने के दौरान हम बीच-बीच में दो-चार बातें कर रहे थे। मामूली बातें। एक बार उसने कहा, "बीच-बीच में मुलाकात करना। बिलकुल डुबकी मत लगा देना।"

"क्यों ? बात क्या है ?"

"बात और क्या होगी ? बीच-बीच में मुलाकात होगी तो मुझे शान्ति मिलेगी।"

"सच ?"

"जी हाँ।"

"तुम्हें शान्ति मिलेगी तो क्या मुझे भी शान्ति मिलेगी ?"

श्रीकान्त ने बगैर किसी प्रकार का तर्क किये कहा, "मेरे जैसे हैंडसम, यंग, आनेस्ट एण्ड फ्रेंडली फ्रेंड को निकट पाकर शान्ति न मिले तो इसका क्या कारण हो सकता है ?"

मैं श्रीकान्त से कुछ पूछूं कि इसके पहले ही उसने कहा, "तुम्हारी बगल में खड़े होकर एक-एक कर कितनी सिगरेटें पी चुका हूँ, मालूम है ?"

"कितनी ?"

"तीन।"

"सच ?"

"तुम्हारे सामने से होकर कितनी बार चहल-कदमी कर चुका हूँ ?"

"मालूम है, छह बार।" मैंने हँसते हुए जवाब दिया।

"उतनी अनमनी होकर तुम क्या सोच रही थी ?"

"कुछ नहीं; यूं ही खड़ी थी।"

"मेरे बारे में सोच रही थीं क्या ?" श्रीकान्त ने गंभीर होकर पूछा।

"शायद तुम्हारे बारे में ही सोच रही थी।" मैंने उसके चेहरे की ओर ताकते हुए कहा।

"शायद का इस्तेमाल क्यों किया ?"

रिजेन्ट स्ट्रीट से आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ती हुई मैं बोली, "ठीक-ठीक समझ में नहीं आ रहा था कि मैं किसके बारे में सोच रही थी। इसीलिए मैंने कहा कि शायद तुम्हारे बारे में ही सोच रही थी।"

"तुम बीच-बीच में इस तरह अनमनी हो जाती हो कि लोग तुम्हारे बारे में गलत धारणा बना लेते हैं। सोचते हैं कि तुम बहुत अहंकारी हो।"

"तुम नहीं सोचते ?"

"मैं इस तरह नहीं सोचता। मेरे सभी डायरेक्ट एक्शन हुआ करते हैं।"

श्रीकान्त सचमुच ही कुछ लुका-छिपाकर रख नहीं पाता। जब-तब जिसके-तिसके सामने बेहिचक बोल जाता है। किसी तरह की परवाह नहीं करता। यही तो पिछले सितंबर में ब्रिस्टल जाने के दौरान ऐसा काण्ड कर बैठा कि क्या कहा जाये !

ब्रिस्टल में राजाराम मोहन राय की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए इण्डिया हाउस की ओर से एक छोटे से उत्सव का आयोजन किया जाता है। लन्दन के अनेक भारतीय इस उत्सव में शामिल होने के लिए ब्रिस्टल जाते हैं। हम लोगों के हाइ कमिश्नर यद्यपि रोल्स रॉयल पर तिरंगा झण्डा फहरा कर जाते हैं लेकिन बाकी लोग एक कोच से जाते हैं। मामूली किराये पर ही इस कोच से जाया जा सकता है। रंजन ने कई बार जाना चाहा था मगर तरह-तरह के कारणों से जा नहीं सका था। पिछली बार विधान की वजह से जाने को मजबूर होना पड़ा था। दो दिन पहले उसने टेलीफोन से कहा, "परसों तुम ब्रिस्टल जा रही हो, मालूम है न ?"

मैंने अचकचाकर कहा, "नहीं, मालूम नहीं है।"

"परसों राजा राममोहन का...?"

विधान की बात खतम कर देने के पहले ही मैंने कहा, "मैंने कोच का टिकट नहीं कटाया है।"

"मैंने कटा लिया है।"

"क्यों?"

टेलीफोन से ही उसकी हँसी का रेला आया। "तुम्हारे इतने प्रशंसक जा रहे हैं कि बगैर कटाये रह नहीं सका।"

"टेलीफोन रख दूँ?"

"सुनने में तो अच्छा ही लगता होगा, फिर टेलीफोन क्यों रखोगी?"

"अबकी सचमुच ही लाइन काट दूँगी।"

"उफ! झल्ला क्यों रही हो? सचमुच ही तुम्हारे इतने भक्त जा रहे हैं कि मुझे लगा, तुम्हें कोच में न देखेंगे तो पहुँचने के पहले ही वे राम मोहन का नाम भूल जायेंगे।"

खैर, मैं वहाँ सचमुच ही गयी थी। इण्डिया हाउस के सामने कोच पर सवार होने के वक्त श्रीकान्त से मुलाकात हो गयी।" विधानदा नहीं आया इसलिए तुम्हारा टिकट मुझे दे दिया है।"

विधान इतने ऊल-जलूल झमेलों में फँसा रहता है कि उसके लिए ब्रिस्टल जाना संभव नहीं है, यह मैं जानती थी। मैंने सिर्फ इतना कहा, "अच्छा ही हुआ।"

श्रीकान्त और इण्डिया हाउस के दो-चार व्यक्ति कोच के बाहर खड़े थे। बाकी लोग अन्दर थे। श्रीकान्त ने कहा, "जाओ, अन्दर जाकर बैठ जाओ।"

मैं बिना कुछ बोले कोच के अन्दर चली गयी। तभी घोषदा ने पुकारा, "आइये-आइये।"

कोच के अन्दर भले ही अधिकाश जाने-पहचाने लोग न थे मगर दो-चार जरूर थे। घोषदा के आग्रह पर, मैं उसी के पास जाकर बैठ गयी। बगल में बैठते ही घोषदा ने पूछा, "आजकल आप कहीं दिखाई नहीं पड़ती हैं।"

"अपने काम-धाम की वजह से इतनी व्यस्त रहती हूँ कि कहीं आना-जाना नहीं हो पाता है।"

"काम-धाम की वजह से हम भी व्यस्त रहते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दें।"

मैं क्या जवाब दूँ! सिर्फ हँस दी।

मेरी चुप्पी से घोषदा के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी।" इस

महीने के अन्त में या अक्टूबर की शुरुआत के एक सप्ताहान्त में एक शॉट आउटिंग का प्रोग्राम रखा है। यू मस्ट कम विथ अस।"

"कोशिश करूँगी।"

"कोशिश करूँगी, कहने से काम नहीं चलेगा। आपको आना ही है।"

घोषदा का पूरा नाम है निवारण चन्द्र घोष। इस देश में आने पर 'निवारण' और 'चन्द्र' दोनों शब्द पीछे छूट गये। अब उसका नाम है मिस्टर एन० सी० घोष। वयस्कों और बंधु-बांधवों के बीच वह एन० सी० और अपने से कम उम्र के लोगों के बीच घोषदा के नाम से परिचित है। उसके बारे में तरह-तरह के लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। उनमें से कौन-सी सच और कौन-सी झूठ है, किसी को मालूम नहीं। घोषदा के कान में सारी बातें पहुँचती हैं मगर वह किसी का विरोध नहीं करता। सिर्फ हँसता है। कभी-कभी बहुत दबाव डालकर कुछ सुनने की इच्छा जाहिर करते पर वह इण्डियन हाइ कमिशन के प्रेस अटैशे की तरह एक ही उत्तर देता है—"नाइदर आइ कन्फर्म नॉर आइ डिनाइ।" यही वजह है कि घोषदा के संबंध में लन्दन के बंगाली समाज के बीच इतनी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनका कोई अन्त नहीं। कब वह इस देश में आया था और क्यों आया था, इसके बारे में भी किसी को कुछ मालूम नहीं। शायद एक बार घोषदा ने बताया था कि वह बैरिस्टरी पढ़ने इस देश में आया था। लेकिन श्रीकान्त ने तत्क्षण कहा था, "क्यों लंबा-चौड़ा हाँक रहे हो घोषदा? मैट्रिक पास कर बैरिस्टरी पढ़ी जाती है?"

घोषदा में बहुत सारे दोष हैं लेकिन गुण भी बहुत सारे हैं। हम भारतीय इस देश में आकर अंग्रेजों के बहुत से तौर-तरीके सीख गये हैं मगर उनकी परिहास-प्रियता पर अपना दखल नहीं जमा सके हैं। लेकिन घोषदा ने उस परिहास प्रियता पर अपना दखल जमा लिया है। लोग उसका मजाक उड़ाते हैं मगर वह गुस्से में नहीं आता, बल्कि हँस देता है। एक बार डॉक्टर सरकार के घर पर हम लोगों में से बहुत सारे व्यक्ति निमंत्रित थे। बारीन घोस, अनिल बैनेर्जी, श्यामल बोस, गोरा दत्त, चन्दना घोषाल, माला चैटर्जी, आरति राय वगैरह के साथ घोषदा

भी था। श्रीकान्त भी था। स्वाभाविक तौर पर खान-पान चलने के बाद घोषदा के बारे में बातें चलने लगीं। किसी ने पूछा, "अच्छा घोषदा, यह तो बताइये कि अपने शादी क्यों नहीं की?"

घोषदा उत्तर दे कि इसके पहले ही श्रीकान्त ने कहा, "शादी न करने से घोषदा की कौन-सी क्षति हो रही है?"

बारीन घोष ने पूछा, "इसका मतलब?"

श्रीकान्त ने बेझिझक कहा, "भलाई करने के नाम पर घोषदा ने क्या कोई कम लड़कियों की संगति का उपभोग किया है जो शादी न करने से उसे किसी असुविधा का सामना करना पड़े?"

घोषदा ने निर्विकार भाव से चुरुट के कश लेते हुए कहा, "इस तरह तुमने अपनी व्यर्थता की बात सबके सामने जाहिर कर दी?"

यह सही है कि घोषदा की बहुत सारी औरतों के साथ घनिष्ठता है। न होने का कोई कारण नहीं है। जो काम दूसरे से नहीं हो सकता, घोषदा उसे अनायास कर देता है। माया राय ने एक दिन कहा, "कनाडा से मेरे जेठ का पत्र आया है। लिखा है, चाहे जैसे हो नौ-दस पौंड खजूर का गुड़ भेज दो। घोषदा ने चुरुट के कश लेते हुए एक बार मुलायम दृष्टि से माया की ओर देखा। बोला, "हिज हाइनेस जेठ का पता दीजिये, पहुँच जायेगा। सचमुच ही पहुँच गया था। इस घटना से मैं स्वयं परिचित हूँ। उसके कई महीने बाद बंगाली इंस्टिट्यूट के पुस्तकालय से किताब लेकर निकलने के दौरान माया से मुलाकात हुई। माया को तांत की एक अच्छी-सी साड़ी पहने देखकर मैंने कहा, "वाह, यह साड़ी बड़ी ही फब रही है।"

"साड़ी सचमुच ही बहुत अच्छी है?' माया ने साड़ी की ओर देखकर मुझसे पूछा।

"अच्छी ही क्यों, सुपर्ब है।"

"आज पहले-पहल पहनकर निकली हूँ।"

"सच?"

"हाँ।"

"मिस्टर राय की पसन्द है या कलकत्ते से माँ ने भेजा है?"

माया व्यंग्य की हँसी हँस दी। "राय कहाँ साड़ी पसन्द कर सकता है? घोषदा ने मँगा दी है।"

घोषदा की पसन्द की तारीफ किये बगैर रह न सकी। "घोषदा की पसन्द काबिले दाद है !"

माया ने मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर फुसफुसाते हुए कहा, "विवाहितों की अपेक्षा अनब्याहे ही औरतों के मन को अच्छी तरह समझते हैं।"

मैं हँसती हुई बाहर निकल गयी। माया भी हँसती हुई अन्दर चली गयी। मैंने इस साड़ी के बारे में किसी को नहीं बताया था। बताऊँ ही क्यों ? बाद में सुनने को मिला, माया बीच-बीच में घोषदा के घर जाकर मिठाई-पकवान बना देती है। जिन लोगों ने खाया है, उन्हीं से सुनने को मिला है। हैमस्टर्ड की मिसेज चक्रवर्ती में भी घोषदा के प्रति भक्ति-भावना देखने को मिली है। उन्होंने खुद ही मुझसे कहा था, "चाहे जो कहो बहन, इस आदमी के जैसा परोपकारी बंगाली तुम्हें पूरे लन्दन शहर में नहीं मिलेगा।"

हामी चाहे न भरूँ पर मैंने प्रतिवाद भी नहीं किया।

मिसेज चक्रवर्ती ने अपना कथन जारी रखा, "बीच-बीच में जरा बचकना कर बैठते हैं मगर फिर भी गुस्सा नहीं आता है।"

भारत में टेलीविजन चालू हो रहा है। बहुत से लोग इस देश में प्रशिक्षण लेने आ रहे हैं। बी० बी० सी० में एकाध वर्ष काम करने के बाद ये लोग स्वदेश लौट जायेंगे। दो-चार व्यक्तियों से मेरी भी जान-पहचान हुई है। पिछले वर्ष दो प्रोग्राम ऑर्गनाइजर महिलाएँ आयीं। इतने बड़े लन्दन शहर में उन्होंने कैसे घोषदा को खोज लिया, मालूम नहीं। जानती हूँ कि घोषदा उन लोगों के लोकल गार्जन थे। श्रीकान्त बीच-बीच में मजाक के लहजे में पूछता है, अच्छा घोषदा, "इतनी औरतों को आपने किस तरह अपना भक्त बना लिया ?"

रंजन के एक मित्र की बात याद आ गयी। मित्र होने के बावजूद मिस्टर मजुमदार उम्र में रंजन से बहुत बड़े थे। हनसल में हम लोगों के घर के निकट ही रहते थे। दो-चार दिन लगातार मेरे घर पर अड्डा जमाते रहे थे। किसी-किसी सप्ताहान्त में दो बोतल बीयर ले आते थे। रंजन को वे भले ही नाम लेकर पुकारते मगर मुझे भाभी कहते थे और मैं उन्हें मजुमदार दा कहकर संबोधित करती था। एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने पूछा, "मजुमदारदा उम्र तो आपकी काफी हो चुकी है, अब शादी वगैरह कर लीजिये।"

मजुमदार ने हँसते हुए कहा, "शादी !"

"हाँ शादी। अब और कितने दिनों तक अकेले-अकेले जिन्दगी गुजारिएगा ?"

"मगर कोई महिला क्या मिल सकेगी ?"

"क्यों नहीं मिलेगी ?"

मजुमदार ने हँसते हुए मेरी ओर देखा। बोला, "भाभी, बड़ा ही मुश्किल काम है।"

मैंने अचंभे में आकर पूछा, "आपकी शादी के लायक लड़की मिलने में कौन-सी कठिनाई है ?"

वे फिर हँस पड़े, जरा जोर से। "लड़की मिलना मुश्किल नहीं है मगर महिला जुगाड़ करना बड़ा ही डिफिकल्ट है।"

"इसका मतलब ?"

"कॉफी-चाकलेट देकर या सिनेमा थियेटर दिखाकर लड़कियों को फुसलाया जा सकता है मगर महिलाएँ हमारी ही तरह चोट खायी हुई गाहक होती हैं। उन्हें धोखा देना बड़ा ही कठिन काम है।"

मजुमदार की बात सुनकर मैं हँस पड़ी। बाद में घोषदा पर नजर पड़ते ही उसकी बात मुझे याद आ जाती और मैं अवाक् होकर सोचती कि वह किस तरह इतनी महिला भक्तों की जुगाड़ कर लेता है।

उस दिन ब्रिस्टल जाने वाले कोच में घोषदा की बगल में मुझे बैठते देखकर श्रीकान्त ने कहा, "माइ गॉड ! तुम घोषदा की बगल में बैठी हो ?"

मैं खामोश रही !

घोषदा ने कहा, "वह नहीं बैठी है, मैंने बिठाया है।"

श्रीकान्त ने उँगली नचाकर मुझे पुकारते हुए कहा, "गेट अप ! गेट अप ! शनि देवता की बगल में बैठने में तुम्हें डर नहीं लगा ?"

मैं यद्यपि घोषदा की बगल में बैठने को उत्सुक न थी मगर श्रीकान्त की बात सुनकर उठ नहीं पा रही थी। घोषदा ने खुद ही कहा, "वह इतना आग्रहशील है तो फिर आप उसी के पास जाकर बैठें—बट रिमेम्बर माइ रेक्वेस्ट।"

बार्लिंगटन गार्डेन्स की बगल से मैं और श्रीकान्त चहल-कदमी करते हुए जा रहे थे।

कुछ देर तक हम में से कोई एक भी शब्द न बोला। इतने लोगों

की भीड़ थी कि हम अगल-बगल रहकर चहल-कदमी कर नहीं पा रहे थे। बार्लिंगटन गार्डेन्स पार करने के बाद भीड़ थोड़ी पतली हुई। श्रीकान्त ने मेरे पास आकर पूछा, "पिकाडिली सर्कस में तुम क्या किसी का इन्तजार कर रही थीं ?"

"नहीं; किसका इन्तजार करूँगी ?"

"फिर इतनी देर तक खड़ी क्यों थीं ?"

"उतनी देर तक तो खड़ी नहीं थी।"

श्रीकान्त हँस दिया। "जानती हो, मैं कितनी देर से तुम्हारी ओर ताक रहा था ?"

"कितनी देर से ?"

"लगभग आध घण्टा।"

"सच ?"

"तुम्हारी सौगंध खाकर कहूँ ?"

मैंने कोई जवाब न दिया। उसकी ओर देखकर सिर्फ हँस दी।

श्रीकान्त ने अपना कथन जारी रखा, "मजे की बात यह है कि पिकाडिली सर्कस में ही तुमसे बार-बार मुलाकात हो जाती है।"

"ठीक ही कह रहे हो।"

"सरस्वती पूजा में तुमसे जान-पहचान होने के बाद पिकाडिली सर्कस के मोड़ पर ही···"

"मुझे याद है।"

सचमुच मुझे याद है, अच्छी तरह याद है। सहसा एक सूनेपन की पीड़ा से अन्दर ही अन्दर लहक रही थी। बाहर से देखने पर किसी की समझ में नहीं आ रहा था। शायद समझने की कोशिश भी नहीं कर रहा था कोई। लोगों को जरूरत ही क्या थी ? उनके पास वक्त ही कहाँ था ? मैं सब कुछ नियम से कर रही थी। नौकरी-चाकरी, घर-गृहस्थी सब कुछ। लेकिन जब-जब मुझे जिम्मेदारियों से छुटकारा मिला है, जब-जब अपने बारे में सोचने का अवकाश मिला है, तब-तक पिका-डिली सर्कस के चारों तरफ की परिक्रमा करती रही हूँ। सड़क के एक किनारे खड़ी रही हूँ। जानती हूँ, पिकाडिली सर्कस के इर्द-गिर्द मेरी जैसी किसी औरत का खड़ी रहना शोभनीय नहीं है। मगर करूँ क्या ?

लाखों आदमी को देखकर और बीते दिनों की बातें याद कर कुछ समय के लिए सूनेपन की पीड़ा भूल जाती थी।

"अरे आप!" मुझ पर आँखें जाते ही श्रीकान्त बेहद खुश हो उठा।

"हाँ।"

"मुझे पहचाना ? मैं श्रीकान्त हूँ।"

"उसी दिन तो जान-पहचान हुई है, इसी बीच भूल जाऊँगी ?"

श्रीकान्त ने हँसते हुए कहा, "मुझे तो उम्मीद है कि किसी दिन आप नहीं भूलिएगा।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस पड़ी। शायद बहुत दिनों के बाद मैं हँस पड़ी। कहा, मैंने तो यह नहीं कहा था कि आपको भूल जाऊँगी।"

"फिर चलिये। अब यहाँ खड़ी नहीं रहिये।"

बिना कुछ बोले हम दोनों ने चलना शुरू कर दिया।

इस देश में मर्द-औरत मिलने-जुलने में किसी तरह के संकोच का अनुभव नहीं करते। कुछ दिनो तक इस देश में रहने पर भारतीय युवक-युवती भी सहज हो जाते हैं। बहुत से आदमी बहुतों का नाम लेकर उन्हें संबोधित करते हैं। कोई भी अन्यथा न लेता है। मगर श्रीकान्त सिर्फ सहजता से मिला-जुला ही नहीं, इस कदर स्वाभाविक रूप में आन्तरिकता के साथ आगे बढ़ आया कि मैं समझ नहीं सकी कि उसने कब मुझे तुम कहकर संबोधित करना शुरू कर दिया। उसी दिन पहले-पहल मुझे एकाकीपन से छुटकारा मिला था। संख्याहीन लोगों के बीच एकमात्र वही अपना जैसा लगा था।

आज इतने दिनों के बाद लन्दन छोड़कर स्वदेश लौट रही हूँ। तीन ही महीने के लिए जा रही हूँ मगर लौटकर न आऊँ तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कलकत्ता में पैदा हुई हूँ, वहीं के स्कूल-कॉलिज में शिक्षा-दीक्षा हुई है। सगे-सम्बन्धी; दोस्त-मित्र वगैरह से मिली-जुली हूँ। मिलना-जुलना पड़ा है। मगर ठीक यहाँ की तरह किसी से घनिष्ठता नहीं हुई है। होने की जरूरत नहीं पड़ी है। यहाँ अपनी मर्जी से लोगों से मिली-जुली हूँ। जो अच्छे नहीं लगते या लगे हैं, उनसे मिलना-जुलना नहीं पड़ा है। यही वजह है कि आज इस हिथरो एयरपोर्ट पर अकेले खामोश बैठे रहने पर इन कई बरसों की स्मृति, बहुत सारे लोगों की याद आ रही है। अच्छा नहीं लग रहा है। मन के अन्दर एक तरह

की तकलीफ का अहसास हो रहा है। लन्दन छोड़कर जाने में पीड़ा का अनुभव हो रहा है। या फिर कोई दूसरा ही कारण है?

"माइ गॉड ! तुम यहाँ बैठी हो?"

एकाएक श्रीकान्त की आवाज सुनकर चिहुँक उठी। "तुम हवाई अड्डे पर क्यों आये?"

वही हँसी, वैसी ही सहज-सरल बात! "तुम जा रही हो और मैं न आऊँ यह कहीं हो सकता है?"

"ऐसा होने पर भी कोई हिथरो हवाई अड्डे तक भागा-भागा आ सकता है?"

"श्रीकान्त आता है।"

मैं हँसे बगैर रह न सकी। "सो तो देख ही रही हूँ।"

वह मेरी बगल में बैठता हुआ बोला, "इतने पहले कोई हवाई अड्डे पर आता है?"

"मैं आती हूँ।"

"सो तो देख ही रहा हूँ।"

हम दोनों एक साथ हँस पड़े।

हँसी थमने पर श्रीकान्त ने कहा, "कुछ खाओगी?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"भूख नहीं है।"

"चलो-चलो, चलकर कुछ खा लें।"

"तुम्हें भूख लगी है?"

"भूख नहीं लगी है मगर..."

"फिर रहने दो। बेवजह पैसा बर्बाद मत करो।"

"बहुत दिनों से पैसा बर्बाद करने का मौका नहीं मिला है।"

"यह तो खुशी की बात है।"

हम दोनों बातें कर रहे हैं पर ऐसा लग रहा है जैसे श्रीकान्त कुछ कहने के लिए दौड़ा-दौड़ा आया है। लेकिन कह नहीं रहा है। शायद कह नहीं पा रहा है। या फिर मैं ही कुछ सुनना चाहती हूँ? कुछ नयी बात, मन की बात, सुनने की इच्छा रहने पर भी सुन नहीं पा रही हूँ और इसीलिए बेचैनी का अहसास हो रहा है। पीड़ा का अनुभव हो रहा है। मन ही मन जैसे एक अधूरेपन का स्वाद महसूस कर रही हूँ।

मैं आज स्वदेश जा रही हूँ, यह बात बहुतों को मालूम है। किन्तु कोई मुझे विदा करने या शुभ-यात्रा की कामना करने को नहीं आया। एकमात्र श्रीकान्त क्यों आया ? क्यों वह इतनी तकलीफ उठाकर आया है ? मैं स्वदेश जा रही हूँ इस वजह से वह दफ्तर नागा कर क्यों आया ?

मन के भीतर और भी अनेक प्रश्न जग रहे हैं मगर एक का भी उत्तर मिल नहीं रहा है। मिलेगा कैसे ? मैंने क्या सवाल किया है जो जवाब मिलेगा ?

अच्छा, उसके मन में क्या कोई सवाल पैदा नहीं हो रहा ? वह क्या कुछ जनाना नहीं चाहता ? जानना भी नहीं चाहता ? वह क्या सिर्फ विदा करने ही आया है ?

सामने के टेलीविजन के परदे पर मेरे फ्लाइट का एनाउन्समेन्ट तिरकर आते ही समझ गयी, अब अवधि संक्षिप्त है। अब समय नहीं है। कई मिनटों के दरमियान ही मुझे इमिग्रेशन सिक्यूरिटी की जाँच के लिए भीतर प्रवेश करना होगा। उसके बाद ही डिपार्चर लाउंज पर जाना होगा। ड्यूटी फ्री शॉप। बार। ड्यूटी फी शॉप से मैं सस्ते दाम में घड़ी, कैमरा, फाउन्टेनपेन, परफ्यूम या स्कॉच ह्विस्की नहीं खरीदूँगी। बार में बैठकर एक जग बीयर या जिन एण्ड टॉनिक भी नहीं पिऊँगी। सीधे एयर जेटी की ओर चली जाऊँगी। उसके बाद एयरक्राफ्ट पर सवार हूँगी।

"रुणु, अपना फ्लाइट एनाउन्समेन्ट देख रही हो ?"

"देख रही हूँ।"

"फिर तुम सचमुच ही जा रही हो ?"

मैंने सिर्फ माथा हिलाया।

श्रीकान्त ने होले से मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में थाम लिये और पूछा, "क्यों जा रही हो ? स्वदेश जाने की अभी कोई जरूरत है ?"

"जरूरत कुछ भी नहीं है।" मैंने सिर झुकाकर कहा।

"फिर जा क्यों रही हो ?"

"तुमने पहले मना तो नहीं किया था।"

"मैं तुम्हें मना क्यों करता ?"

"तुम श्रीकान्त हो, इसीलिए।"

श्रीकान्त ने तत्क्षण अपने हाथ बढ़ाकर मुझे छाती से चिपका लिया

और मेरे सिर पर अपना चेहरा रखकर कहा, "ऑल द वेस्ट ! वन वॉयेज !"

अपने हाथों का बन्धन ढीलाकर श्रीकान्त ने मुझे छोड़ दिया और हँसते हुए बोला, "जाओ। अब देर मत करो।"

एक बार उसकी ओर दृष्टि डालकर मैं तेज कदमों से इमिग्रेशन काउन्टर के बीच घुस गयी। तीव्र इच्छा रहने के बावजूद उसकी ओर देख नहीं सकी।

एयर होस्टेस ने चेहरे पर हँसी ले स्वागत किया। दूसरी एयर होस्टेस ने मेरी सीट तक मुझे पहुँचा दिया। मैंने उसे धन्यवाद दिया। हैण्ड बेग सीट के नीचे रखकर जैसे ही मैंने कोट का बटन खोलना चाहा कि बगल की सीट के अंग्रेज सज्जन ने खड़े होकर मेरा कोट खोल दिया। मैंने आभार स्वीकार करते हुए उन्हें धन्यवाद दिया।

उन्होंने हँसते हुए कहा, "ह्वाइ थैंक मी इन सो मेनी वॉर्ड्स ? यह मर्दों का कर्त्तव्य और सौभाग्य है।"

मैं हँसती हूँ। दुबारा उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

"मुझे आपने धन्यवाद दिया, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद दे सकता हूँ ?"

मैंने हँसते हुए सिर हिलाकर उनका धन्यवाद स्वीकारा।

एक अपरिचित विदेशी सज्जन ने कोट खोलने में मेरी सहायता की और मैंने उसे मुसकराते हुए धन्यवाद दिया। लेकिन कुछ वर्ष पहले ? जब मैं पहले-पहल इस देश में आयी थी तब ? मैं कभी देहात में नहीं रही हूँ। हमेशा कलकत्ते में ही रही हूँ। वहीं स्कूल और कॉलेज में पढ़ा है। एम० ए० की पढ़ाई न करने के बावजूद बीच-बीच में प्याली की वजह से युनिवर्सिटी आयी गयी हूँ। कॉफी हाउस में बहुत सारे युवकों और युवतियों के साथ गपशप और अड्डेबाजी की है। कभी-कभी मैं, प्याली और उदयन पैदल चलकर हँसते हुए चौरंगी तक जा चुके हैं और एकाएक फिर सिनेमा देखने जा चुके हैं। सिनेमा जाने पर उदयन हमेशा मेरे और प्याली के बीच बैठता था। कभी हत्थे पर हाथ रखने के दौरान मेरे हाथ से उसका हाथ छू जाता तो उदयन कहता, "सॉरी।"

सिनेमा के परदे से अपनी दृष्टि खींचकर उदयन पर डालते हुए मैं कहती, "थैंक्स फॉर योर लॉयलटी टु प्याली।"

याद है, एक बार नये वर्ष के दिन हम तीनों स्टीमर से गंगा पार का बॉटो निकल गार्डेन्स गये थे। तीसरे पहर गंगा के किनारे बैठकर हम तीनों गपशप कर रहे थे। मेरी और प्याली की शाल हवा में उड़ रही थी। उदयन ने बीच-बीच में प्याली की शाल उसके बदन पर ओढ़ाते हुए मुझसे कहा था, "इस तरह तुम्हारी मदद करने का मुझे अधिकार नहीं है, इसीलिए..."

प्याली एक बार मेरी ओर निगाह दौड़ाती और उसके बाद उदयन की ओर निगाह डालती हुई कहती, "तुम्हारा मन चाह रहा है तो मदद करो मैं नाराज नहीं होऊँगी।"

मैंने तत्काल कहा, "तू नाराज न होगी तो मैं भी नाराज न होऊँ, यह तूने कैसे जाना?"

उदयन ने कहा, "प्रिया प्याली सामने है तो गुस्सा करने के बावजूद मन ही मन खुश होगी।"

मैं हँस देती हूँ। कहती हूँ, "एक बार प्याली की आड़ में कोशिश करके देख लो!"

आज उस दिन की बात याद करने पर हँसने का मन करता है। उदयन के छूने से मेरा कुँवारापन और विशुद्धता नष्ट हो जाती, किसी की भी नहीं होती है। लेकिन फिर भी हम बंगाली लड़कियाँ—भारतीय लड़कियाँ मरदों के सान्निध्य से अपने को दूर रखती हे या रखना पड़ता है। खुले आम उदयन तो एक बार मुझसे पूछ ही बैठा था : अच्छा रुणु, मैं और प्रिया प्याली क्या कभी समाज के आमने-सामने खड़े नहीं हो सकेंगे?"

मैं उसकी बात का उत्तर नहीं दे सकी थी। खामोश रह गयी थी।

"पहले प्रिया-प्याली को जरा निकट पाते ही मन परिपूर्ण हो जाता था। लेकिन अब लगता है कि जिस प्रेम को स्वीकृति नहीं मिलती उस प्रेम से मन को तृप्ति भी नहीं मिलती है।"

यही बात कुछ दिन पहले प्याली से भी सुनने को मिली थी।

"यकीन मानो रुणु, इस तरह छिप-छिपकर प्यार करने में सुख के बजाय दुख ही ज्यादा मिलता है।"

प्याली के उदास करुण चेहरे की ओर देखकर मैंने चुप्पी ओढ़ ली।

"उसे इच्छानुसार निकट पाना तो दूर की बात, उसका एक फोटो तक सामने नहीं रख पाती हूँ।" प्याली ने एक लंबी उसाँस लेकर कहा, "यह कैसा दुख है, तुझे समझा नहीं पाऊँगी रुणु।"

हमारे देश में प्रेम करने पर भी निकट नहीं आया जा सकता है और इस देश में निकट आने के लिए प्रेम की आवश्यकता नहीं होती। यह जो अभी मेरी बगल की सीट के अपरिचित सज्जन ने मेरा कोट खोल-कर सिर के हैट को रैक पर रख दिया और मैंने उसे धन्यवाद दिया—इस तरह की मामूली घटना अगर हमारे देश में घटित हुई होती तो आसपास के लोगों के चेहरे पर जिज्ञासा के कितने ही सवाल उभरकर आ गये होते। मैं जब इस देश में नयी-नयी आयी थी, जब इस देश के बहुत सारे रीति-रिवाजों से अपरिचित थी, तो मैं स्वयं भी चौंक उठी थी। आज हँस रही हूँ पर उस दिन सचमुच ही चौंक उठी थी। सूने घर में शुभेन्दु ने मेरा कोट उतारना चाहा तो मैं चौंक कर पीछे हट गयी थी। विरक्ति के साथ कहा था, "क्या कर रहे हैं?"

शुभेन्दु ने कहा, "कोट नहीं उतारियेगा?"

"उतारूँगी।"

"फिर?"

"आपको नहीं उतारना है।"

शुभेन्दु मुझे धन्यवाद देकर मुसकराते हुए कमरे के बाहर चला गया था।

उस रात डॉक्टर सेन के घर से वापस आते ही हम लेट गये। मगर शुभेन्दु की बातें यादकर मुझे नींद नहीं आ रही थी। रंजन को हालाँकि नींद आ रही थी मगर मुझे जगी हुई पाकर उसने पूछा, "क्या हुआ? नींद नहीं आ रही?"

मैंने उसकी बात का जवाब न देकर कहा, "जानते हो, शुभेन्दु अच्छा आदमी नहीं है।"

रंजन चौंक उठा, "इसका मतलब?"

"आज डॉक्टर सेन के छोटे कमरे में कोट उतारने गयी तो वहाँ शुभेन्दु दिखाई पड़ा...।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद वह एकाएक मेरा कोट उतारने..."

इसके बाद कहने की जरूरत नहीं पड़ी। रंजन ने पागल की तरह ठहाका लगाते हुए मुझे अपनी बाँहों में भर लिया।

मैंने पूछा, "क्या हुआ ? हँस क्यों रहे हो ?"

बहुत देर के बाद हँसी थमी और उसने कहा, "औरतों के द्वारा कोट पहनने और उतारने में सहायता करना मरदों का कर्त्तव्य है। यह औरतों के प्रति मरदों के सौजन्य-बोध का सूचक है।

"सचमुच ?"

"मैं भी कितनी ही औरतों के…"

उसे वाक्य पूरा करने देने के पहले ही मैंने नया सवाल किया, "कोई अन्यथा नहीं लेती है ?"

"अन्यथा क्यों लेगी ? इस देश का यही रिवाज है।"

"भारतीय महिलायें भी अन्यथा नहीं लेती हैं ?"

"पहले-पहल बेचैनी जैसी अवश्य लगती है मगर बाद में सब ठीक हो जाता है।"

सचमुच बाद में सब ठीक हो जाता है। कुछ दिनों तक रहने के बाद सब कुछ बरदाश्त हो जाता है, सहज हो जाता है। बाद में किसी दावत में जाने पर मैं शुभेन्दु को तलाश करती थी। आसपास न होता था तो भीड़ के बीच से उसे खींचकर ले आती और कहती, "कोट उतार दो।"

कभी-कभी शुभेन्दु मेरे कान के पास अपना मुँह ले जाकर फुस-फुसाते हुए कहता, "अगर शरारत कर बैठूं ?"

"एक तमाचा जड़ दूँगी।"

"उसके बाद भी अगर करूँ ?"

"कान ऐंठ दूँगी।"

"उस पर अगर न मानूँ ?"

मैं हँसती हुई कहती हूँ, शरारत करना सिर्फ तुम ही जानते हो ? मैं नहीं जानती ?"

शुभेन्दु से खूब घनिष्ठता न रहने के बावजूद उसके प्रति हार्दिक स्नेह है। लगता नहीं कि वह बहुत पढ़ा-लिखा व्यक्ति है। शायद ग्रेजुएट भी नहीं है। सो रहे। लेकिन वह भला, सभ्य और रुचि-संपन्न है। रंजन ने ही किसी काम से मुझे एक बार उसके घर भेजा था। वह शयन-कक्ष की बगल वाली छोटी कोठरी में कुछ पका रहा था और मैं उसके कमरे में बैठी थी। चारों तरफ नजर दौड़ने के दौरान मेज पर ढेर सारी

बंगला कविता की पुस्तकें देखकर मैं चौंक पड़ी। चौकूँगी क्यों नहीं? लन्दन में बंगाली कुंवारे युवक के घर में तरह-तरह की देखने लायक वस्तुयें हो सकती हैं लेकिन बँगला कविता की पुस्तक भी हो सकती है? यह असंभव ही नहीं, अस्वाभाविक भी है। उठ कर गयी और देखा, सुभाष मुखर्जी की 'पदातिक' पढ़ते-पढ़ते उलटकर रख दिया है। हाथ में उठाकर देखा, 'पलातक' की अन्तिम कुछ पंक्तियों के नीचे स्याही की लकीर खिंची हुई है। आरम्भ से न पढ़कर उन अन्तिम पंक्तियों को ही पहले पढ़ा। एक बार नहीं, अनेक बार। पढ़ते-पढ़ते जबानी याद हो गयी। थोड़ी देर बाद जब शुभेन्दु ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया तो मैं बेरोक-टोक उन पंक्तियों को बोल गयी—

> प्रणय की कहानी को प्रवृत्ति के हाथ में बाँध क्षण के ज्वर में
> महान आच्छादन देना; उसके बाद पीठ कर सम्मुख जीवन की ओर
> विश्वस्त हृदय खोजना—समस्त शून्यता जिसमें से होकर प्रेम झर
> जाता है;
> पश्चिम का लाल मेघ अंधा हो जाता है धरती के खलिहान में
> पीली घास की शेष सीमा में ट्राम का निष्फल स्वर लंबे तार में।

शुभेन्दु ने मुग्ध दृष्टि से मेरी ओर ताकते हुए पूछा, "तुम्हें क्या कविता से प्रेम है?"

"अच्छी चीज़ किसे अच्छी नहीं लगती?"

"नहीं-नहीं, सबको कविता से प्रेम नहीं होता है।"

"सबकी बात छोड़ो, तुम्हें तो अच्छी लगती है न।"

शुभेन्दु के चेहरे पर तृप्ति की मुसकराहट तिर आयी। "हाँ, अच्छी लगती है।"

कलकत्ते की परिभाषा के अनुसार शुभेन्दु लन्दन ट्रांसपोर्ट का किरानी कहा जायेगा। कलकत्ते में भाग्य में उलट-फेर होने के बाद विलायत आने पर भी वह सौभाग्य के महाकाश में नाम-गोत्रहीन एक साधारण नक्षत्र बन कर ही रह गया है। हमारे देश या पाकिस्तान या वेस्टइंडीज के साधारण युवक इस देश में आने पर शुरू में लन्दन ट्रांस-पोर्ट या पोस्ट ऑफिस में अत्यन्त साधारण नौकरी में भर्ती होकर नये जीवन की शुरुआत करते हैं। बाद में एक-दो पौंड ज्यादा वेतन पाने के लोभ में इस नौकरी को छोड़कर नयी नौकरी स्वीकार कर लेते हैं।

उसके बाद फिर एक-दो पौंड का लोभ सँभाल न सकने के कारण उस नौकरी को भी छोड़ देते हैं। ज़िंदगी भर उन्हें एक-दो पौंड की मरीचिका अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। शुभेन्दु इस मरीचिका के पीछे दौड़ न लगाकर लन्दन ट्रांसपोर्ट में ही पड़ा हुआ है।

शुभेन्दु जरा अनमने जैसा होकर चुपचाप खड़ा रहा। मैंने कहा, "अच्छा शुभेन्दु, एक बात पूछूं ?"

"एक क्या, हजार बात पूछ सकती हो।"

"कविता से इतना प्रेम है तो फिर इस देश में आये ही क्यों ?"

शुभेन्दु हँस दिया। मानिक बंद्योपाध्याय की 'दिवारात्रि का काव्य' नामक एक कविता है। तुमने पढ़ी है ?"

"शायद नहीं।"

शुभेन्दु दुबारा हँस पड़ा। बगैर किसी भूमिका के उसने कविता-पाठ शुरू कर दिया—

> अँधेरे में रो रही है उर्वशी
> ध्यान से सुनो बंधु श्मशान विहारिणी
> मृत्यु अभिसारिका का गीत;
> सव्यसाची ! मैं हूँ निराहार।

उसने जोर से एक लंबी साँस ली और कहा, "निराहार रहते-रहते पागल जैसा हो गया था और इसीलिए चला आया।

उस दिन अधिक बातें न कर काम की बात बताकर चली आयी थी, मगर कुछ दिनों के बाद दुबारा बिना गये नहीं रह सकी। हम क्योंकि समतल भूमि में वास करते हैं इसीलिए पहाड़-पर्वत हमें प्रिय हैं, समुद्र हमें चुंबक की तरह अपनी ओर आकर्षित करता है। बात भी स्वाभाविक है। जो वस्तु हमें हाथ के समीप नहीं मिलती, जिसे हम पा नहीं सकते, हम उसी को चाहते हैं। शायद इसी वजह से अपनी सुन्दर पत्नी की अवहेलना कर कवियों और साहित्यकारों ने परायी स्त्री को अपना केन्द्र बनाकर इतनी कवितायें और साहित्यिक रचनाएँ की हैं और आज भी कर रहे हैं। जिन्दगी भर 'आओ चन्दा मामा, आओ चन्दा मामा' चिल्लाते हुए हम सुख के दिनों में भी दुःख का अनुभव करते हैं।

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है ?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों ?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी ?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी ?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी ?"

"बुड़बुड़ाऊँगी क्यों ? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं?"

"नही।"

"सच कह रही हो?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नही कहा है रुणु! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिम।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नही हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था…। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या की तुझे याद है न? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं…।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है ?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों ?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी ?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी ?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी ?"

"बुड़बुड़ाऊँगी क्यों ? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नहीं।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नहीं कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिम।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहां के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था…। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या को तुझे याद है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं…।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पह-चान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धार-णाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी?"

"बुड़बुड़ाऊँगी क्यों? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नहीं।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नहीं कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिम।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था···। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या को तुझे याद है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं··· ।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है ?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों ?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी ?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी ?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी ?"

"बुड़बुड़ाऊंगी क्यों ? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नहीं ।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नही कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिम।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नही हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था···। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या को तुझे याद है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं··· ।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी?"

"बुड़बुड़ाऊँगी क्यों? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नहीं।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नहीं कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिम।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था···। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या की तुझे याद है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थी···।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है ?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों ?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी ?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी ?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी ?"

"बुड़बुड़ाऊँगी क्यों ? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नहीं।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिंढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नहीं कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिन।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था···। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर सवार हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या को तुझे याद है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। शायद दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार इन्दिरा में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से भीगती हुई उसके हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं··· ।"

पहले-पहल जब मैं इस देश में आयी तो नये आदमी से जान-पहचान करने में चाहे भय का अनुभव न भी हुआ हो परन्तु मन ही मन संशय और दुविधा का अनुभव अवश्य ही करती थी। कलकत्ते में वास करने के दौरान विलायत के बारे में बहुत अधिक नहीं जानती थी और यहाँ के औरतों और मरदों की छवि मेरे मानस में अत्यन्त उज्ज्वल थी। कितनी ही सच्ची-झूठी, वास्तव-अवास्तव से मिली-जुली धारणाएँ मन में भीड़ लगा कर खड़ी थीं। यही वजह है कि शुरू-शुरू में मरदों के निकट जाने, उनसे घनिष्ठता बढ़ाने में उत्साह का अनुभव नहीं करती थी। स्वयं को सहेज-सँवार कर रखती थी। कोट उतारने पर भी कार्डिगन के बटनों को बन्द रखकर साड़ी की कोर को गले से लपेटकर रखती थी। रफ्ता-रफ्ता वह भय, असमंजस और संशय दूर होते गये। दूर न हो तो यहाँ जिन्दा रहना मुश्किल है। कलकत्ता या हमारे देश में पति सिर्फ पति ही नहीं होते बल्कि घर के नायब, गुमश्ता और बाजार में खरीद फरोख्त करने वाले किरानी भी होते हैं। यहाँ शादी-शुदा औरतें सचमुच ही 'बेटरहाफ' होती हैं।

मुझ पर निगाह जाते ही शुभेन्दु हँसते हुए आगे बढ़ आया और मेरा स्वागत किया, "आओ-आओ।"

मैं उसके घर के भीतर गयी। उसने मेरा कोट उतारते हुए पूछा, "रंजन दा कहाँ है?"

"वह नहीं आया है।"

"क्यों?"

"कलकत्ते से उसके मित्र के बड़े भाई आये हैं। कई दिनों से वे टेलीफोन कर रहे थे। इसलिए आज उनसे मिलने गया है।"

मेरा कोट उतारकर शुभेन्द्र ने कहा, "बैठो। बताओ क्या खाओगी?"

"कुछ भी नहीं। नॉट इवन ए कप ऑफ टी।'

"इस मुल्क में कोई व्यक्ति अनशन या हड़ताल नहीं करता है।"

उसकी बात सुनकर मैं हँस देती हूँ।

वह दुबारा जानना चाहता है, "सचमुच कुछ भी नहीं खाओगी?"

"नहीं।"

"सिर्फ बुड़बुड़ाती रहोगी?"

"बुड़बुड़ाऊंगी क्यों? तुम्हारा कविता-संकलन भी तो देखना है।"

शुभेन्दु जरा जोर से हँस देता है। "माइ गॉड ! तुम बंगला कविता की पुस्तकें देखने आयी हो ?"

"इसमें हैरानी की कौन-सी बात है ?"

उसने जरा आश्चर्य में आकर पूछा, "तुम कभी कविता लिखा करती थीं ?"

"नही।"

"सच कह रही हो ?"

"झूठ बोलने की कोई वजह है ?"

"औरतें अपनी खूबसूरती का ढिढोरा पीटती हैं और गुणों को छिपा कर रखती है।"

यह बात सुनने में अच्छी लगी। मैं हँस दी।

"मैंने झूठ नही कहा है रुणु ! औरतें रूप के मोह में बाकी तमाम चीजों को मलिन बना देती हैं। शेली के शब्दों में—हर ब्यूटी मेड द ब्राइट वर्ल्ड डिन।"

वेस्ट इंडीज के लोगों की बात अलग है। उन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी ही है। ब्रिटिश गायना के कितने ही लोग उर्दू और तमिल बोल लेते हैं मगर वे अंग्रेजी छोड़कर एक मिनट भी जिन्दा नही रह सकते। पढ़े-लिखे भारतीय और पाकिस्तानी अंग्रेजी जानते हैं। अनपढ़ों का दल इस देश में आकर अंग्रेजी सीखता है। मुझसे जितने लोग परिचित हैं वे भले और शिक्षित रूप में ही जाने जाते हैं। मगर बातचीत के दौरान शेली का उद्धरण देने वाले किसी व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। उस तरह के किसी आदमी को पहचानती भी नहीं हूँ। हमारे देश से बहुत सारे विद्वान भी इस देश में आते हैं मगर उनसे यहाँ के भारतीय समाज का संपर्क स्थापित नही हो पाता है।

तकरीबन छह महीने पहले कलकत्ते से प्याली का एक खत आया था…। "कुछ दिन पहले मैं गड़ियाहाट मार्केट के मोड़ पर ट्राम की उम्मीद में खड़ी थी। थोड़ी देर बाद ही ट्राम आयी। मैं उस पर [illegible] हुई। अन्दर जाते ही देखा, संध्या सरकार बैठी है। संध्या को तुझे [illegible] है न ? स्कॉटिश से पास कर मेरे साथ युनिवर्सिटी में पढ़ती थी। [illegible] दो-चार बार मैं उसे तेरे घर पर भी ले जा चुकी हूँ। एक बार [illegible] में सिनेमा देखकर बाहर निकलते ही हम बारिश से [illegible] हुई [illegible] हाजरा रोड वाले मकान में गयी थीं…।"

इतनी तफसील से लिखने की जरूरत न थी। संध्या मुझे अच्छी तरह याद है। प्याली की शादी के बाद भी मुझसे उसकी अनेक बार मुलाकात हो चुकी है। संध्या को जब कैलकाटा गर्ल्स कॉलेज में लेक्चरर की नौकरी मिली तो उस समय वह मुझे सिनेमा दिखाने लाइट हाउस ले गयी थी। यह सब बात प्याली नहीं जानती है या जानने के बावजूद उसकी स्मृति से उतर चुकी है।

"…मुझे ट्राम पर सवार होते देखकर संध्या खुशी से झूम उठी। बगल में बिठाकर पूछा, "तू षष्ठीव्रत को पहचानती है?"

"षष्ठीव्रत कौन?" प्याली ने जानना चाहा।

"षष्ठीव्रत चक्रवर्ती। कद जरा नाटा रहने के बावजूद देखने में खासा अच्छा खूबसूरत जैसा…"

"तुम लोगों के साथ स्कॉटिश में पढ़ता था?"

"अरे नहीं-नहीं। तुम लोगों के प्रेसिडेन्सी में ही पढ़ता था। उदयन से काफी घनिष्ठता थी।"

प्याली ने जरा सोचने के बाद कहा, "मुझे ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा।"

संध्या ने झुंझला कर कहा, "तू कैसी है री? कुछ दिन पति की बगल में सोकर ही सारा कुछ भूल गयी? कितने ही दिन हम एक साथ कॉफी हाउस में अड्डेबाजी कर चुके हैं और तुझे बिलकुल याद ही नहीं?"

प्याली ने अत्यन्त सहज होने की कोशिश की, "खैर जो भी हो, कहो।"

"षष्ठी इज ए फेमस राइटर नाउ।"

"सच?"

"इसके अलावा…"

संध्या ने इसके बाद कहना चाहा पर वह चुप हो गयी। प्याली की ओर देखकर मुसकराते हुए पूछा, उसका 'माइ गॉड डाइड यंग' पढ़ा है?"

"नहीं।"

"पढ़ना।" वह फिर चुप हो गयी और मुसकराने लगी। "पढ़कर लगा, तेरे और उदयन के बारे में ही लिखा है। एटलिस्ट बेसिकली यह तुम्हीं लोगों की स्टोरी है।"

खत के आखिर में प्याली ने मुझे लिखा था · पता नहीं, षष्ठीव्रत

"मगर क्या ?"

"शायद मुहल्ले के किसी युवक ने तुम्हारे बारे में कभी कोई कविता लिखी होगी, इसीलिए…"

"आज तक तो किसी ने नहीं लिखी है। तुम लिखोगे क्या ?"

"निःसन्देह तुम्हारे बारे में कविता लिखी जा सकती है, मगर मुझ में वह सामर्थ्य नहीं है।"

मैंने हँसते हुए कहा, "यह बड़ी खुशी की बात है।"

"क्यों ?"

"यहाँ-वहाँ आने-जाने के क्रम में तुम्हारे पास यों ही आ जाती हूँ, इससे हर आदमी खुश नहीं है। इस पर यदि तुम मेरे बारे में कविता लिखो और इस बात की जानकारी हो जाये तो तुम्हारे रंजनदा जरूर ही मुझे डाइवोर्स कर देंगे।"

शुभेन्दु ने हँसते-हँसते कहा, "मेरे जैसे अविख्यात आदमी के द्वारा गयी कविता से इतना बड़ा काम हो जायेगा ?"

नहीं। लेखक, कवि और साहित्यकारों की जानकारी रखने की व्यग्रता या आवश्यकता यहाँ के प्रवासी भारतीय, बंगाली महसूस नहीं करते। जरूरत ही क्या है? इसमें उनका कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होगा? महाभारत के महापुरुष बिना युद्ध के सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने को राजी नहीं थे। और यहाँ के प्रवासी भारतीय बगैर स्वार्थ और प्रयोजन के कोई काम नहीं करते। करेंगे भी नहीं। मैं जानती हूँ कि इसका भी कारण है, इसके लिए दलील पेश की जा सकती है। सो हो। फिर भी यह निष्ठुर सत्य है कि इंडियन रेस्तराँ के एक अशिक्षित मालिक को एक बड़ी और कीमती मोटरगाड़ी खरीदने से जो ख्याति प्राप्त होती है, वह ख्याति एक नामी कलाकार-साहित्यकार को टेम्स के किनारे के भारतीय समाज से प्राप्त नहीं हो सकती है।

कवि, कलाकार और साहित्यकारों के प्रति शुभेन्दु के हृदय में असीम श्रद्धा देखकर मुझे बड़ा ही अच्छा लगा। मन ही मन मैं बेहद खुश हुई। कविता के प्रति मुझमें रुझान पाकर शुभेन्दु को खुशी हुई। बहुत बार बहुत तरह से उसने मेरी कवि-प्रतिभा का स्वाद पाने की चेष्टा की। मैंने उसे बार-बार समझाया, "यकीन करो, मैंने कभी कविता नहीं लिखी है। तब हाँ, कविता मुझे अच्छी लगती है।"

शुभेन्दु ने पूछा, "सिर्फ रवीन्द्रनाथ की ही कविता?"

"सिर्फ रवीन्द्रनाथ की ही कविता क्यों, रवीन्द्र के बाद के युग के कवियों की रचनाएँ भी मुझे अच्छी लगती हैं।"

"रिअली?"

"तुम्हें झूठ कहने से मुझे कौन-सा फायदा हो रहा है?"

शुभेन्दु को मेरी बात पर अविश्वास नहीं हुआ। उसने जरा सोचा। उसके बाद पूछा, "तुममें आधुनिक कविता के प्रति रुझान कैसे हुआ?"

मैं हँस दी। कहा, "उसका निश्चय ही कोई कारण है।"

उसने तत्क्षण सवाल किया, "किसी कवि की मुहब्बत में खो गयी थीं?"

"कवि की मुहब्बत में डूबे बगैर कविता से क्या प्रेम नहीं किया जा सकता है?"

"नहीं ऐसी बात नहीं है मगर···"

शुभेन्दु ने अपना वाक्य पूरा नहीं किया। अधूरा छोड़कर ही मेरी ओर देखा और हँसने लगा।

"मगर क्या ?"

"शायद मुहल्ले के किसी युवक ने तुम्हारे बारे में कभी कोई कविता लिखी होगी, इसीलिए···"

"आज तक तो किसी ने नहीं लिखी है। तुम लिखोगे क्या ?"

"निःसन्देह तुम्हारे बारे में कविता लिखी जा सकती है, मगर मुझ में वह सामर्थ्य नहीं है।"

मैंने हँसते हुए कहा, "यह बड़ी खुशी की बात है।"

"क्यों ?"

"यहाँ-वहाँ आने-जाने के क्रम में तुम्हारे पास यों ही आ जाती हूँ, इससे हर आदमी खुश नहीं है। इस पर यदि तुम मेरे बारे में कविता लिखो और इस बात की जानकारी हो जाये तो तुम्हारे रंजनदा जरूर ही मुझे डाइवोर्स कर देंगे।"

शुभेन्दु ने हँसते-हँसते कहा, "मेरे जैसे अविख्यात आदमी के द्वारा लिखी गयी कविता से इतना बड़ा काम हो जायेगा ?"

मैं भौंहों पर बल लाकर पूछती हूँ, "इसका मानी ?"

"डर की बात नहीं है। मैं तुम्हारे डाइवोर्स का हेतु नहीं बनूंगा।"

धीरे-धीरे बातचीत के सिलसिले में मैंने उससे कहा, "सीताराम घोष स्ट्रीट में मेरी एक मौसी रहती थी और मौसी के सामने के घर में सन्तोष नामक एक युवक था। पतली-संकरी गली थी। बिलकुल आमने-सामने खिड़की थी।·····"

"उसके बाद ?"

"वह गली इतनी संकरी थी कि रिक्शा तक नहीं आ पाता था। इसलिए उसके घर में जो कुछ बातचीत चलती थी, मौसी के घर में बैठे-बैठे सुन लेती थी।·····"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद—उसके बाद मत कहो वरना कुछ भी नहीं बताऊंगी।"

"ठीक है।"

"सन्तोषदास कविता लिखता था और जब उसके दोस्त-मित्र आते तो उन्हें सुनाता था। "मौसी के घर जाने पर मैं भी उसकी कविता सुना करती थी। अब भी उसकी दो-चार कविताएँ मुझे याद हैं।"

"मसलन ?"

जरा सोचने के बाद मैंने उसकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उसे सुनायीं—

"पृथ्वी के पथ पर घूमने पर
निर्जनता, तुम ही मिलीं।
घास के हरे होठों पर
ओस की बूँदों के समान
तुम्हारा ही है नाम—
करुणा की तरह लिखा हुआ।
अचानक पथ के मोड़ पर
निर्जनता, हम-तुम
आमने-सामने मिल गये।"

मैं चुप हो गयी।

शुभेन्दु बोला, "वाह बहुत ही सुन्दर!"

"सचमुच वे अच्छी कविता लिखते थे। उसकी एक कविता सुनकर मैंने अपनी मौसेरी बहन से कहा, "तेरे बारे में ही लिखा है। और वह कहा करती थी....."

"तुम्हारे बारे में ही यह कविता लिखी है, यही न।"

मैं हँस देती हूँ। कहती हूँ, "हाँ।"

"उस कविता को पढ़ो तो।"

"पूरी कविता याद नहीं है।"

"जितनी याद है, उतनी ही सुनाओ।"

मैं सुनाती हूँ—

जब वह चहल-कदमी करती निकल गयी
दरवाजे की बगल से घास को रौंदती हुई
आँखों की अपनी नीलिमा थोड़ी-सी
रख गयी वह सुदूर आकाश में
अपने गालों का थोड़ा-सा अबीर—
मेरी खिड़की तक आकर फैल गयी है
सलीबी पुष्प-लता की भीरु भीड़।

शुभेन्दु ने हँसते हुए कहा, "तुम दोनों को लक्ष्य बनाकर लि[illegible] गयी है।"

"तुम्हारे कान में आकर वे कह गये हैं।"

"मेरे कान में कहने की जरूरत नहीं है। खिड़की तक आकर फैल गयी है सलीबी पुष्प-लता की भीरु भीड़ सुनकर ही साफ-साफ समझ गया हूँ।"

"तुम्हे जो मर्जी हो, सोचो।"

"तो फिर इसी तरुण कवि ने तुम्हें कविता पढ़ने की प्रेरणा दी थी?"

"ऐसा कह सकते हो।"

'फैसन योर सीट बेल्ट' और 'नो स्मोकिंग' चिह्न पहले से ही जगमगा रहे थे। हम सीट बेल्ट बाँध चुके थे, अब खोल रहे हैं! बीच में एयर होस्टेस टॉफी से भरा ट्रे सामने रख गयी थी और हमने दो-चार उठा लिये थे। मुँह में भी डाल चुके हैं। अब भी एक अदद टॉफी मेरे हाथ में है। हम महाशून्य के बीच से गुजर रहे हैं। तैरते हुए आगे बढ़ रहे हैं। हवाई जहाज के अन्दर बन्दी मेरा शरीर ही नहीं तैर रहा है, मन भी तैर रहा है। स्मृतियाँ आ रही हैं। एयर होस्टेस से टॉफी लेने के दौरान कुछ क्षणों के लिए मेरा मन इस एयर इंडिया के वायुयान के भीतर लौट आया था। सोच रही थी, हम क्या बच्चे हैं कि हवाई जहाज के अन्दर बैठते ही टॉफी खाना होगा? सोच रही थी, हवाई जहाज के मुसाफिरों को टॉफी देने का तात्पर्य क्या है।

शायद मुसाफिरों को खुश करने का यह सबसे सहज उपाय है। सोचते-सोचते, संभवतः मैं मुसकरा रही थी। बगल की सीट के अंग्रेज हम सफर ने कहा, "यू सीम टु बी फिलिंग वेरी हैपी।"

मुड़कर मैंने उनकी ओर देखा और पूछा, "आपने कैसे जाना कि मैं मन ही मन बहुत आनन्दित हूँ?

"आपके चेहरे की ओर निगाह दौड़ाते ही समझ गया।"

"नहीं, वैसी कोई बात नही है। सोच रही थी कि हवाई जहाज पर सवार होते ही वे लोग टॉफी क्यों देती हैं। आर वी ऑल चिल्ड्रेन?"

वह सज्जन हँस दिये। बोले, "आपने ठीक ही कहा है।" हँसते हुए उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा और बोले, "इन एनी केस, आप हँसती हैं तो सचमुच ही शिशु जैसी सुन्दर दीखती हैं।"

उस सज्जन से दो-चार और बातें करने के बाद मैं फिर अपनी भावनाओं में खो गयी थी।

लंदन में मैंने कहाँ अधिक वर्ष गुजारे हैं! लेकिन अभी स्वदेश लौटने

...रान महसूस हो रहा है कि यहाँ एक युग बिता चुकी हूँ। इतनी
याद आ रही हैं कि बीच-बीच में लगता है, पूरी जिन्दगी लन्दन में
...रकर जिन्दगी के आखिरी दौर में स्वदेश लौट रही हूँ। बहुत कुछ
...स्थ जीवन व्यतीत कर वानप्रस्थ में प्रवेश करने जैसी ही स्थिति है।
...किन सच्चाई इससे कोसों दूर है। जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय
...द्यपि समाप्त हो गया है लेकिन अभी लम्बा रास्ता तय करना बाकी
...ही है। इन कई बरसों के दौरान इतना कुछ घटित हो गया है कि सोचने
पर आश्चर्य होता है। ठिठक कर खड़ी हो जाती हूँ। इसके अलावा कोई
दूसरा उपाय नहीं है।

शादी के बाद जब बोइंग मेंवेन-जीरो-सेवेन हवाई जहाज पर चढ़-
कर कलकत्ते से लन्दन आयी थी तब अन्तर्राष्ट्रीय विमान यातायात
के बाजार में बोइंग का मूल्य नये जामाता जैसा था। कितना सम्मान
प्राप्त था उसे! कितना आदर किया जाता था! कलकत्ते से रवाना
होने के पहले बोइंग प्लेन के संबंध में कितने ही लोगों से कितनी ही
तरह की बातें सुनने को मिली थीं! किसी ने कहा था, "बगैर किस्मत
का सिकन्दर हुए कोई बोइंग पर सवार हो सकता है! यह सब कितने
वर्ष पहले की बात है! लेकिन इस बीच सब कुछ बदल गया है। बोइंग
सेवेन-जिरो-सेवेन को अब वह कुलीनता प्राप्त नहीं है। आजकल
हालांकि जम्बो का बाजार है मगर उसे वैसा सम्मान और गौरव प्राप्त
नहीं है। बहुतों की शिकायत है कि तीन सौ साढ़े तीन सौ यात्रियों के
बीच आदमी अपनी पहचान खो देता है। मैं हिथरो हवाई अड्डे पर
काम कर चुकी हूँ, इसलिए मुझे अन्तर्राष्ट्रीय विमान-यात्रियों को कितनी
ही बातें सुनने का मौका मिला है। आज पश्चिमी जगत के तमाम लोग
सुपरसॉनिक की ओर आँख बिछाये बैठे हैं। लन्दन की पत्र-पत्रिकाओं
के पृष्ठों पर कॅनकर्ड की तसवीरें छापी जाती हैं। कॅनकर्ड चालू ह...
जायेगा तो ह्वाइट हॉल के साहबान केनसिंगटन गार्डेन्स के अपने निवास
स्थान में ब्रेकफास्ट करने के बाद, पूरा दिन न्यूयार्क या मन्ट्रिल...
गुजारकर रात में अपनी पत्नी को साथ ले पिकाडिली सर्कस की चह...
कदमी करने को लिए जा सकेंगे। आज मैं बोइंग सेवेन-जिरो-सेवेन...
ही चढ़कर स्वदेश जा रही हूँ मगर यह स्पेशल फ्लाइट है। यानी...
यात्रियों के फ्लाइट में पूरे किराये का लगभग आधा चुकाकर ...
...दिनों के गौरवशाली सेवेन-जिरो-सेवेन में बैठकर यात्रा कर र...

केवल हवाई जहाज का नहीं, सब कुछ का मूल्य जैसे बदल गया है। जीवन-यात्रा ने नया चेहरा पहन लिया है। मेरी, सबकी जीवन-यात्रा ने।

कलकत्ते में रहने के दौरान केवल लड़कियों से मेरी मित्रता थी। कुछेक युवकों से जान-पहचान थी। शायद विवेक से कुछ अधिक घनिष्ठता थी। फिर भी उसे जान-पहचान ही कहा जायेगा। मन के लेन-देन का व्यापार न हो तो उसे क्या मित्रता कहा जा सकता है? इस देश में आने पर, खासकर कई बरसों के दरमियान सिर्फ युवकों से ही मेरी मित्रता और घनिष्ठता हुई है। महिलाओं से सिर्फ जान-पहचान ही है। इच्छा या अनिच्छा का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि युवकों और पुरुषों को अनदेखा करने से यहाँ टिकना मुश्किल है। कलकत्ता या भारत में टिका जा सकता है। रंजन के रहते ही शुभेन्दु से मेरी घनिष्ठता हुई थी। उसने अन्यथा नहीं लिया था। लेगा ही क्यों? इस देश में कोई इसे अन्यथा नहीं लेता है।

शुभेन्दु चूँकि लन्दन ट्रांसपोर्ट में काम करता था इसलिए और-और लोगों की तरह उसे शनिवार-रविवार को छुट्टी नहीं मिलती थी। हर महीने छुट्टी के दिन बदलते थे। रंजन प्रायः बारह घण्टे तक घर से बाहर रहता था। गृहस्थी का काम करने के बाद वक्त मिलने पर शुभेन्दु की छुट्टी के दिन में उसके यहाँ एक-दो घण्टा बिता आती थी। अब भी जाती हूँ। यही तो कुछ दिन पहले उसके यहाँ गयी थी। दफ्तर से लौटने के दौरान दो-तीन स्थानों का चक्कर लगाने पर थक गयी और उसके यहाँ गयी। पुराने कोच में स्वयं को निढाल छोड़कर कहा, "शुभेन्दु, मैं बेहद थक गयी हूँ।"

"तुम्हें देखते ही यह बात समझ में आ रही है।"

"सचमुच इतनी थकी हुई हूँ कि थोड़ी देर आराम किये बगैर घर वापस नहीं जा सकूँगी।"

मुझे थकी-माँदी पाकर उसे अच्छा नहीं लगा। बोला, "इतना चक्कर क्यों काटती हो?"

मैं हँस दी। "जानते हो शुभेन्दु, पहले मैं सोचती थी कि अकेले आदमी के लिए जिन्दा रहना कोई समस्या नहीं है, लेकिन अब देख रही हूँ, जिन्दा रहना वास्तव में सहज नहीं है।"

"यह ठीक है। मगर तुम बेवजह बहुत ज्यादा मेहनत करती हो।"

बेवजह कुछ नहीं करती हूँ।"

"बहस करने से काम नहीं चलेगा, तुम स्वयं को ऊल-जलूल काम उलझाकर परेशानी मोल लेती हो।"

बिना कुछ उत्तर दिये मैं उसकी ओर निगाह दौड़ाकर हँस दी।

शुभेन्दु चुप नहीं रहा। बोला, "हँसने से काम नहीं चलेगा। यही तो उस दिन तुम श्रीकान्त को नये गुड़ की खीर खिलाने के लिए ड्रामंड स्ट्रीट से खजूर का गुड़ खरीद लायीं। इस फालतू परिश्रम का कोई अर्थ है भला ?

मुझे और जोर से हँसने का मन हुआ। "बात क्या है ? तुममें क्या मेरे प्रति प्रेम जग गया है कि श्रीकान्त को खीर खिलाने से तुम ईर्ष्या करने लगे ?"

शुभेन्दु बगैर कुछ उत्तर दिये मेरे लिए चाय बनाने चला गया।

पद्मा नदी के नाविक की तरह मैं लन्दन में एक के बाद दूसरी लहर के बीच पड़कर बहती रही हूँ। सभी को बहना पड़ता है। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। लन्दन की एक ऐसी निजी विशेषता है, वहाँ वैसी गतिशीलता है कि अकेले रहने पर भी निःसंग नहीं रहा जा सकता है।

चाहे जो हो, एक तो लन्दन शहर, उस पर नया पति। इस देश में पहुँचने पर कई दिनों तक मेघिल आकाश की ओर देखने तक की फुर्सत नहीं मिली। नयी जिन्दगी के वे दिन कोहबर की रात्रि से भी अधिक मधुर और मदिर लगे। चाहे जो हो कोहबर की रात संभावना का इंगित मात्र होती है। शादी की पहले लड़कियाँ चाहे जो कह लें लेकिन शादी के बाद नये पति को अपने निकट पाने का आस्वाद कुछ और ही होता है। वर्ष-भर मिठाई न खाने पर भी नये गुड़ का सन्देश या खीर किसे अच्छी नहीं लगती ? बहुत कुछ खोने के बावजूद नये पति से जो कुछ मिलता है वह बेमिसाल है। अतुलनीय और अवर्णनीय। पार पत्थर की तरह पति का प्रत्येक स्पर्श विस्मयकारी होता है। सिह भरा। अनुभूति की नयी तरंग जैसा। रंजन को जब निकट पाती रोमांच का अनुभव होता। जब उसे अपने समीप नहीं पाती, जब हियरो एयरपोर्ट काम करने चला जाता तो उसी की चिन्ता में नि हो जाती। नये आदमी और अनजाने माहौल के बीच जाने की

कभी महसूस नहीं की। सवेरे से तीसरे पहर तक का समय लम्बा होता है फिर भी समय जैसे शर्म से मुझसे साक्षात्कार नहीं करता था। मेघिल आकाश की आड़ में छिपा रहता था। जब ध्यान आता, अचानक कलाई की घड़ी की ओर निगाह दौड़ाती और तभी उसकी पुकार सुनायी पड़ती, "रुणा!"

पीछे की तरफ मुड़कर मैं उस पर आँखें टिका देती और मुसकरा कर कहती, "मैं अभी तुरन्त घड़ी की ओर देखती हुई सोच रही थी""

दरवाजा बन्द कर 'इवनिंग स्टैण्डर्ड' को मेज पर रखने के बाद रंजन मुझे अपने बाहुओं में भर लेता और पूछता, "रीअली?"

मैं उसके वक्ष पर दाहिना हाथ टिका देती और कहती, "तुम्हारी सौगंध।"

कभी-कभी उसके दफ्तर से आने के बाद कमरे में बैठे-बैठे बातचीत करने में हम रात के बारह एक बजा देते थे। उसके बाद खाना खाकर लेट जाते थे। लेटे-लेटे गप करते थे। गप करते-करते सो जाते, सोये-सोये स्वप्न देखते और स्वप्न के दौरान ही अचानक नींद टूट जाती। सप्ताहान्त में दो-चार बार हनसल के कुछ भारतीय पड़ोसियों के यहाँ से भी हो आये थे। पड़ोसी भी हमारे यहाँ आये थे। वक्त मजे में गुजर जाता था। सप्ताहान्त में सब कुछ गड्डमड्ड हो जाता। शनिवार और रविवार को। प्रारम्भ के कुछ सप्ताहान्त में हम दोपहर मे ही सोकर उठते थे। ग्यारह-बारह बजे। दिन के प्रकाश में भी हम दोनों रात का आस्वाद प्राप्त करते थे। फिर भी शर्म महसूस होती थी। मैं पूछती, "उठोगे नहीं?"

"उठूंगा।"

"फिर उठो।"

"इतनी हड़बड़ी क्यों?"

"इतनी देर तक सोने से लोग क्या सोचेंगे?"

रंजन ने सिर हिलाते हुए कहा, "यहाँ सप्ताहान्त में कोई सवेरे सोकर नहीं उठता।"

"ऐसा हो तो भी इतनी देर तक कोई बिस्तर पर पड़ा नहीं रह सकता है।"

उसने सीधे मेरी बात का उत्तर न देकर कहा, "एक तो सप्ता-

हान्त, उस पर हाल में शादी की है। दिन-भर तुम्हें लेकर पड़ा रहूँ तो भी कोई कुछ नहीं सोचेगा।"

रविवार को देर तक न सोने पर भी शनिवार को हम बहुत देर तक सोये रहते थे। उसके बाद थोड़ा-बहुत खा-पीकर सप्ताह भर की खरीदगी के लिए निकल जाते थे। दुकान में खरीद-फरोख्त किये विना काम नहीं चलता था इसलिए जाते थे। जाना पड़ता था। हर रोज दुकान जाने का वक्त यहाँ किसी के पास नहीं है। रविवार को दुकानें बन्द रहती हैं। इसलिए शनिवार को शॉपिंग किये बगैर कोई उपाय नहीं है। यहाँ तक कि नयी शादी करने पर भी जाना पड़ता है। शनिवार भले ही किसी तरह बिताऊँ मगर रविवार को घर में कैद नहीं रहती थी। हम दोनों निकल जाते थे। दूर या आस-पास ही कहीं। हँसते थे, खेलते थे, नाचते थे, खाते थे। थककर हम गहरी रात में लौटते और फिर एक-दूसरे में खोकर सप्ताह भर की रसद मन के अन्दर जमा कर रख लेते थे।

सप्ताहान्त की बात तो दूर, सप्ताह के बाकी पाँच दिन के दौरान मैं एक क्षण के लिए भी सूनापन का अनुभव नहीं करती थी। रंजन सवेरे सात बजकर बीस मिनट पर निकल जाता था। बाहर निकलने के पूर्व दरवाजे के इस किनारे खड़े होकर वह पाँचेक मिनट के लिए मुझे इस तरह अपने निकट खींचकर प्यार करने लगता कि उसके चले जाने के बाद एकाध घण्टे तक मैं उसी आवेश का आस्वाद महसूस करती। उसके बाद जब मैं कमरे के अन्दर अपनी दृष्टि सहेज कर ले आती और चारों तरफ निहारने लगती तो सब कुछ में उसके स्पर्श, गंध और स्मृति का अहसास होता। और वह अहसास मुझे बीते हुए दिन और रात के प्रत्येक क्षण के बीच ले जाता। घर के दरवाजे का ताला अन्दर से बन्द कर मैं फिर बिस्तर पर लेटकर करवट बदलने लगती। किसी-किसी दिन मैं चाय पीने के दौरान उसके स्लिपिंग सूट को खींचकर उसे सूंघने लगती। किसी-किसी दिन मैं अपना रात्रि-परिधान उतारकर उसके स्लिपिंग सूट को पहन लेती और आईने के सामने खड़ी होकर मुसकराने लगती। यह सब किसी बाहरी आदमी को न तो बताया है और न बताऊँगी। बताऊँगी तो सभी हँसेंगे। या फिर मेरे बारे में जो-सो सोचने लगेंगे। बहरहाल कोई कुछ सोचे, मुझे सचमुच ही अच्छा लगता था। ऐसे दिन भी बीते हैं कि मैं दिन भर उसी लिबास

में रही हूँ। सिर्फ आरम्भिक काल में ही नहीं, एक अरसा अरसा गुजरने पर भी मैं इसी तरह का व्यवहार करती रही हूँ। इस दुनिया में आदमी सिर्फ जरूरी काम करके ही आनन्दित नहीं होता। अनावश्यक, अप्रयोजनीय काम करने पर आदमी को अधिक आनन्द मिलता है।

यह सब अब बीते दिनों की बात है। रंजन मेरे जीवन से खो गया है। अब कभी उसे वापस नहीं पा सकूँगी। पाना भी नहीं चाहती। वह यदि वापस आयेगा तो भी मैं नफरत से उसे छू नहीं सकूँगी। उससे बात करने की भी इच्छा पैदा न होगी। लेकिन किसी दिन मैं चाहकर उसे प्यार करती थी। चूँकि उसके पहले किसी को प्यार नहीं किया था इसलिए उसके सामने सब कुछ लुटा देने में दुविधा का अनुभव नहीं हुआ था। बल्कि अच्छा लगा था। रंजन ने ऐसा भयंकर विश्वासघात किया है कि उसके बारे में सोचने से मेरा मन घृणा से भर उठता है। तब हाँ, सब की जड़ में है मेरा भैया। मैं बी० ए० पास कर बैठी थी। चूँकि शादी की कोशिशें चल रही थीं इसलिए मैं एम० ए० में दाखिल नहीं हो सकी। शादी के लायक बहन की शादी न कर भैया द्वारा अपनी शादी कर लेने की वजह से सगे-सम्बन्धी और दोस्त-मित्रों में बीच अपवाद का बाजार गर्म था। भैया मेरी शादी के लिए इस तरह व्याकुल हो उठा कि बिना किसी प्रकार की तहकीकात किये रंजन के हाथों में मुझे सौंप दिया और प्रजापति ऋषि को प्रसन्न करने की चेष्टा की।

पैसे में बहुत गुण है। हमारे देश में फोरमैन भी मिस्त्री समझे जाते हैं। लेकिन विलायत में जो लोग मिस्त्री हैं वे हमारे देश में इंजीनियर का सम्मान पाते हैं। जब मेरी शादी हुई, उस समय मुझे पता था कि रंजन इंजीनियर है। शिवनाथ शास्त्री और रमेश दत्त की प्रतिभा की तरह उसकी भी प्रतिभा के सम्बन्ध में कितनी ही छोटी मोटी घटनाएँ और कहानियाँ सुनने को मिली थीं। यह जानकर प्रसन्नता हुई थी कि गरीब स्कूल शिक्षक का लड़का होने के बावजूद रंजन ने जिन्दगी में पराजय स्वीकार नहीं की थी। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर [illegible] खाता लेकर विद्यासागर [illegible] नहीं हुआ। रंजन समुद्र पार कर विदेश चला गया। [illegible] बाद कमाया। भैया ही इतना महत्वाकांक्षी और [illegible]

था कि यह सब कहानी मुझे अंग्रेज जासूसों की आँखों में धुल झोंककर सुभाषचन्द्र के अन्तर्धान होने जैसी रोमांचकारी प्रतीत हुई थीं।

उसके बाद ?

उसके बाद और क्या ? शुरू में घर में उत्कण्ठा का वातावरण रहा मुहल्ले में चर्चा चली। मतामत, टिप्पणी, मन्तव्य का दौर चला।

उसके बाद एरोग्राम आया। मात्र तीन-चार पंक्तियों का पत्र—अच्छी तरह हूँ, चिन्ता नहीं कीजिएगा।

और उसके साथ ही दृढ़ निश्चय की वाणी—जब तक पैरों पर खड़ा नहीं होऊँगा, तब तक देश नहीं लौटूंगा।

केवल मध्यम ग्राम नहीं, संभवतः जसोर रोड के आसपास के तमाम लोगों को जानकारी हासिल हुई कि गोपाल मास्टर का बेटा जर्मनी गया है।

उसके बाद लम्बे अरसे तक चुप्पी छायी रही।

दुबारा एयरोग्राम आया—इंजीनियरिंग पढ़ रहा हूँ और नौकरी भी कर रहा हूँ।

अफवाह शान्त हो गयी, गोपाल मास्टर का सम्मान बढ़ गया।

इसके बाद बीच-बीच में पत्र आता रहा। रंजन ने पचास-साठ-सत्तर मार्क के ड्राफ्ट और लोगों के द्वारा थोड़ी-बहुत चीजें भेजना शुरू किया। गोपाल मास्टर के परिवार में क्रान्ति का दौर शुरू हुआ।

पाँच साल के बाद लुफ्तहैन्स एयरक्राफ्ट से रंजन जिस दिन दमदम में उतरा उस दिन आनन्द और गौरव से गोपाल मास्टर के परिवार के लोगों की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। लेकिन नाइलोन के लिबास, ब्राउन ट्रांजिस्टर और ग्रूनडिग टी० के० ट्वन्टीनाइट टेपरेकार्डर के कारण रंजन का वास्तविक मूल्य समझने में लोगों से गलती हो गयी। घर-बाहर सब जगह रंजन का इंजीनियर के रूप में सम्मान होने लगा। होगा क्यों नहीं ? जो लड़का जर्मनी, कनाडा और लन्दन से माँ-बाप, भाई-बहनों के लिए मैक कार्डिगन, नाइलोन शर्ट, जैकेट, टाइमकेस रिस्टवाच, पार्कर पेन, चैनल का कलोन नम्बर फाइव परफ्यूम के अलावा एक-दो महीने के बाद दो-चार सौ रुपये का ड्राफ्ट भेजता है, उसे इंजीनियर कैसे न माना जाये ?

किसी तरह का सन्देह ?

नहीं। सन्देह क्यों होगा ? इंजीनियर हुए बगैर कोई इतना रोज-

गार कर सकता और-और लोगों की बात तो छोड़ ही दें, जब मैं उसकी घर-गृहस्थी बसाने आयी तो मुझे भी,किसी तरह का सन्देह नहीं हुआ। तब हाँ, हनसल के उसके किंग्सले एवेन्यू के दो कमरे के मकान में आने पर मुझे लगा कि किसी भी इंजीनियर का घर-द्वार और अधिक सुन्दर होना चाहिए था। अपने मन को मैंने सांत्वना दी। यह क्या कोई कलकत्ता है? यह लंदन है। दुनिया की अद्वितीय श्रेष्ठ महानगरी। यहाँ इतनी आसानी से बड़े-बड़े फ्लैट नहीं मिलते। संभवतः कुँवारे लोगों को बड़ा फ्लैट देने की मनाही है। या फिर इस अंचल में बड़े फ्लैट उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन छोटे कमरे रहने पर भी क्या उन्हें रुचि-सपन्न तरीके से नहीं रखा जा सकता है? मैंने रंजन से कुछ नहीं पूछा। उसने स्वयं इस सवाल का जवाब दिया था। अकेले रहने पर घर-द्वार सजा-कर रखने की किसे इच्छा होती है? इसके अलावा सवेरे सात बजे निकल शाम के वक्त घर लौटकर, रसोई पकाकर खाना खाने के बाद और कुछ करने को जी चाहता है? सप्ताहान्त? शनिवार-रविवार? जरा आराम नहीं करूँगा? पूरे सप्ताह की शॉपिंग नहीं करूँगा? सप्ताह में एक बार सिनेमा नहीं देखूँगा? दोस्तों के साथ अड्डेबाजी नहीं करूँगा?

मेरे मन में किसी प्रकार का दुःख या अतृप्ति का अहसास नहीं हुआ था। रंजन के प्यार के कारण सारा दुःख और दैन्य भूल गयी थी। अनेकानेक अधूरेपन में भी पूर्णता का आस्वाद मिला था।

फिर भी बीच-बीच में मन को धक्का जैसा लगता था। रंजन को कभी कोई अच्छी-सी पुस्तक पढ़ते नहीं देखती हूँ! 'डेली मिरर' और 'इवनिंग स्टैण्डर्ड' के अतिरिक्त कोई दूसरा अच्छा अखबार नहीं मिलता है? यहाँ का 'टाइम्स' और 'गार्जियन' तो विश्व-विख्यात पत्र हैं लेकिन रंजन कभी इन पत्र-पत्रिकाओं को नहीं खरीदता है। सुना है, कलकत्ते के अंग्रेजी-बँगला अखबार भी यहाँ आते हैं। कलकत्ते का कोई अखबार खरीदने में क्या ढेर सारा पैसा लगता है?

रंजन के यहाँ पहले-पहल आने के बावजूद नयी बहू की तरह हर पग पर मुझे संकोच या दुविधा का सामना नहीं करना पड़ता था। न तो इसकी कोई वजह थी और न ही उसके लिए कोई अवकाश था। मेरी शादी कच्ची उम्र में नहीं हुई थी। मेरी जब शादी हुई थी, उस समय मुझमें इस बात की समझदारी थी कि मेरे जीवन के लिए पति

का क्या प्रयोजन है और पति की दृष्टि में मेरा क्या महत्त्व है। कलकत्ते में पति के घर के और-और लोगों के साथ घर-गृहस्थी करनी पड़ती तो संभवतः थोड़ी दूरी बनी रहती, लेकिन लन्दन आने के कारण मुझे उन अलिखित संयमों का भी पालन न करना पड़ा था। वीक-डे में वक्त नहीं मिलता था लेकिन शनिवार और रविवार को मैं रंजन की गोद में बैठकर नाश्ता करती थी। "अच्छा, इस तरह मैं बैठी रहूँ तो तुम नाश्ता कर सकोगे ?"

दाहिने हाथ से फ्रॉक पकड़ और बायें हाथ में मेरी कमर को लपेट-कर वह कहता, "ऑफकोर्स !"

"तुम्हें तकलीफ नहीं होती ?"

तकलीफ ? रंजन हँसते हुए कहता, "अभी अगर एक फोटो खींच लूँ तो कितने पौंड में बिकेगा, मालूम है ?"

मैं मजाक के लहजे में कहती, "हजार पौंड तो जरूर ही मिल जायेगा।"

सॉसेज का एक टुकड़ा मेरे मुँह में डालकर वह कहता, "चाहे हजार पौंड न मिले मगर एकाध सौ पौंड तो जरूर मिल जायेगा।"

"ऐसा होता तो कोई भी नौकरी नहीं करता। सभी लोग पत्नी को गोद में बिठाकर फोटो खींचता और घर-गृहस्थी का खर्च चलाता।"

रंजन चुप रहने का नाम नहीं लेता, "इस देश में मॉडलिंग की क्या कीमत है, मालूम है ?"

"नंगी होकर फोटो खिंचवाने से रुपया क्यों नहीं मिलेगा ?"

"मॉडलिंग का मतलब क्या नंगा होना ही है ?"

"मतलब यह न होने पर भी वास्तव में वैसा ही होना पड़ता है।"

"न्यूड न होने के बावजूद मॉडल बना जा सकता है।"

"मैं तुम्हारी गोद में बैठकर ही खुद को धन्य समझ रही हूँ। मॉडल बनने की जरूरत नहीं है।"

रंजन के बारे में सोचने पर क्रोध आता है, मगर लन्दन-जीवन के शुरू के दिनों की याद आने पर हँसने का मन करता है। दुःख, व्यथा और पीड़ा के बावजूद एक अच्छा लगने का भाव मन को छू जाता है। तब के दिन सचमुच ही बड़े मधुर, बड़े ही प्यारे लगते थे। ऐसा न होने का कोई कारण न था। मेरे साथ वह इतना पागलपन करता कि न अच्छा लगना नामुमकिन था। अपने बारे में सबके मन में ऊँची धारणा रहती

है। शायद मुझमें भी थी। हो सकता है कि अब भी हो। इसलिए जब वह मेरी शिक्षा-दीक्षा की प्रशंसा करता, मेरे रूप और यौवन के साथ छेड़-खानी और पागलपन करता तो उस समय मैं आनन्द और आत्मतृप्ति के ज्वार में बह जाती थी। बहने को विवश होना पड़ता था। प्रिया-प्याली को उसका पति यदि इस तरह उच्छृङ्खलता के साथ प्यार करता तो वह आनन्द के ज्वार में बहे बिना नहीं रह पाती। मन में चाहे जितनी ही व्यथा और पीड़ा क्यों न छिपी रहे, रंजन जैसे लापरवाह पति के निकट खुश न रहूँ, ऐसा नहीं हो सकता था। आज, इस वक्त, इस हवाई जहाज की खिड़की के किनारे बैठकर महाकाश की ओर आँखें दौड़ाने पर उन स्मृतियों से मन परिपूर्ण हो उठा है। कितनी ही घटनाएँ एक-एक कर याद आ रही हैं।

अचानक एक दिन दफ्तर से लौटते ही उसने खुशियों में आकर मुझे अपने बाहुओं में भर लिया और नाचते-नाचते कहा, "बता सकती हो कि मैं इतना खुश क्यों हूँ?"

"तुम्हारे पागलपन का क्या कोई वक्त हुआ करता है?"

"नहीं होता है?"

"कभी नहीं।"

"मैम, कुड यू साइट ए सिंगल एक्जाम्पल?"

"एक क्या, हजारों नजीर पेश कर सकती हूँ।"

"यू आर वेलकम मैम।"

"तुम्हारे पागलपन की नजीर पेश करने लगूँ तो रात बीत जाये।"

"बीतने दो।"

"सच, कहूँ?"

"अभी तुरन्त कहो।"

"कितनी नजीर सुनना चाहते हो?"

"तुम जितनी सुना सको।"

"लेटेस्ट को ही पेश करूँ?"

"बोलो।"

"दो सप्ताह पहले हाइड पार्क में जाकर क्या किया था?"

मेरा सवाल सुनकर रंजन चौंक उठा और नाचना रोककर बोला, "हाइड पार्क में मैंने कौन-सा पागलपन किया था?"

उसका विस्मय देखकर मुझे हँसने का मन हुआ।

"सरपेनटाइन लिडो में मुझे ले जाकर···"

वाक्य मैं समाप्त नहीं कर सकी। रंजन ठठाकर हँस पड़ा। थोड़ी देर के बाद हँसना रोककर कहा, "उस तरह के सुहावने मौसम में तुम्हारे साथ तैरना क्या बुरी बात है ?"

"बुरी बात न होने पर भी उसी तरह कोई पागलपन करता है ?"

"करूँगा नहीं ?"

"उतने लोगों के सामने ?"

"और-और लोग क्या तुम्हारी ओर अवाक् दृष्टि से ताक रहे थे ?"

"ताकेंगे ही क्यों ?"

"और-और लोग क्या पागलपन नहीं कर रहे थे ?"

"जरूर कर रहे थे।"

"तुम अब भी पुरानी नहीं हुई हो इसीलिए दूसरे युवक-युवती के पागलपन पर तुम्हारी दृष्टि जाती है। लेकिन दूसरे लोग हम लोगों की ओर नहीं देख रहे थे।"

यह बात सच है। इस देश में जब मैं पहले-पहल आयी तो बस और ट्यूब में युवक-युवतियों को खुले आम एक-दूसरे को प्यार करते देखकर सिहर उठती थी। उन लोगों के कारनामे देखकर शर्म से मेरा चेहरा लाल हो जाता था। हम जिन प्रवृत्तियों और इच्छाओं को अंधेरे एकान्त कमरे के लिए सहेजकर रखते हैं, यहाँ के युवक-युवतियों की उन प्रवृत्तियों और इच्छाओं की उदारता हर जगह दीख पड़ती है।

याद है, एकबार हम चॉक फॉर्म से विवाह की दावत में शरीक होकर लौट रहे थे। रात काफी गहरा चुकी थी। नॉर्दन लाइन के ट्यूब से हम पिकाडिली सर्कस में उतरे ताकि लाइन का ट्यूब पकड़कर एकबारगी सीधे हनसल जा सकें। पिकाडिली सर्कस स्टेशन में कुछ मिनटों तक इन्तजार करने के दौरान खजुराहो की बहुत सारी जीवन्त प्रतिमाएँ देखने को मिलीं। रंजन ने भी देखा। मुझे कहुनी से टहोका मार कर हँसाया मगर ट्रेन पर सवार होने के बाद ठीक अपने सामने की सीट में जो दृश्य हमें देखने को मिला उसके कारण हम चुप्पी साधे नहीं रह सके। तब मैं नयी-नयी आयी थी इसलिए यह सब दृश्य असह्य जैसा लगता था किन्तु रफ्ता-रफ्ता बरदाश्त करने की आदी हो गयी। सामने, बगल में, उन मिथुन मूर्त्तियों को देखकर भी अनदेखा कर देती थी, किसी तरह की राय जाहिर नहीं करती थी। सिर्फ हम ही नहीं, कोई

भी इसे अन्यथा न लेता था। दूसरों के किसी काम-काज के प्रति इस देश के आदमी उत्सुकता प्रकट नहीं करते। वे उदासीन रहते हैं। निर्विकार। यह सब बात आगे चलकर मेरी समझ में आयी। लेकिन उस दिन हाइड पार्क के सरपेनटाइन लिडो में बित्ता-भर स्वीमिंग कस्ट्यूम पहन उसके साथ उस तरह सटकर तैराकी करने में मुझे सचमुच ही बेचैनी का अहसास हो रहा था। रंजन मुझे बेहया जैसा लगा था। साथ ही यह भी महसूस हुआ था कि युवा स्त्री का उपभोग करने के मामले में वह जरा अधिक अभिज्ञ है। अनुभव न रहने के बावजूद विवाहित जीवन के संबंध में मेरे मन में काफी कुछ धारणाएँ थीं। लेकिन रंजन हर मामले में उतना सहज सरल और अनुभवी हो सकता है, इसकी आशा न थी। दो-चार दिन उसके साथ घर-गृहस्थी करने के बाद सोचा था कि एकबार पूंछू, "बहुत-सी लड़कियों से इश्क-मुहब्बत कर चुके हो ?" सोचा तो था मगर अन्ततः पूछ नहीं सकी।

मैं उसके जुनून की ढेरों नजीर पेश कर सकती थी, मगर पेश नहीं की। फायदा ही क्या है ? जरूरत ही क्या है ? इसके अलावा मैं जिसे जुनून कह रही हूँ वह उसके लिए नितान्त स्वाभाविक काम था। शुरू में मैं उसे रोकने की कोशिश करती थी, विरोध करती थी। अनुरोध करती पर उस अनुरोध का कोई नतीजा नहीं निकलता था। घर-बाहर, यहाँ-वहाँ वह अपनी मर्जी के अनुसार मेरे साथ पागलपन करता था।

पति यदि पत्नी के साथ जरा अधिक पागलपन करता है तो पत्नी को खुशी होती है, वह स्वयं को सुखी समझती है। लेकिन यह उन्माद और पागलपन यदि सीमा के बाहर चला जाये तो ? उन्माद यदि असभ्यता का चेहरा पहन ले तो ? यदि कुरुचि का परिचायक हो जाये तो ? हालाँकि मुझे अच्छा नहीं लगता था लेकिन फिर भी वह जो कुछ कहता मैं मान लेती थी। धीरे-धीरे एक के बाद एक आघात लगने पर मैं मन ही मन उससे दूर हटने लगी। उसका आनन्द देखकर मेरा मन आशंकाओं में भर उठा और मैंने कहा, "तुम्हारे दिमाग में जरूर ही किसी नये पागलपन की योजना मँडरा रही है।"

"पागलपन की कोई योजना नहीं है रुणा, अगले सप्ताहान्त में मैं पेरिस जा रहा हूँ।"

"सच ?"

"तुम्हें आश्चर्य लग रहा है ?"

"एकाएक पेरिस जाने की वात तुम्हारे दिमाग में क्यों आयी ?"

"इसलिए कि सस्ते में दो एयर-टिकट मिल गये।"

इसके वाद मैंने और कुछ जानना न चाहा। बाद में सुनने को मिला था, आधी रात में हवाई जहाज से सफर करने पर वहुत सस्ते में टिकट मिल जाता है। सुवह, दोपहर, शाम को अनगिनत आदमी आते-जाते रहते हैं, इसलिए कन्टिनेन्टल फ्लाइट में इतनी भीड़ रहती है मगर गहरी रात में मुसाफिर मिलना मुश्किल हो जाता है। आज मैं हवाई जहाज में चुपचाप बैठी हूँ। और उस बार पेरिस जाने के दौरान ? लन्दन लौटने के रास्ते में ? हवाई जहाज पर सवार होते ही रंजन ने मुझे एक कंवल में लपेट लिया था। अगल-बगल की सीटों में बैठे रहने पर भी रंजन कंवल के नीचे से गन्दी हरकत कर रहा था।

उसने मेरे साथ जितना पागलपन किया है, मैं उससे उतनी ही दूर हटती गयी हूँ। वहुत धीरे-धीरे छोटे-छोटे ज्वार के धक्के से मैं रंजन से अलग हट कर स्वयं को सहेजने-समेटने लगी। ज्वार का दौर उतर गया और भाटे का खिचाव शुरू हुआ। मैंने स्पष्ट तौर पर महसूस किया कि शुक्ल पक्ष की अवधि समाप्त हो गयी है और मावस का अँधेरा अव ज्यादा दूर नहीं है।

मैं जानती थी, शादी के बाद पति को सब कुछ सौंप देना चाहिए। देना पड़ता है। मैं इसके लिए प्रस्तुत थी। यही वजह है कि विवाह के तुरन्त वाद, उसके कलकत्ते के कई दिनों के वास के दौरान, मैंने रंजन की दुविधाहीन, दुःसाहस से भरपूर माँग का विरोध नहीं किया था। सोचा था, आनन्द की अधिकता या आसन्न विरह के दुःख में उसने आवश्यकता से अधिक दावा जताया है। इसके अतिरिक्त शुरू में मुझे कोई बुरा नहीं, अच्छा ही लगा था।

मैं भले ही अत्याधुनिका न होऊँ परन्तु आधुनिका जरूर हूँ। पति के साथ मौज मनाने की खातिर मुझमें हिचकिचाहट या संकोच कभी नहीं था। मैं जानती थी कि कलकत्ते और लन्दन की जिन्दगी में काफी कुछ अलगाव है। यह भी जानती थी कि लंबे अरसे तक विदेश में वास करने के कारण रंजन के जीवन जीने का ढंग, और विचारधारा कलकत्ते के मध्यवित्त वंगाली युवकों की जैसी नहीं हो सकती है। उसके अन्दर पाश्चात्य जीवन-प्रणाली की छाप है, यह मैं समझती थी, लेकिन

यह नहीं जानती थी कि उसके अन्दर मुझे रुचि-संपन्नता का इतना अभाव और विचार-धारा की इतनी दीनता देखने को मिलेगी।

उस दिन बृहस्पतिवार था। रात के डिनर के लिए हम शुभेन्दु के द्वारा आमंत्रित किये गये थे। उसने यद्यपि बहुत बार कहा था मगर हम सहमत नहीं हुए थे। एक कुँवारा युवक अपने हाथ से रसोई पकाकर हमें खिलायेगा, यह बात हमें पसन्द न थी। यह जानने के बावजूद कि इस तरह के देशों में सभी भारतीय युवक अपने हाथों से ही अपनी रसोई पकाते हैं, हम शुभेन्दु को कष्ट देने को तैयार नहीं थे। मगर अन्ततः उसके अनुरोध को ठुकरा नहीं सके। रंजन ने उससे कहा, "इन विटिशन एक्सेप्टेड। लेकिन एक शर्त है।"

शुभेन्दु ने पूछा, "क्या ?"

"रुणा तुम्हारी मदद करेगी।"

"ऐसा कुछ खिलाने नहीं जा रहा हूँ कि मदद की जरूरत पड़े।"

"सिर्फ दाल-भात खिलाने पर भी उसकी मदद लेनी पड़ेगी।"

आखिरकार शुभेन्दु ने शान्ति-प्रस्ताव स्वीकार लिया।

मैं तीसरे पहर शुभेन्दु के यहाँ चली आयी। कुछ चीजें तैयार हो चुकी थीं। दो बार कॉफी पीने के बावजूद शाम सात बजे रसोई का काम खत्म हो गया। इसलिए हम बैठे-बैठे गपशप कर रहे थे। तरह-तरह की बातों का दौर चलने के बाद मैंने शुभेन्दु से कहा, "इस विदेश में अकेले रहने पर तुम्हें तकलीफ का अहसास नहीं होता ?"

"जरूर होता है।"

"फिर शादी क्यों नहीं कर लेते ?"

शुभेन्दु हँस दिया। "अब भी एक बहन की शादी नहीं हुई है। इसके अलावा…।"

शुभेन्दु खामोश हो गया।

"इसके अलावा और क्या ?"

"इसके अलावा दूसरी-दूसरी समस्याएँ भी हैं।"

"दूसरी समस्याएँ क्या हैं ?"

"शिक्षा-दीक्षा न होने के बावजूद इस देश में कई वर्ष गुजार चुका हूँ और ऐसी हालत में बिना ग्रेजुएट लड़की के काम नहीं चल सकता।"

"ग्रेजुएट लड़की से शादी करने को तुम्हें किसने मना किया है ?"

"एकाएक पेरिस जाने की बात तुम्हारे दिमाग में क्यों आयी ?"

"इसलिए कि सस्ते में दो एयर-टिकट मिल गये।"

इसके बाद मैंने और कुछ जानना न चाहा। बाद में सुनने को मिला था, आधी रात में हवाई जहाज से सफर करने पर बहुत सस्ते में टिकट मिल जाता है। सुबह, दोपहर, शाम को अनगिनत आदमी आते-जाते रहते हैं, इसलिए कन्टिनेन्टल फ्लाइट में इतनी भीड़ रहती है मगर गहरी रात में मुसाफिर मिलना मुश्किल हो जाता है। आज मैं हवाई जहाज में चुपचाप बैठी हूँ। और उस बार पेरिस जाने के दौरान ? लन्दन लौटने के रास्ते में ? हवाई जहाज पर सवार होते ही रंजन ने मुझे एक कंबल में लपेट लिया था। अगल-बगल की सीटों में बैठे रहने पर भी रंजन कंबल के नीचे से गन्दी हरकत कर रहा था।

उसने मेरे साथ जितना पागलपन किया है, मैं उससे उतनी ही दूर हटती गयी हूँ। बहुत धीरे-धीरे छोटे-छोटे ज्वार के धक्के से मैं रंजन से अलग हट कर स्वयं को सहेजने-समेटने लगी। ज्वार का दौर उतर गया और भाटे का खिंचाव शुरू हुआ। मैंने स्पष्ट तौर पर महसूस किया कि शुक्ल पक्ष की अवधि समाप्त हो गयी है और मावस का अँधेरा अब ज्यादा दूर नहीं है।

मैं जानती थी, शादी के बाद पति को सब कुछ सौंप देना चाहिए। देना पड़ता है। मैं इसके लिए प्रस्तुत थी। यही वजह है कि विवाह के तुरन्त बाद, उसके कलकत्ते के कई दिनों के वास के दौरान, मैंने रंजन की दुविधाहीन, दुःसाहस से भरपूर माँग का विरोध नहीं किया था। सोचा था, आनन्द की अधिकता या आसन्न विरह के दुःख में उसने आवश्यकता से अधिक दावा जताया है। इसके अतिरिक्त शुरू में मुझे कोई बुरा नहीं, अच्छा ही लगा था।

मैं भले ही अत्याधुनिका न होऊँ परन्तु आधुनिका जरूर हूँ। पति के साथ मौज मनाने की खातिर मुझमें हिचकिचाहट या संकोच कभी नहीं था। मैं जानती थी कि कलकत्ते और लन्दन की जिन्दगी में काफी कुछ अलगाव है। यह भी जानती थी कि लंबे अरसे तक विदेश में वास करने के कारण रंजन के जीवन जीने का ढंग, और विचारधारा कलकत्ते के मध्यवित्त बंगाली युवकों की जैसी नहीं हो सकती है। उसके अन्दर पाश्चात्य जीवन-प्रणाली की छाप है, यह मैं समझती थी, लेकिन

यह नहीं जानती थी कि उसके अन्दर मुझे रुचि-संपन्नता का इतना अभाव और विचार-धारा की इतनी दीनता देखने को मिलेगी।

उस दिन बृहस्पतिवार था। रात के डिनर के लिए हम शुभेन्दु के द्वारा आमंत्रित किये गये थे। उसने यद्यपि बहुत बार कहा था मगर हम सहमत नहीं हुए थे। एक कुँवारा युवक अपने हाथ से रसोई पकाकर हमें खिलायेगा, यह बात हमें पसन्द न थी। यह जानने के बावजूद कि इस तरह के देशों में सभी भारतीय युवक अपने हाथों से ही अपनी रसोई पकाते हैं, हम शुभेन्दु को कष्ट देने को तैयार नहीं थे। मगर अन्ततः उसके अनुरोध को ठुकरा नहीं सके। रंजन ने उससे कहा, "इन विटिशन एक्सेप्टेड। लेकिन एक शर्त है।"

शुभेन्दु ने पूछा, "क्या ?"

"रुणा तुम्हारी मदद करेगी।"

"ऐसा कुछ खिलाने नहीं जा रहा हूँ कि मदद की जरूरत पड़े।"

"सिर्फ दाल-भात खिलाने पर भी उसकी मदद लेनी पड़ेगी।"

आखिरकार शुभेन्दु ने शान्ति-प्रस्ताव स्वीकार लिया।

मैं तीसरे पहर शुभेन्दु के यहाँ चली आयी। कुछ चीजें तैयार हो चुकी थीं। दो बार कॉफी पीने के बावजूद शाम सात बजे रसोई का काम खत्म हो गया। इसलिए हम बैठे-बैठे गपशप कर रहे थे। तरह-तरह की बातों का दौर चलने के बाद मैंने शुभेन्दु से कहा, "इस विदेश में अकेले रहने पर तुम्हें तकलीफ का अहसास नहीं होता ?"

"जरूर होता है।"

"फिर शादी क्यों नहीं कर लेते ?"

शुभेन्दु हँस दिया। "अब भी एक बहन की शादी नहीं हुई है। इसके अलावा…।"

शुभेन्दु खामोश हो गया।

"इसके अलावा और क्या ?"

"इसके अलावा दूसरी-दूसरी समस्याएँ भी हैं।"

"दूसरी समस्याएँ क्या हैं ?"

"शिक्षा-दीक्षा न होने के बावजूद इस देश में कई वर्ष गुजार चुका हूँ और ऐसी हालत में बिना ग्रेजुएट लड़की के काम नहीं चल सकता।"

"ग्रेजुएट लड़की से शादी करने को तुम्हें किसने मना किया है ?"

"एकाएक पेरिस जाने की बात तुम्हारे दिमाग में क्यों आयी ?"

"इसलिए कि सस्ते में दो एयर-टिकट मिल गये।"

इसके बाद मैंने और कुछ जानना न चाहा। बाद में सुनने को मिला था, आधी रात में हवाई जहाज से सफर करने पर बहुत सस्ते में टिकट मिल जाता है। सुबह, दोपहर, शाम को अनगिनत आदमी आते-जाते रहते हैं, इसलिए कन्टिनेन्टल फ्लाइट में इतनी भीड़ रहती है मगर गहरी रात में मुसाफिर मिलना मुश्किल हो जाता है। आज मैं हवाई जहाज में चुपचाप बैठी हूँ। और उस बार पेरिस जाने के दौरान ? लन्दन लौटने के रास्ते में ? हवाई जहाज पर सवार होते ही रंजन ने मुझे एक कंबल में लपेट लिया था। अगल-बगल की सीटों में बैठे रहने पर भी रंजन कंबल के नीचे से गन्दी हरकत कर रहा था।

उसने मेरे साथ जितना पागलपन किया है, मैं उससे उतनी ही दूर हटती गयी हूँ। बहुत धीरे-धीरे छोटे-छोटे ज्वार के धक्के से मैं रंजन से अलग हट कर स्वयं को सहेजने-समेटने लगी। ज्वार का दौर उतर गया और भाटे का खिचाव शुरू हुआ। मैंने स्पष्ट तौर पर महसूस किया कि शुक्ल पक्ष की अवधि समाप्त हो गयी है और मावस का अँधेरा अब ज्यादा दूर नहीं है।

मैं जानती थी, शादी के बाद पति को सब कुछ सौंप देना चाहिए। देना पड़ता है। मैं इसके लिए प्रस्तुत थी। यही वजह है कि विवाह के तुरन्त बाद, उसके कलकत्ते के कई दिनों के वास के दौरान, मैंने रंजन की दुविधाहीन, दुःसाहस से भरपूर माँग का विरोध नहीं किया था। सोचा था, आनन्द की अधिकता या आसन्न विरह के दुःख में उसने आवश्यकता से अधिक दावा जताया है। इसके अतिरिक्त शुरू में मुझे कोई बुरा नहीं, अच्छा ही लगा था।

मैं भले ही अत्याधुनिका न होऊँ परन्तु आधुनिका जरूर हूँ। पति के साथ मौज मनाने की खातिर मुझमें हिचकिचाहट या संकोच कभी नहीं था। मैं जानती थी कि कलकत्ते और लन्दन की जिन्दगी में काफी कुछ अलगाव है। यह भी जानती थी कि लंबे अरसे तक विदेश में वास करने के कारण रंजन के जीवन जीने का ढंग, और विचारधारा कलकत्ते के मध्यवित्त बंगाली युवकों की जैसी नहीं हो सकती है। उसके अन्दर पाश्चात्य जीवन-प्रणाली की छाप है, यह मैं समझती थी, लेकिन

यह नहीं जानती थी कि उसके अन्दर मुझे रुचि-संपन्नता का इतना अभाव और विचार-धारा की इतनी दीनता देखने को मिलेगी।

उस दिन बृहस्पतिवार था। रात के डिनर के लिए हम शुभेन्दु के द्वारा आमंत्रित किये गये थे। उसने यद्यपि बहुत बार कहा था मगर हम सहमत नहीं हुए थे। एक कुंवारा युवक अपने हाथ से रसोई पकाकर हमें खिलायेगा, यह बात हमें पसन्द न थी। यह जानने के बावजूद कि इस तरह के देशों में सभी भारतीय युवक अपने हाथों से ही अपनी रसोई पकाते हैं, हम शुभेन्दु को कष्ट देने को तैयार नहीं थे। मगर अन्ततः उसके अनुरोध को ठुकरा नहीं सके। रंजन ने उससे कहा, "इन विटिशन एक्सेप्टेड। लेकिन एक शर्त है।"

शुभेन्दु ने पूछा, "क्या ?"

"रुणा तुम्हारी मदद करेगी।"

"ऐसा कुछ खिलाने नहीं जा रहा हूँ कि मदद की जरूरत पड़े।"

"सिर्फ दाल-भात खिलाने पर भी उसकी मदद लेनी पड़ेगी।"

आखिरकार शुभेन्दु ने शान्ति-प्रस्ताव स्वीकार लिया।

मैं तीसरे पहर शुभेन्दु के यहाँ चली आयी। कुछ चीजें तैयार हो चुकी थीं। दो बार कॉफी पीने के बावजूद शाम सात बजे रसोई का काम खत्म हो गया। इसलिए हम बैठे-बैठे गपशप कर रहे थे। तरह-तरह की बातों का दौर चलने के बाद मैंने शुभेन्दु से कहा, "इस विदेश में अकेले रहने पर तुम्हें तकलीफ का अहसास नहीं होता ?"

"जरूर होता है।"

"फिर शादी क्यों नहीं कर लेते ?"

शुभेन्दु हँस दिया। "अब भी एक बहन की शादी नहीं हुई है। इसके अलावा…।"

शुभेन्दु खामोश हो गया।

"इसके अलावा और क्या ?"

"इसके अलावा दूसरी-दूसरी समस्याएँ भी हैं।"

"दूसरी समस्याएँ क्या हैं ?"

"शिक्षा-दीक्षा न होने के बावजूद इस देश में कई [illegible] हैं और ऐसी हालत में बिना ग्रेजुएट लड़की के काम नहीं चल सकता।"

"ग्रेजुएट लड़की से शादी करने को तुम्हें किसने मना किया

"किसी ने मना नहीं किया है मगर अण्डर-ग्रेजुएट लड़की से शादी करना क्या ठीक रहेगा ?"

मेरे मन में यह अस्पष्ट धारणा थी कि शुभेन्दु बी० ए० पास नहीं है। मगर उससे बातचीत करने पर यह बात समझ में नहीं आती थी। इसलिए मुझे पूरे तौर पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने कहा, "फालतू बातें क्यों कर रहे हो ?"

"सच, मैं बी० ए० पास नहीं हूँ।"

मैंने जरा सोचा। कहा, "तुम्हारे जैसे भद्र-शिक्षित युवक से बी० ए० पास लड़की की शादी होने से कोई अन्याय नहीं होगा और कोई लड़की दुखित भी नहीं होगी।"

"सभी क्या तुम्हारी तरह ताल-मेल बिठा सकती हैं ?"

इस बात का महत्त्व ठीक-ठीक मेरी समझ में नहीं आया और मैंने कहा, "कौन-सा ताल-मेल बिठा लिया है ?"

शुभेन्दु ने सहज स्वर में ही कहा, "रंजन इज ए नाइस मैन मगर तुम्हारी जैसी पत्नी पाने की योग्यता उसमें नहीं है।"

मैं उत्तर दूँ कि इसके पहले ही घण्टी बज उठी। शुभेन्दु नीचे गया और रंजन को अपने साथ ले आया।

कमरे के अन्दर घुसते ही रंजन की दृष्टि कॉफी की प्याली पर पड़ी और उसने कहा, "आज निमंत्रण देकर सिर्फ कॉफी ही पिलाओगे ?"

शुभेन्दु हँस दिया। "सिर्फ दाल-भात खिलाने के लिए ही कोई निमंत्रित करता है ? देअर इज समथिंग स्पेशल फॉर यू।"

"गुड ! वेरी गुड !"

शुभेन्दु ने आलमारी खोलते हुए कहा, तुम्हारे लिए एक मित्र से एक बोतल पोर्तगीज पोर्ट वाइन का इन्तजाम किया है।"

पोर्तगीज पोर्ट वाइन का नाम सुनकर रंजन का मन खुशियों से भर उठा।

"तीन गिलास निकालो।"

मैंने कहा, "तीन गिलास लेकर क्या होगा ?"

रंजन ने कहा, "जरा पीकर देखो। सिर चकराने लगेगा।"

"रहने दो।"

रंजन ने पुनः अनुरोध किया, "अरे बाबा, जरा पीकर देखो न। यू विल रीअली लाइक इट।"

"न पीने से मुझे और अच्छा लगेगा।"

शुभेन्दु बोला, "पति के आदेश पर थोड़ी-सी पीने से कोई अन्याय नहीं होगा।"

मैंने नहीं पी। तब मैं पीती नहीं थी। अब बीच-बीच में थोड़ी-सी पी लेती हूँ, लेकिन बहुत ही कम। आमतौर पर लैगर पीती हूँ। जर्मन बीयर की तरह लैगर बहुत ही हल्की होती है। पीने में भी अच्छी लगती है। लैगर बहुत-सी औरतें पीती हैं। जब बहुत अधिक बर्फ गिरती है या बहुत अधिक थकावट महसूस करती हूँ तो ब्राण्डी पीती हूँ। बगैर पिये रह नहीं पाती। पहले तकलीफ महसूस होती तो भी नहीं पीती थी। पीने की आदत नहीं थी। डर लगता था। उसके बाद एक दिन श्रीकान्त ने उस डर को दूर भगा दिया। जनवरी का प्रारंभ था। लगभग दिन-भर बर्फ गिरती रहती थी। उसी हालत में मैं सबेरे आठ बजे दफ्तर जाती और शाम सात बजे वापस आती थी। उस दिन ट्यूब स्टेशन से घर लौटने के दौरान बर्फ से मेरा पूरा शरीर सफेद हो गया। टोपी, कोट, जूता, सब कुछ।

एक मात्र मुँह के अलावा बाकी पूरा शरीर ढँका हुआ था, फिर भी मैं ठंड से काँप रही थी। मैं जैसे ही घर पहुँची कि उसके थोड़ी देर बाद श्रीकान्त आया। मेरी हालत देखकर वह गुस्से में आ गया, "तुम खुदकुशी क्यों नहीं कर लेती हो?"

ठंड से काँपते हुए मैंने कहा, "खुदकुशी क्यों करूँगी?"

"इस तरह ठंड से तकलीफ झेलने के बनिस्बत खुदकुशी करना कहीं बेहतर है।"

मैं उसकी बात पर हँस देती हूँ।

श्रीकान्त तत्क्षण बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद एक बोतल ब्राण्डी लेकर वापस आया। गंभीर होकर बोला, "दो गिलास ले आओ।"

ऑपरेशन थियेटर में जिस प्रकार रोगी सर्जन के सामने आत्मसमर्पण कर देते हैं, उस दिन ठीक वैसे ही मैंने श्रीकान्त की बात मान कर ब्राण्डी के घूँट लिये।

थोड़ी देर बाद श्रीकान्त ने पूछा, "क्या हुआ?"

"होगा क्या?"

"स्वयं को स्वस्थ महसूस कर रही हो?"

मैंने सिर हिला कर हामी भरी।

"इतने ठण्डे मुल्क में यदि जिन्दा रहना है तो यह सब थोड़ा-बहुत पीना पड़ेगा।"

"मालूम है, लेकिन पीने में डर लगता है।"

"डर किस बात का?"

"अगर अभ्यास हो जाये और किसी दिन पियक्कड़ हो जाऊँ तो?"

श्रीकान्त हँस दिया। बोला, "तुम्हारे लिए इस डर का कोई कारण नहीं है।"

मैंने अचकचा कर पूछा, "क्यों?"

उसने निर्विकार भाव से कहा, "जिस औरत ने मुझ जैसे आदमी तक को किसी दिन 'किस' नहीं करने दिया, वह औरत सीमा से बाहर जाकर नशे में गर्क हो जायेगी?"

मैंने हँसते हुए उससे कहा, "उफ्, श्रीकान्त!"

"यह सब आह-उफ छोड़ो। जो सच है, वही कहा।"

उस दिन से बीच-बीच में थोड़ी-सी शराब के घूँट ले लेती हूँ। तबीयत खराब रहने पर या श्रीकान्त जैसे किसी व्यक्ति के दबाव पर ही पीती हूँ। वरना कभी नहीं।

रंजन और शुभेन्दु ने पोर्तगीज पोर्ट वाइन की बोतल खत्म कर दी। आधी से अधिक खाने के बाद और बाकी खाने की मेज पर बैठने के बाद।

फ्राइड राइस के साथ चिकेन खाने के वक्त शुभेन्दु ने कहा, "चिकेन खाते ही सुकान्त की 'एक मुरगे की कहानी' याद आ जाती है।"

मैंने फीकी हँसी हँस दी।

रंजन ने पूछा, "वह कहानी क्या है?"

शुभेन्दु ने कहा, "सुकान्त की एक प्रसिद्ध कविता।"

उसने व्यंग्य भरे लहजे में कहा, "मुरगे के बारे में प्रसिद्ध कविता?"

मुझे बड़ा ही बुरा लगा। बोली, "क्यों, मुरगे के बारे में क्या अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती?"

मुरगे की हड्डी चबाते हुए रंजन बोला, "हम लोगों के देश की जैसी हालत है, कविता लिखने का मर्ज भी वैसा ही है।"

"इसका मायने?"

उसने सीधे उत्तर न देकर कहा, "सुरुचि-संपन्न होने पर कोई मुरगे के बारे में कविता लिख सकता है?"

शुभेन्दु को आघात लगा और उसने मेरी ओर निगाह दौड़ायी। मैं भी उसकी ओर नजर दौड़ाये बगैर रह नहीं सकी। क्रोध दुःख और अनुकंपा से मुझे हँसने का मन हुआ। बोली, "तुमने ठीक कहा है। कुछ दिनों तक इन देशों में रहे बिना रुचि-संपन्नता नहीं आती है।"

"रुणा ने ठीक कहा है। हमारे देश के लोगों को एकाध साल इन देशों में रखा जाये तो इंडिया का चेहरा ही बदल जाये।"

अब मेरी समझ मे आया कि शुभेन्दु ने क्यों कहा था, रंजन इस ए नाइस मैन। लेकिन मेरी जैसी पत्नी पाना उसके लिए ठीक नहीं हुआ है।

खाना खाकर घर लौटने पर मैं रंजन की बगल में ही सोयी लेकिन किसी भी हालत में उससे एक भी शब्द बोलने का मन नहीं हुआ। इसके अलावा उसके सीने में खुद को समर्पित नहीं कर सकी। इच्छा ही नहीं हुई। न तो इस तरह की रुचि पैदा हुई और न मन ने ऐसा करना चाहा। इसके पहले भी मन में आघात लगा था लेकिन उस रात से पति के प्रति अश्रद्धा ही नहीं, घृणा भी पैदा हो गयी। रंजन को मालूम नहीं हो सका। उसके समीप से मैं जैसे बहुत दूर चली गयी। लेटे-लेटे मैं तरह-तरह की अनगिनत बातें सोच रही थी। नींद आने का नाम नहीं ले रही थी। उसी रात मुझे पहले पहल अहसास हुआ, मृत्यु ही सबसे बड़ी त्रासदी नहीं है। आदमी के जीवन की व्यर्थता, निराशा, स्वप्नभंग उससे बड़े त्रासदी हैं।

शुभेन्दु का कहना ठीक ही है कि कलकत्ते में जो कुछ प्राप्त नहीं हो सका था, या जो कुछ वहाँ अप्राप्य था, वह सब यहाँ प्राप्त कर लिया है परन्तु""

बीच में ही मैं टोक देती हूँ," इसका मायने ?"

"कलकत्ते में आदमी के लिए जिन्दा रहना ही सबसे बड़ी समस्या है। मुट्ठी-भर अनाज के लिए आदमी को कितना-कुछ करना पड़ता है। यहाँ जिन्दा रहना कोई समस्या नहीं है। यहाँ के लोगों की भी समस्याएँ हुआ करती हैं मगर भोजन-वस्त्र, बाल-बच्चों की शिक्षा-दीक्षा या बीमारी की चिकित्सा कराने के लिए उन्हें चिन्ता नहीं करनी पड़ती है""।"

"फिर ?"

"कलकत्ते के जीवन में ग्लानि है लेकिन दैन्य नहीं। लो प्राण हँसते हैं, रोते है, चिल्लाते हैं। यहाँ के जीवन में ग्लानि नहीं है भरपूर दैन्य है।"

एक लंबी साँस लेकर शुभेन्दु मेरी ओर देखता है। कहता है, यहाँ आने पर यही मेरी सबसे बड़ी त्रासदी है।"

सोचने पर हँसने का मन करता है। न पाना जीवन की एक मात्र त्रासदी नहीं है। बहुत-कुछ पाने के अन्दर भी त्रासदी छिपी रहती है।

मुझे अच्छी तरह याद है, दूसरे दिन सवेरे रंजन जब दफ्तर चला गया तो मैं चिट्ठी लिखने बैठ गयी। माँ को, भैया को, प्याली को। सुख या दुःख में सबसे पहले मुझे माँ की याद आती थी। इसलिए माँ को चिट्ठी लिखे बगैर रह न सकी। फिर भी अपने दुःख की बात लिख नहीं सकी। भैया को उसके दफ्तर के पते पर एक बड़ा पत्र लिखा।

भैया पर बहुत ही गुस्सा आया था। बिना जाने-सुने उसने क्यों एक अशिक्षित युवक से मेरी शादी करायी? मैं क्या लन्दन आने के लिए हाय-हाय कर रही थी? या उसने यह सोचा था कि मौज-मस्ती का मौका मिलते ही मैं तमाम दैन्य से मुक्त हो जाऊँगी? मालूम नहीं, उसने क्या सोचा था। इतना ही जानती हूँ कि वह मेरा ब्याह रचाने के लिए पागल हो गया था।

प्रिया-प्याली को मैंने बेहद दुःख से भरा पत्र लिखा। और भी बहुत सारी बातें लिखीं। अपनी निराशा की बातें। रंजन की रुचि और मानसिक दैन्य की बातें लिखीं मगर उससे अधिक कुछ भी न लिख सकी। यह मैं भूल नहीं सकी कि रंजन मेरा पति है। इच्छा रहने पर भी पति की निन्दा नहीं की जाती है। यह बड़ा ही कठिन काम है, एक तरह से दुःसाध्य ही। उस दिन प्रिया-प्याली को पत्र लिखने के दौरान महसूस किया कि दुःख और निराशा के बनिस्बत संस्कार महान होता है और उसका प्रभाव गहरे तक उतरता है।

चिट्ठियाँ लिखने के बाद मैं एक तरह के अनमने पन में डूब गयी। पिछली रात की बात सोचने लगी। तरह-तरह की चिन्ताओं में खोये रहने की वजह से रात काफी गहरा जाने के बाद ही मेरी आँखों में नींद आयी थी। सवेरे बहुत देर से जगी थी। उठने पर देखा, रंजन जाने को तैयार है। कुछेक सॉसेज और सीझे हुए आलू खाकर ही वह दफ्तर चला गया। यहाँ तक कि एक कप कॉफी भी मैं नहीं दे सकी। यह सोचने पर बड़ा ही बुरा लगा। इतना जरूर है कि दोपहर के वक्त ऑफिस में लंच लेगा किन्तु मामूली-सा खाना खाने के बाद लंच के वक्त तक काम करना आसान नहीं है। बड़ा ही तकलीफदेह है। वह डलहौजी मुहल्ले के दफ्तर

में काम नहीं करता है या टीटागढ़ बैरेकपुर के कारखाने में नहीं कि अपनी मर्जी के अनुसार कैन्टिन में जाकर खाना खा ले और अड्डेबाजी करे। यहाँ काम के वक्त काम करना ही होगा। बिना किये दूसरा कोई उपाय नहीं है। रंजन ने न तो कुछ सोचा और न ही कुछ उसको समझ में आया था। लेकिन सब कुछ पर सरसरी निगाह दौड़ाने पर मेरा मन और अधिक खराब हो गया। पति या किसी दूसरे आदमी की अवज्ञा करना कोई अहमियत नहीं रखता। सोचा, रंजन में भले ही सूक्ष्म अनुभूति न हो, वह भले ही ज्ञानी-गुणी न हो परन्तु वह मुझे प्यार करता है। इसके अतिरिक्त इस दुनिया की कविता और साहित्य के प्रति सबमें अनुराग नहीं हो सकता है। यह जरूरी भी नहीं है। काव्य और साहित्य के प्रति अनुराग रहने से ही मनुष्य महान् और प्रिय हो जायेगा, ऐसी बात नही। रंजन में भले ही बहुत-सी खामियाँ हैं मगर मेरे प्रति उसका जो प्रेम है, उसमें किसी प्रकार का कार्पण्य नहीं है। और यह सोचकर मेरा मन उदास हो गया।

अब मैं बैठी रह न सकी। उठकर खड़ी हो गयी। लिबास पहनकर हाथ में एक झोला ले बाहर निकल आयी। हनसल ईस्ट स्टेशन के पास ही दुकान है। वहाँ मैंने मुरगा खरीदा। उसके बाद बगल की दुकान में जाकर काउन्टर के वृद्ध सज्जन से पूछा, "अच्छा यह तो बताइये कि आज रात अपने पति को कौन-सा ड्रिंक ऑफर करूँ ?"

"हैव सम शेरी।"

"यू थिंक सो ?"

"ऑफकोर्स।"

"तो फिर एक बोतल अच्छी शेरी ही दीजिये।"

वृद्ध ने तत्क्षण एक बोतल ड्राइ सैक शेरी मेरे हाथ में थमाकर हँसते हुए कहा, "आइ एम श्योर यू विल हैव लॉट ऑफ फन टु-नाइट।"

पर्स से दो पौण्ड का नोट बाहर निकालकर देते हुए मैंने कहा, "यू आर रीअली श्योर ?"

ऑफ़कोर्स। एक तो तुम्हारी जैसी खूबसूरत युवती और उस पर एक बोतल ड्राइ सैक !"

वृद्ध ने कुछ रेजगारी मुझे दी मगर मैंने उसे बिना देखे पर्स के अन्दर डाल लिया।" गुडबाइ !"

"गुडबाइ बेस्ट आफ लक !"

पानी और मिट्टी का भूगोल है, आकाश का नहीं। आकाश का सब कुछ एक और एकाकार है। पाँवों के तले की जमीन जिसकी है, ऊपर का आकाश भी उसी का है। अखबारों में हालाँकि आकाश के सीमा-लंघन की खबरे छपती हैं लेकिन आकाश की कोई निजी सीमा नहीं है। वह सीमाहीन है। उसी सीमाहीन आकाश में उड़ रही हूँ और अपनी भावनाओं में डुबकी लगा रही हूँ।

उस वृद्ध विक्रेता की बात सोच रही हूँ। उसका हँसता हुआ चेहरा और उसके रस-बोध की याद आ रही है। इस देश के आदमी हँसते हैं और हँसी-मजाक करते हैं। मन ही मन क्रोधित होने की बात तो दूर की है, कहा यही जा सकता है कि सब लोग इसका उपभोग करते हैं, आनन्दित होते हैं। ट्यूब, बस, दुकान-बाजार दफ्तर हर जगह आम लोगों के रस-बोध का परिचय मिलता है। मेरे एक फूफा इ० बी० रेलवे में नौकरी करते थे। उन्होंने अविभक्त बंगाल के सभी जिलों की परिक्रमा की थी। वे कहते थे, "ढाका के मसखरों जैसा सेन्स ऑफ ह्यूमर कहीं देखने को नहीं मिला है।" उन मसखरों की बहुत-सी कहानियाँ उनसे सुनती थी और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती थी। मैं तब बहुत ही छोटी थी। चौथे, पाँचवें या छठे दर्जे में पढ़ती थी। अच्छी तरह याद है कि दूसरे दिन अपनी सहेलियों को हँसी की उन कहानियों को सुनाने के लिए मैं छटपटाती रहती थी। यह सब बचपन की बातें हैं। धीरे-धीरे जब बड़ी हुई, जब मुझमें समझदारी आयी तो मुझे आमलोगों में रस-बोध का परिचय कहीं नहीं मिला। लड़कियों से लड़के मजाक करें तो हम लोगों के देश और समाज में यह अक्षम्य अपराध माना जाता है।

योरप-अमरीका के लोगों का कहना है, अँग्रेज हँसना नहीं जानते। वे मुँह लटकाये रहते हैं। थ्री पिस सूट, चेनवाली जेब घड़ी, हाथ में छाता और सिर पर बोलर हैट धारण कर जो लोग ह्वाइट हॉल में विचरण करते हैं, वे वाकई हँसना नहीं जानते। सारी दुनिया से राज्य समाप्त हो जाने के बावजूद ये लोग अब भी अपने आपको क्वीन विक्टोरिया की औलाद समझते हैं। योरप-अमरीका के सैलानी संभवतः उन्हीं लोगों को देखकर समझाते हैं कि अँग्रेज हँसना नहीं जानते। यह धारणा गलत है। इंगलैण्ड के आमलोग, जो खेत-खलिहानों में काम करते हैं, दुकान-बाजार, दफ्तर-कारखानों में काम करते हैं, जो लोग दुनिया के लोगों का अपने आपको अभिभावक नहीं समझते, वे हँसना जानते हैं।

उन लोगों के रस-बोध के प्रारंभिक परिचय की घटना को याद करते ही हँसने की इच्छा होती है। उस दिन न केवल हँसी थी बल्कि शर्म से चेहरा लाल हो गया था। लन्दन पहुँचने के सात-आठ दिन बाद की बात है। रंजन मुझे अपने साथ लेकर मेरे लिए तरह-तरह के कपड़े खरीदने निकला था। अण्डर गारमेन्ट से लेकर नाइटी तक। कलकत्ते में हम लोग जिन वस्तुओं की खरीददारी लुक-छिप कर करती हैं, यहाँ वह सब वस्तु मर्द भी खुलेआम खरीद सकते हैं। कोई अन्यथा नहीं लेता। रंजन ने सेल्समैन को ऑर्डर देकर मुझसे पूछा, "साइज क्या है?"

मैंने दबे स्वर में कहा, "थर्टी-फोर।"

मध्यवयस्क सेल्समैन ने मुसकराकर रंजन से पूछा, "न्यूली मैरेड?"

रंजन भी मुसकरा दिया। बताया, "येस।"

सेल्स मैन ने मुसकराते हुए सलाह दी, "इफ यू डॉन्ट माइन्ड बड़ी साइज का ले जाइये।"

मैंने एकाएक पूछा, "बड़ी साइज की क्यों लूं?"

"स्वीट लेडी! मैं पन्द्रह बरसों से महिलाओं के डिपार्टमेन्ट में काम कर रहा हूँ। आइ नो यू विल रिकर ए स्लाइटली बिगर साइज विदिन नेक्स्ट फ्यू डेज!"

इस तरह का हँसी-मजाक हमारे देश के दुकानदार कभी नहीं करेंगे। न तो साहस है और न रुचि। गाहक भी हँसी-मजाक को अश्लील समझते हैं। यही वजह है कि शेरी खरीदकर बाहर निकलने के वक्त मैंने सेल्स मैन की टिप्पणी को अन्यथा नहीं लिया। बल्कि खुश ही हुई। पत्नी-पत्नी एक रात खुशियों में गुजारें, उसकी इस शुभेच्छा से खुश क्यों न होऊँ?

घर लौटने पर देखा, मेज पर मेरे द्वारा लिखी तीनों चिट्ठियाँ पड़ी हुई हैं। तीनों पत्र को हाथ मे उठाकर मैंने जरा सोचा। उसके बाद फाड़ दिया। सोचा, अपना निजी मामला उन्हें जना कर क्या होगा? फायदा ही क्या है? वे क्या मेरा दुःख दूर कर देंगे?

शाम को दफ्तर से लौटने के बाद मुझे और मेरी तैयारियों को देख-कर रंजन स्तंभित, ठगा-सा रह गया। दोनों हाथ बढ़ाकर बाहुओं में भरते हुए मुझे अपनी गोद में बिठा लिया। "क्या बात है रुना? आज क्या तुम्हारा जन्मदिन है?"

"नहीं।"

"देन ह्वाट एबाउट दिस एटमॉसफियर ऑफ सेलिब्रेशन ?"

उसकी गोद पर बैठे-बैठे ही मैंने कहा, कोई उपलक्ष्य न हो तो खुशियाँ क्या नहीं मनायी जा सकती हैं ?"

अब मैं उसकी गोद से उतर गयी।

एक बार और कमरे के चारों तरफ निगाह दौड़ाकर उसने पूछा, "किसी को दावत पर बुलाया है ?"

"नहीं।"

"शुभेन्दु को भी नहीं ?"

शुभेन्दु को दावत पर बुलाने लायक कौन-सी घटना घटी है ?" मैंने बगैर सोचे-विचारे ही यह बात कही। शुभेन्दु अच्छा आदमी है। उसे मैं वाकई पसन्द करती हूँ। वह भी मुझे पसन्द करता है। शायद मन ही मन थोड़ी-बहुत श्रद्धा की दृष्टि से भी देखता है। गपशप में हम दोनों घण्टों गुजार देते हैं। कभी उसके यहाँ और कभी अपने यहाँ। कोई अच्छी रसोई पकाने पर उसे बुला लाती हूँ या फिर जाकर दे आती हूँ। मगर उस शाम उसकी उपस्थिति की मैंने चाह नहीं की थी। हम दोनों के बीच तीसरे व्यक्ति का आगमन हो, यह मैंने नहीं चाहा था। हम दोनों के बीच तीसरे व्यक्ति का आगमन होते ही समस्या खड़ी हो सकती है। मन में यह विचार जग सकता है कि रंजन उतना शिक्षित और रुचि-संपन्न नहीं है। सोचूँगी, काव्य-साहित्य के संबंध में रंजन को कोई ज्ञान नहीं है। इच्छा न होने पर भी घटनाचक्र के कारण तुलनात्मक विवेचन करने लगूँगी और पति को बौना और हेय बना डालूँगी।

डाइनिंग टेबल के आइस जग से शेरी की बोतल उठाकर रंजन ने कहा, "मैं अकेले ही एक बोतल शेरी पिऊँगा ?"

"हाँ।"

वह ठठाकर हँसने लगा। "फिर तो नशे में धुत्त हो जाऊँगा।"

"आधी बोतल कल के लिए रख दो।"

"ह्विस्की रखी जाती है मगर शेरी या वाइन की बोतल खोलने पर आखिरी बूंद तक पी लेने का रिवाज है।"

"ऐसा हो तो भी किसी दूसरे को बुलाने की जरूरत नहीं। मैंने उसे अपनी बाँहों में भरकर और उसके सीने पर सिर रखकर कहा, "मैं सिर्फ तुम्हारे लिए ही ले आयी हूँ।"

रंजन ने मुझे अपनी बाँहों में भरकर और मेरे सिर पर अपना चेहरा टिकाकर कहा, "जानती हो रुणा, इस देश की औरतें तुम्हारे जैसा प्यार नहीं कर सकती हैं।"

"सच ?"

"सच कह रहा हूँ।"

"अपने अनुभव से कह रहे हो ?"

"चाहे बहुत अधिक न हो लेकिन थोड़ा-बहुत अनुभव जरूर है।"

"यह मैं जानती हूँ।"

रंजन को आश्चर्य हुआ।" कैसे जाना ? किसी ने कुछ कहा है क्या ?"

"किसी ने कुछ नहीं कहा है, लेकिन फिर भी मुझे मालूम है।"

"क्या मालूम है ?"

"मालूम है कि मेरे पहले भी कोई-न-कोई औरत तुम्हारी जिन्दगी में आ चुकी है।" उसके सीने से अपना चेहरा हटाकर उसकी ओर ताकते हुए मैंने मुसकराकर कहा, "और यह भी मालूम है कि उससे तुम्हारी काफी घनिष्ठता रही है। बोलो, ठीक है न ?"

मैंने स्पष्ट तौर पर देखा, उसके चेहरे पर एक बदलाव आ गया। वह बुझा हुआ और चिन्तित जैसा दीखने लगा। वह कुछ कहे कि इसके पहले ही मैंने कहा, "इतने दूर देश में इतने लम्बे अरसे तक एकबारगी अकेला नहीं रहा जा सकता और यह मैं महसूस करती हूँ।"

"दैट्स राइट रुणा। लोनलीनेस किसे कहते हैं, विदेश में रहे बगैर कोई इसे समझ नहीं सकता है। कुरसी खींचकर बैठते हुए रंजन ने कहा, "रुणा, गेट मी ए ड्रिंक।"

मैंने शेरी की बोतल खोल, उसमें से थोड़ा-सा तरल पदार्थ उसके गिलास में ढाल दिया। "तुम क्या बहुत टायर्ड हो ?"

वह उदास हँसी हँसकर बोला, "टायर्ड तो जरूर हूँ। ये लोग साले जानवर की तरह खटाने के बाद पैसा देते हैं और कलकत्ते में लोग सोचते हैं कि मैं आसानी से हजारों रुपया कमाता हूँ।"

उसके निकट खड़ी हो उसके सिर को सहलाते हुए मैंने कहा, "बात तो ठीक ही है।"

शेरी के गिलास से घूँट लेकर रंजन बोला, "इतनी आसानी से पैसा कमाता हूँ इसीलिए तो चिट्ठी आती है, यह दो, वह दो।"

"यह सब बात रहने दो। जितना कर सकते हो, उतना ही करो।"

"देना मैं चाहता हूँ। सबको देना चाहता हूँ मगर कितनी तकलीफ से पैसा कमाता हूँ, यह बात क्या कोई एक बार भी नहीं सोचता ?"

"यहाँ की जिन्दगी कितनी कठिन है, इसका पता उन्हें कैसे चलेगा ? तुम्हारा बाहरी चेहरा देखकर ही वे लोग तुम्हारे बारे में धारणा बनाते हैं।"

उसने गिलास से दूसरा घूँट लिया। "तुम तो अभी-अभी आयी हो। तुम्हारे आने के पहले शाम बिताने के लिए मैं छटपटाता रहता था। इसके अलावा साल-दर-साल इस तरह गुजारना सचमुच ही बड़ा तकलीफदेह है।"

"मुझे यह मालूम है।"

"सच कह रहा हूँ रुणा, उस समय एक मित्र को, एक लड़की को अपने निकट पाने के लिए पागल जैसा हो जाता था।"

"अभी इन बातों को छोड़ो। तुम कपड़ा-लत्ता नहीं बदलोगे ?"

"बदलूँगा लेकिन इसके पहले तुम बताओ कि तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारे पहले कोई लड़की मेरी जिन्दगी में 'आ चुकी है।"

"सच कहूँ ?"

"कहो।"

"तुम अन्यथा तो नहीं लोगे ?"

"नहीं।"

"कलकत्ते में तुम्हारे साथ कई रात गुज़ारने के बाद ही मैं समझ गयी थी कि औरतों के मामले में तुम खासे अभिज्ञ हो।"

रंजन ने शेरी का गिलास रखकर मुझे बाँहों में भर लिया।

"रोअली ?"

"मैं झूठ नहीं बोलती।"

"तुमने वाकई पकड़ लिया था ?"

"हाँ ! मैं अच्छी तरह समझ गयी थी कि मैं तुम्हारी जिन्दगी में पहली लड़की की हैसियत से नहीं आयी हूँ।" मैंने हंसते हुए कहा, "मैंने तुम्हें अनभिज्ञ समझा था। बट यू हैड प्रफेशनल परफेक्शन···"

हाथ के गिलास को नीचे रखकर रंजन ने मुझे जबरन अपनी गोद में बिठा लिया और कहा, "तुम तो भयंकर लड़की हो।"

"सच कहा इसलिए मैं बुरी हो गयी ?"

"मैंने ऐसा नहीं कहा है।"

"फिर ?"

"तुम इतनी चालाक हो, यह मैं समझ नहीं सका था।"

मैंने उसकी गोद से उतर कर हाथ पकड़ते हुए कहा, "यह सब बात छोड़ो। अब उठो।"

उसने अपने हाथों में मेरे हाथ थाम लिये और मेरी ओर देखता हुआ बोला, "उठ रहा हूँ, लेकिन इसके पहले यह बताओ कि इतना कुछ समझने के बावजूद तुमने मुझसे कुछ क्यों नहीं कहा था ?"

'आइ डॉन्ट बिलिव इन पोस्ट मार्टम इक्जामिनेशन।" मैंने कहा। उसको खुश करने के लिए नहीं, बल्कि मैंने अपने मन की बात बतायी।

कलकत्ते में उसके साथ कई दिन बिताने के दौरान मन में कुछ सवाल जगने के बावजूद मैंने उससे कुछ नहीं कहा था। कह नहीं सकी थी। मैं मध्यवित्त घर की लड़की थी। शिक्षित होने के बावजूद मेरे मन में पति के बारे में थोड़ा-बहुत भय और संकोच छिपा हुआ था। उसके बाद लन्दन आकर कुछ दिन गुजारने के बाद जब कुछेक औरतों-मरदों से मिलने का मौका मिला तो नये-नये तजुर्बे हासिल हुए।

"इतना ड्रिंक क्यों करते हो भाई ?" बिना पूछे रह न सकी।

"क्यों नहीं करूंगा भाभी ?" प्रणव ने सवाल के बदले सवाल किया।

"नहीं, नहीं, इतना ड्रिंक मत किया करो।"

हम लोगों के घर के ठीक सामने ही प्रणव रहता था। मैं जब पहले-पहल लन्दन आयी तो प्रणव भी मेरी अगवानी में हवाई अड्डे पर पहुँचा था। उसके बाद हर रोज टेलीफोन कर मुझसे पूछता था, "भाभी जी, एनी प्रोब्लॅम ?"

"तुमने वक्त पर टेलीफोन किया है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"रसोई पकाने-पकाते एकाएक गैस बन्द हो गयी।"

छह पेनी का सिक्का है ?

"जरा थामे रहो, देखती हूँ।" टेलीफोन रखकर छह पेनी का एक सिक्का ले आयी, "हाँ भाई, है।"

"गैस पाइप के एक बक्से के अन्दर डाल आयी हो ?"

"हाँ-हाँ, एक बक्सा है।"

"इस बक्से के ऊपरी भाग में सिक्का डालने की एक जगह है। उसके अन्दर छह पेनी का सिक्का डालकर चाबी घुमाते ही गैस फिर से आने लगेगी।"

"तुम क्या बहुत अधिक व्यस्त हो ?"

"नहीं।"

"तो भाई फिर जरा थामे रहो। मैं सिक्का डालकर देखती हूँ कि गैस आती है या नहीं।"

सिक्का डालकर चाबी घुमाते ही गैस का आना शुरू हो गया।

इसी तरह के छोटे-मोटे कामों में प्रणव मेरी भरपूर सहायता करता था। स्वेच्छा से, हँसते-हँसते। रफ्ता-रफ्ता एक दिन मैं इस नतीजे पर पहुँची कि उस पर शासन करने का अधिकार मुझे मिल गया है। ऐसा न हो तो कोई कह सकता है कि इतना शराब मत पियो ?

"मालूम है, मैं क्या काम करता हूँ ?"

"नहीं।"

"मैं ब्रिटिश रेलवेज के मालगोदाम में काम करता हूँ।"

"सच ?"

"हाँ।" मेरी ओर देखकर प्रणव मुसकराया। दोनों हाथ मेरे चेहरे की ओर बढ़ाकर बोला, "मेरे हाथ देखकर तुम्हारी समझ में आ रहा है कि मैं क्या काम करता हूँ ?"

समझ लेने के बावजूद मैंने कुछ भी नहीं कहा।

"इन प्लेन वर्ड्स आइ एम ए कुली। दिन-भर इतना खटना पड़ता है कि शाम को जरा···"

"ऐसा हो तो भी इतनी क्यों पीते हो ?"

"मैं श्रीरामपुर के मुखर्जी परिवार का लड़का हूँ। हम लोगों के घर में आज भी दुर्गा पूजा होती है। श्रीरामपुर स्टेशन में उतरकर मुखर्जी निवास के बारे में कहते ही कोई भी रिक्शावाला वहाँ तक ले जायेगा।" प्रणव के चेहरे पर एक अजीब मुसकराहट तिर आयी। "और उसी परिवार का लड़का होकर मैं विलायत में कुलीगीरी का काम कर रहा हूँ।"

वह अन्दर ही अन्दर एक प्रकार की यातना का शिकार है, यह मैं महसूस करती थी। धीरे-धीरे उसने मुझे सारी बात बतायी थी।···

"जानती हो भाभी, मेरे मँझले चाचा के कोई सन्तान न थी। मँझले चाचा और चाची ने ही मेरा लालन-पालन किया है। माँ-बाबूजी से मैंने कभी किसी चीज की फरमाइश की हो, ऐसा याद नहीं आता। स्कूल का वेतन, पूजा का कपड़ा सब कुछ मँझली माँ देती थी। मैं जितना ही बड़ा होता गया उतना ही मंझले चाचा और मँझली माँ के निकट आता गया। उसके बाद एक दिन हम लोगों का सम्मिलित परिवार टूट गया। दुर्गा मंडप के अतिरिक्त सभी जगह बँटवारे की दीवार खड़ी हो गयी। माँ ने फतवा जारी किया—मँझले चाचा और मँझली माँ से इतना घुलने-मिलने से काम नहीं चलेगा।…"

एक ही निःश्वास में यह सब कहकर प्रणव खामोश हो गया। "जानती हो भाभी, मैं घर छोड़कर भाग आया। दिन का वक्त किसी तरह कट जाता है मगर उसके बाद वक्त गुजारना मुश्किल हो जाता है।"

"तुम स्वदेश नहीं गये हो ?"

"सिर्फ एक बार गया था।"

"फिर क्यों नहीं गये ?"

"स्वदेश जाने के लिए बहुत पैसे की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा इच्छा भी नहीं होती है।"

"मँझली माँ को भी देखने की इच्छा नहीं होती है ?"

"मँझली माँ चल बसी हैं।"

प्रणव ने यद्यपि हँसते हुए कहा लेकिन मैं चौंक उठी, "मँझली माँ नहीं हैं ?"

"नहीं।"

उसके बाद मैं उस पर शासन नहीं कर सकी। किसी भी हालत में यह नहीं कह सकी कि इतना ड्रिंक मत किया करो भाई।

"क्या हुआ भाभी ? तुमने अब बोलना बन्द क्यों कर दिया ?'

मैंने सिर झुकाकर दबे स्वर मे कहा, "अब क्या कहूँ भाई ?"

"जानता हूँ कि कहने को अब तुम्हारे पास शब्द नहीं हैं।"

छह महीना बीतते न बीतते प्रणव अचानक लन्दन से गायब हो गया। बहुतों से पूछताछ की परन्तु कुछ पता न चला। तीनेक महीने

वाद कनाडा से मेरे पास एक पत्र आया।

…हाथ की लिखावट देखकर पहचान नहीं पाओगी कि मैं कौन हूँ। मैं प्रणव हूँ। कनाडा चला आया हूँ। यहाँ भी आने पर मैनेजर की नौकरी नहीं मिली। एक इलेक्ट्रॉनिकल कारखाने में अनस्किल्ड लेवरर की हैसियत से काम कर रहा हूँ। लन्दन में वास करने के दौरान बीच-बीच में स्वदेश जाने के लिए, माँ-बाप, भाई-बहन और मँझले चाचा से मिलने के लिए मन बेचैन हो उठता था। लेकिन बँटवारे की बात ध्यान में आते ही जाने की इच्छा नहीं होती थी। चूँकि लन्दन से भारत बिलकुल निकट लगता था इसलिए और अधिक दूर चला आया। क्या अच्छा नहीं किया ?

छोटे से पत्र की अन्तिम पंक्ति में लिखा था—अच्छा भाभी, अगर कभी फिर मुलाकात हो जाये तो मैं तुम्हें ही मँझली माँ कहकर पुकारूँगा। तुम झुंझलाओगी तो नहीं ?

मुझे अच्छी तरह याद है, पत्र पढ़कर मैं कई घण्टे तक स्तब्ध बैठी रही। उसी रात मैंने रंजन से कहा, "एक बात पूछूँ ?"

"पूछो।"

"तुम अन्यथा तो नहीं लोगे ?"

"अन्यथा क्यों लूँगा ?"

थोड़ी देर तक खामोश रहने के बाद मैंने पूछा, "मुझे बच्चा नहीं होगा ?"

रंजन ने हँसते हुए मुझे बाँहों में भर लिया, "शादी हुए अब भी एक वर्ष नहीं हुआ। इतनी हड़बड़ी क्यों ?"

"बहुत देर में बच्चा होना क्या अच्छा रहता है ?"

"आज अचानक यह सब विचार तुम्हारे दिमाग में क्यों आया है ?"

"लगता है, एक बच्चा हो जाता तो अच्छा रहता।"

"होगा। जरा धीरज धरो।"

मनुष्य के मन का पता लगाना कठिन काम है। बाहर से समझ में नहीं आता कि किसके मन में कौन-सा दुःख छिपा हुआ है। आदमी के अच्छे या बुरे होने का कारण रहता है। शैशव में कोई आदमी बुरा नहीं रहता। तरह-तरह के कारणों से वह बुरा हो जाता है। बुरा होना पड़ता है इसलिए बुरा हो जाता है।

लन्दन के बंगाली समाज में विजया चौधरी के बारे में आलोचना-प्रत्यालोचना चलती रहती है। दस बंगाली आपस में मिलते ही विजया के संबंध में चर्चा करने लगते हैं। बंगाली चाहे स्वदेश में रहे या विदेश में, उसके चरित्र में बदलाव नहीं आता है। लन्दन के बंगालियों को कालीवाड़ी की स्थापना करने पर दलबन्दी करने का मौका नहीं मिला इसलिए वे सरस्वती और दुर्गापूजा में दलबन्दी करने लगे। पूजा के कारण दो-चार महीने तक राजनीति चलती है लेकिन वर्ष के बाकी समय ?

शुरू में बंगालियों के घर पर दावत में जाती तो दूर से ही विजया चौधरी की आलोचना मेरे कानों में आती थी। कुछ सुनती थी और कुछ सुन नहीं पाती थी। लज्जा और संकोच के कारण किसी से कुछ नहीं पूछती थी। पूछने का आग्रह या आवश्यकता भी महसूस नहीं करती थी। इसके अलावा कलकत्ते की तरह दूसरे के मामले के संबंध में कुतूहल प्रदर्शित करना विलायत में सौजन्य का परिचायक नहीं समझा जाता है। यहाँ तक कि रंजन से भी कभी कुछ पूछा नहीं था।

दूर की फुसफुसाहट आहिस्ता-आहिस्ता स्पष्ट होने लगी—बिलकुल कानों के पास, मजलिस में बैठने पर। किलबर्न के असीम चौधरी कलकत्ते में शादी कर वापस आये थे और हमें दावत दी थी। वे किसी जमाने में हनसल में रहते थे इसलिए हम जाने-पहचाने लोगों को निमंत्रित किया था। इसके अलावा और तीस-चालीस बंगालियों को खाने पर बुलाया था। दो-चार के अलावा सभी लोग सपत्नीक आये थे। मिस्टर चौधरी से रंजन की मित्रता रहने के बावजूद मैं कभी उसके किलोबर्न के मकान में नहीं गयी थी। छोटा-सा दोमंजिला भवन। अन्दर घुसते ही दाहिनी ओर लिविंग रूम और बायीं ओर डाइनिंग रूम और किचेन। ऊपर दो बेडरूम और बाथरूम। मकान के अन्दर जाते ही पता चल जाता है कि असीम चौधरी कलाकार हैं।

उन लोगों ने दरवाजे के सामने ही हम लोगों का स्वागत किया। मिस्टर चौधरी ने हम दोनों की ओर सरसरी निगाह से देखा और उसके बाद पत्नी की ओर निगाह ले जाकर कहा, "मनीषा, आप लोग हैं हनसल के रंजन और मिसेज रुणु···।"

हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए मनीषा बोली, "समझ गयी। अब कहने की जरूरत नहीं।"

शुरू में शराब का दौर चला, उसके बाद डिनर। हर व्यक्ति के हाथ में ह्स्की का गिलास है। दो-चार औरतों के हाथ में भी ह्विस्की का गिलास। बाकी औरतों के हाथ में शॉफ्ट ड्रिंक या बीयर। नीचे के दोनों कमरों में मेहमान लोग गपशप कर रहे हैं। दो-चार व्यक्ति असीम चौधरी की इसलिए प्रशंसा कर रहे हैं कि उन्होंने मकान खरीदने के बाद शादी की है। मनीषा पर प्रशंसा की बौछार हो रही है, "तुम्हारी जैसी युवती को प्यार कर असीम इतने दिनों तक अकेले कैसे रह रहा था ?"

आरतिदी की बात पर मनीषा हँसती है। कहती है, "सचमुच ही अकेले था ?"

"कलाकार आदमी ठहरा। स्टूडियो के अन्दर क्या करता था, यह कहना मुश्किल है। तब हाँ, मेरे जैसे जासूस की निगाह में वैसी कोई बात नहीं आयी थी।"

मनीषा प्रसन्न होकर उत्तर देती है, "आपकी निगाह में वैसी कोई बात नहीं आयी है तो मेरे लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

अधीर मित्र ने अचानक आरतिदी के कान में जरा जोर से ही कहा, "मिसेज चौधरी भी आर्टिस्ट है।"

आरतिदी भी आनन्द से छलक उठी, "मनीषा तुम भी······"

"हाँ।"

"एक ही साथ पढ़ते थे ?"

"नहीं। मैं दो साल की जूनियर थी।"

मैं बगल में ही खड़ी हूँ और उन लोगों की बातें सुन रही हूँ। अचानक असीम चौधरी ने आकर मुझसे कहा, "यह क्या, आपका गिलास खाली क्यों है ?"

मैंने मुसकराते हुए कहा, "पूर्ण था, शून्य कर दिया है।"

"यह भी कहीं होता है ? हैव अनादर पेग।"

"जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"क्यों ?"

"मैं ह्स्की नहीं पीती हूँ।"

"पीती नहीं हैं, यह जानता हूँ। लेकिन आज थोड़ी-सी पीने से कुछ नहीं बिगड़ेगा ?"

"सो काइन्ड ऑफ यू, मगर मैं बिलकुल नहीं पीती।"

अब असीम चौधरी ने आरति से कहा, "ह्वाइ यू आर सो स्लो ?"

"मैं एक पेग से अधिक कब पीती हूँ ?"

"आज की दूसरे दिनों से तुलना नहीं करो आरतिदी।"

"तुम भाई, नयी पत्नी ले आये हो इसलिए तुम्हारी खुशियों का कोई अन्त नहीं है। लेकिन मैं तो तुम्हारे भैया की दया से पाँच बार मेटरनिटी वार्ड में भर्ती हो चुकी हूँ···"

मनीषा शर्म से अलग हटकर खड़ी हो गयी।

असीम चौधरी ने कहा, "भैया के जुल्म का इतिहास भूलने के लिए ही तो तुम्हें दो पेग पीना चाहिए।"

"मैं ह्विस्की पीकर बेहोश हो जाऊँ तो कोई मुझे उठाकर गाड़ी पर नहीं रख देगा।"

"किसने कहा ?"

"यह सम्मान भाई, विजया चौधरी के अलावा किसी को प्राप्त नहीं होता है।" अधीर मित्र ने अपनी राय जाहिर की, "उसे गोद में उठाकर गाड़ी पर रखना नहीं पड़ता है, बेडरूम ले जाना पड़ता है।"

मैंने सुना मगर बड़ा ही बुरा लगा। इस दुनिया में अकेली रहे तो कौन ऐसी औरत है जो बुरे रास्ते पर न चलने लगे ? कोई न कोई मर्द ही औरतों को बुरे रास्ते पर ले जाता है परन्तु ग्लानि का बोझ केवल औरतों को ढोना पड़ता है।

मजे की बात है कि आरतिदी जैसी औरतें ही औरतों की अधिक निन्दा करती हैं, उनकी बदनामी फैलाती हैं। औरतें ही औरतों की सबसे बड़ी शत्रु हुआ करती हैं।

अब मैं वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। जरा दूर हटकर चली गयी। उसके बाद घूम-घूमकर असीम चौधरी की पेन्टिंग देखने लगी। एकाएक मनीषा को आवाज सुनायी पड़ी, "क्या हुआ, आप चली क्यों आयीं ?"

चेहरे पर मुसकराहट लाकर मैंने कहा, "यों ही।"

"आप यों ही नहीं आयी हैं।"

"सच कह रही हूँ, यों ही चली आयी।"

"वे बातें आपको अच्छी नहीं लगीं। ठीक कह रही हूँ न ?"

मैंने एकाएक कहा, "मैं बहन, आरतिदी या मिस्टर मित्र की तरह

इस मुल्क की पुरानी बाशिन्दा नहीं हो पायी हूँ। इस तरह की चर्चा सुनने की अभ्यस्त नहीं हूँ।"

"आपने ठीक कहा है। मुझे भी सुनने में बुरा लग रहा था।"

"इस औरत के बारे में इतनी चर्चा होती है कि क्या कहूँ!"

"सच?"

"हाँ बहन।"

"आप उनसे परिचित हैं?"

"मैंने उसे देखा भी नहीं है।"

"अच्छा?"

"तब हाँ, उसके बारे में इतनी बातें सुनने को मिलती हैं कि जान-पहचान करने की तीव्र इच्छा होती है।"

मनीषा बोली, "ठीक है। एक दिन हम दोनों जाकर उससे जान-पहचान कर आयेंगी।"

"मुझे आपत्ति नहीं है।"

मनीषा मुझे बहुत ही अच्छी लगी। मैं कोई ज्योतिषी नहीं हूँ कि आदमी के भूत-भविष्य के बारे में जान जाऊँ और उसका इतिहास बता दूँ। कौन अच्छा है और कौन बुरा, यह कैसे बताऊं? अच्छा आदमी बुरा होता है और बुरा आदमी भी अच्छा निकल आता है। उससे परिचित होने पर अच्छा लगा। मन में कोई द्वन्द्व या जड़ता हो, ऐसा नहीं लगा। जीवन में आगे बढ़ने के लिए सब कुछ जैसे अनायास ही प्राप्त हो गया हो। नदी की धारा केवल अपनी मलिनता दूर नहीं करती, अपने गंतव्य के दोनों ओर उपजाऊ मिट्टी लाकर बिखेर देती है। मनीषा भी बहुत कुछ वैसी ही है। अपने माधुर्य से लोगों से हेलमेल बढ़ा लेती है और जो लोग उसके समीप आते हैं उनके मन में प्यार की उर्वर मिट्टी बिखेर देती है।

बेकारलू लाइन की ट्यूब पकड़ पिकाडिली सर्कस आने के समय खासी अच्छी भीड़ थी। दोनों में से किसी को बैठने की जगह नहीं मिली, खड़े-खड़े आना पड़ा। पिकाडिली सर्कस आने पर हनसल की ओर जाने वाली पिकाडिली लाइन की ट्यूब में भीड़ नाम मात्र को भी न थी। मैं और रंजन अगल-बगल बैठे थे और गपशप कर रहे थे। दो-

चार बात के बाद ही मैंने कहा, "आज तुमने जरूर ही भरपूर ड्रिंक किया होगा।"

"ओनली फोर पेग्स।"

"चार बड़े-बड़े पेग को 'ओनली' कह रहे हो?"

"मैंने बड़े-बड़े पेग लिये हैं, यह तुमने कैसे जाना?"

"तुम छोटे-छोटे पेग पीने वाले आदमी ही नहीं हो।"

रंजन हँसकर हामी भरता है।

मैंने उसे डराया, "अब ज्यादा ड्रिंक करोगे तो अपने पास सोने नहीं दूँगी।"

"ज्यादा डराओगी तो यहीं तुम्हें बाँहों में भर लूँगा।"

"सो तुम कर सकते हो।"

मेरी आँखों से आँख टिकाकर रंजन ने एकाएक उत्तेजना के साथ कहा, "कर सकते हो का मतलब? लेट नाइट ट्यूब से जाने के दौरान कितने ही दिन…"

थोड़ी-बहुत पीने से देह की थकावट दूर होती है, मन-मिजाज और शरीर में स्फूर्ति आती है। ज्यादा पीना हालांकि बुरा है लेकिन उसमें एक गुण है। ज्यादा पीने से बहुत सारी गोपनीय बातें प्रकट हो जाती हैं। भद्र, सभ्य और स्वाभाविक मनुष्य अभिनय करता है; पियक्कड़ अभिनय करना नहीं जानता।

रंजन अपना वाक्य समाप्त नहीं कर सका।

लहमे भर में मेरे पूरे शरीर में, नस-नस में आग लहक उठी। सिर्फ रंजन के प्रति ही नहीं बल्कि रंजन की पत्नी होने के नाते अपने प्रति भी सख्त घृणा उभर आयी। हाथों में यद्यपि शंख की चूड़ियाँ नहीं थीं परन्तु माँग में सिंदूर था और मन में संस्कार था। स्वयं को मैंने संयत किया। कहा, "तुम्हें नये सिरे से कहने की जरूरत नहीं। मैं जानती हूँ कि तुमने बहुतों के साथ बहुत कुछ किया है।"

भीड़ न रहने पर भी कम्पार्टमेन्ट में कुछ मुसाफिर थे। उन लोगों के सामने ही रंजन ने अपना एक हाथ बढ़ाकर मुझे अपने पास खींच लिया। "आइ एम सॉरी रुणा! मुझे क्षमा करो।"

पति यदि व्यभिचार करे तो बरदाश्त नहीं होता है, उसी तरह वह यदि क्षमा माँगे और खुद को छोटा बना ले तो यह भी अच्छा नहीं लगता। भारतीय महिलाओं के लिए पति अभिभावक और जीवन-

संग्राम का सेनाध्यक्ष है। पति ही सबसे निकट का मित्र और घनिष्ठतम सहचर है। उसके वक्षस्थल पर स्वयं को निढाल छोड़ देने में आनन्द मिलता है, तृप्ति मिलती है। लेकिन जब वह अन्याय करके क्षमायाचना करता है, सेनाध्यक्ष होने पर भी सबसे पहले पराजय स्वीकार कर लेता है तो उस समय वह अच्छा नहीं लगता। उसे प्यार करने का मन नहीं करता है। जो पति पत्नी की निगाह में बौना बन जाता है, नीचे उतर आता है, उससे नफरत ही की जा सकती है।

"क्या हुआ रुणा, तुमने मुझे क्षमा नहीं किया ?"

"मर्द होकर, पति होकर पत्नी से क्षमा माँगने में शर्म नहीं लगती ?" उसके चेहरे की ओर बिना देखे मैंने कहा।

"प्लीज रुणा !...."

मैंने विरक्ति के साथ कहा, "हाथ हटा लो।"

रंजन तब भी मुझे अपनी बाँह में लपेटे था। बोला, "तुम्हें प्यार नहीं करूँ ?"

सुना है, मेरी दादी की शादी तब हुई थी जब वह नौ साल की थीं और माँ जब तेरह साल की थी तब उसकी शादी हुई थी। छोटे पौधे की तरह उन्हें एक जगह से लाकर दूसरी जगह रोपने पर भी असुविधा नहीं हुई थी। संपूर्ण मन, प्राण और अनुभूति से उन लोगों ने पति को मन-मन्दिर में बिठा लिया था। लेकिन मैं ? हम लोग ? आज की लड़कियाँ ? स्कूल, कालेज और युनिवर्सिटी जाती हैं। पति को पाने के पूर्व ही हमारी देह, मन और जीवन में वसन्तोत्सव का आगमन हो जाता है। मन को छूकर माघ की ठंड, चैत की गरमी और सावन की धारा चली जाती है। मन की जड़, सूक्ष्म अनुभूति की अजस्र धारा बहुत दूर, दिशा-दिशा में बिखर जाती है। उसके बाद अचानक एक दिन कलकत्ता आकर उबटन लगाना पड़ता है, नये आदमी के हाथ में अनेक दिनों की जमा पूँजी की चाबी सौंप देनी पड़ती है। लेकिन मन ? बीते दिनों की शिक्षा-दीक्षा और आदर्श ? सपना ? अनुभूति ? पूरे तौर पर समर्पित करना नहीं हो पाता है। यह कठिन ही नहीं, असंभव है।

मैं केवल नये आदमी के पास नहीं आयी, नये देश में भी आयी। नये समाज और परिवेश में। शादी के बाद मुझे जो कुछ हस्तगत हुआ उससे मैं पूरे तौर पर अपरिचित थी। कलकत्ते की कितनी ही युवतियाँ अपने पति के मुँह के पास अपना मुँह नहीं ले जा पाती हैं यदि उनके

पति सिगरेट पीते हैं। और मैं ? पति को सुखी बनाने के लिए उसे शेरी की बोतल का उपहार देती हूँ। पति अगर व्हिस्की पीता है तो भी उसके गले में बाँह डालकर लेट जाती हूँ, उसे प्यार करती हूँ और उसका प्यार अंगीकार करती हूँ। विरोध नहीं करती हूँ, गुस्से में नहीं आती हूँ, दुःख का अनुभव नहीं होता है। मन हमेशा मानने को तैयार नहीं होता है तो भी उसे मना लेती हूँ। पति के विरुद्ध विद्रोह करने से वीरता का परिचय मिल सकता है लेकिन सुकून नहीं मिलता है।

सुन्दर, शिक्षित और आदर्शवान पति की घर-गृहस्थी का बोझ उठाने के लिए आने पर धीरे-धीरे पता चला कि पति इंजीनियर नहीं है, बर्लिन युनिवर्सिटी का ग्रेजुएट होना तो दूर की बात, किसी पॉलिटेकनिकल में भी कभी शिक्षा ग्रहण नहीं की है। लेकिन मैंने इस संबंध में कभी कुछ नहीं कहा। जान-सुनकर ही नहीं कहा। सोचा था, कहने से लाभ ही क्या है ? बल्कि हम लोगों के बीच की दूरी बढ़ जायेगी। उसके मन में द्वन्द्व छिड़ जायेगा। जान चुकी हूँ कि उसके एकाकी जीवन में क्षणिक प्रेम का ज्वार जगा था और उसके जीवन मे एक-दो युवतियाँ आ चुकी हैं।

अब लगता है, कुछ और भी इतिहास है जो अभी दबा हुआ है। असीम चौधरी की दावत में और दो-चार पेग व्हिस्की हलक के नीचे उतरता तो, हो सकता है कि इस ट्यूब में जाते-जाते और भी बहुत सारी बातों का पता चल जाता। नाटक की परिणिति और भी तेज गति से आगे बढ़ जाती।

प्रकृति की तरह मनुष्य के अन्दर भी बहुत सारे रहस्य छिपे रहते हैं। वह रहस्य, एक क्षण या एक दिन के परिचय में ही उद्‌घाटित नहीं होता। प्राणहीन, रसहीन, रूपहीन और माधुर्य विहीन मरु प्रान्तर में सूर्य की प्रथम रश्मि के स्पर्श से ही अँधेरा भाग जाता है। उसका पूर्ण, नग्न और बीभत्स रूप आँखों के सामने प्रकट हो जाता है। लेकिन और कहीं ऐसा नहीं होता। धीरे-धीरे कोहरे का अँधेरा भेदकर सूरज की रोशनी आगे बढ़ती है। प्रकृति का रूप आहिस्ता-आहिस्ता स्वयं को उद्‌घाटित करता है। एक प्रकृति ही का ग्रीष्म, वर्षा, शरत और हेमन्त काल मे अलग-अलग रूप रहता है। मनुष्य भी प्रकृति की सन्तान है। प्रकृति के स्नेह से ही उसका लालन-पालन होता है। यही वजह है कि उसका भी रूप और परिचय रहस्य के कोहरे से ढँका रहता है। चूंकि उसके अन्दर यह रहस्य

है। इसीलिए आदमी के प्रति आदमी में प्रेम प्यार और मोह हैं। यह रहस्य और यह मोह ही पति पत्नी के द्वैत जीवन का माधुर्य है।

मुझे बहुत देर तक गुमसुम देखने के बाद रंजन ने मुझे और अधिक निकट खींच लिया और बोला, "रुणा, मेरी ओर देखो।"

ट्यूब ट्रेन सुरंग-पथ से जा रही है। खिड़की के बाहर सब कुछ अँधेरा-अँधेरा जैसा लग रहा है। कुछ भी नहीं दीख रहा। फिर भी खिड़की से मैं उस अँधेरे की ओर निहारती रही। कहा, "बोलो, मैं सुन रही हूँ।"

"मेरी ओर देखो।"

"मुझे तो लगभग अपने सीने में जड़े हुए हो। फिर भी मन नहीं भर रहा है?"

"प्लीज रुणा, मेरी ओर देखो।"

मैंने अँधेरे से दृष्टि घुमाकर उस पर टिका दी। देखा, उसकी आँखें लाल और फीकी हैं। बहुत-कुछ सूर्य डूबने के पहले जैसी स्थिति है। अँधेरा सामने खड़ा है।

"बोलो, क्या कहना है?"

"तुम मुझसे नाराज हो?"

"नाराज क्यों होने लगी?"

"फिर क्या रूठी हुई हो?"

हँसी आती है। दबाकर नहीं रख पाती हूँ। "तुमसे रूठना?"

"पति से पत्नी रूठती नहीं है?"

"जो मान की रक्षा नहीं कर सकता उससे रूठना ही क्या?"

पिकाडिली सर्कस में ट्यूब में बैठने के बाद ग्रीन पार्क, हाइड पार्क कॉर्नर, नाइट्स ब्रिज बहुत पहले पार चुकी हूँ। और भी कई स्टेशन पीछे छूट गये है। ऐक्टन टाउन में गाड़ी बिलकुल खाली हो गयी। मैंने मजाक के लहजे में हँसते हुए कहा, "ट्रेन बिलकुल खाली हो गयी।"

रंजन भी मुसकरा दिया।

"क्या हुआ, हँस क्यों रहे हो?"

"तुम्हें प्यार करने में डर जैसा लग रहा है।"

"डर क्यों लग रहा है? कोई अपराध किया है क्या?"

"मालूम नहीं।"

"या फिर मालूम रहने के बावजूद बता नहीं रहे हो?"

रंजन ने खामोशी ओढ़ ली।

थोड़ी देर बाद ही हनसल ईस्ट में ट्रेन रुकी। हम नीचे उतरे। स्टेशन से निकलते हुए मैंने कहा, "एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"तुम्हारे मन में बेतरह द्वन्द्व छिड़ा रहता है।"

"शायद।"

"उन द्वन्द्वों को हट नहीं सकते ?"

मेरा हाथ थामे आगे बढ़ते हुए रंजन ने जरा सोचा।

"रुणा, मन के तमाम द्वन्द्वों को दूर करना बड़ा कठिन काम है।"

"नामुमकिन तो नहीं है न ?"

"तुम्हारे लिए चाहे नामुमकिन न हो मगर मेरे लिए भरसक नामुमकिन ही है।"

हनसल ईस्ट से हम लोगों के किंग्सले एवेन्यू निवास स्थान में पाँच मिनट से भी कम में पहुँचा जा सकता है। घर के सामने आने पर उसने पूछा, "अच्छा रुणा, मैं क्या तुम्हें प्यार नहीं करता हूँ ?"

"बेशक करते हो।"

"फिर····"

"फिर क्या ?

"लेकिन मैं जब तुम्हारे पास स्वयं को ले जाना चाहता हूँ तो तुम क्यों····"

"मैंने उसे बीच में ही टोका, "तुम क्या पूरी तरह मेरे पास आ सकते हो ?"

उस रात पहले ही लेट जाने के बावजूद रंजन बहुत देर तक सो नहीं सका। मैं भी करवट बदलकर लेटी रही। मैंने उसे जानने नहीं दिया कि मैं भी जगी हूँ। सवेरे नींद टूटने पर देखा, मैं उसे बाँहों में भरकर उसके सीने से चिपककर पड़ी हूँ। बिस्तर से उठने के पहले उसका चुम्बन लिए बगैर मैं रह न सकी।

"एक्सक्यूज मी।" मेरे बगल वाले अंग्रेज सहयात्री ने मेरी ओर देखते हुए मुसकराकर कहा, हिथरो एयरपोर्ट तो दूर की बात, हम ब्रिटेन के सरहद तक पार कर चुके हैं। आप सीट-बेल्ट नहीं खोलिएगा ?"

हवाई जहाज की खिड़की से देखा, हम स्वच्छ नीले आकाश में तैर रहे हैं। दूर या पास कहीं धुंध और कोहरा नहीं है। ब्रिटेन का आकाश हमेशा घूंघट से ढँका रहता है। गरमी में धुंध छायी रहती है, सरदियों

में कोहरा या पाला। यहाँ दूर-दूर तक निहारा नहीं जा सकता है। और हमारे देश में ? जितनी भी दूर तक दृष्टि जाती है, खुलापन नजर आता है। प्रकृति की दृष्टि जहाँ उदार और स्वाधीन है, वहाँ के लोगों का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण क्या संकुचित हो सकता है ? समझ गयी कि ब्रिटेन सचमुच ही पार हो चुकी हूँ और इंगलिश चैनल के ऊपर से उड़ रही हूँ। शर्मिन्दा होकर कमर का बेल्ट खोलते हुए मैंने कहा, "आइ एम सॉरी। तरह-तरह के विचारों में डूबे रहने के कारण भूल गयी थी।"

"दैट्स राइट। जितनी बार आपकी ओर देखता हूँ उतनी ही बार लगता है कि आप गहरे विचारों में डूबी हुई हैं।"

"आपको इसका अहसास हो रहा है ?" मैंने सीधे उसकी ओर ताकते हुए पूछा।

"दो-चार बार आपकी ओर ताकते ही स्पष्ट रूप में समझ गया कि आप सीरिअसली कुछ सोच रही हैं।"

"लगता है, बीच-बीच में आपका ध्यान खिच जाता था।"

"आप जैसी फेलो-पैसेंजर का खयाल नहीं रखूँगा ?" उन्होंने जोरों से हँसते हुए कहा।

मैंने भी हँसते हुए पूछा, इसका मतलब ?"

"यू डॉन्ट नो ?"

"मैं कैसे जानूँगी ?"

"इंडिया जाने के दौरान आप जैसी एक खूबसूरत इंडियन युवती मिल जाये तो खयाल नहीं रखूँगा ?"

मैं सिर्फ हँस देती हूँ, कुछ कहती नहीं हूँ।

एकाध मिनट तक चुप्पी रेंगती रहती है।

"आइ एम सॉरी। आपसे इतनी बातें की मगर अपना परिचय नहीं बताया। हाथ आगे की ओर करके बोले, "आइ एम जॉन वाल।"

मैंने भी अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया। उनसे हाथ मिलाया। "मुझे रुणु कहते हैं।"

एकाएक किसी से परिचय होने पर मैं सिर्फ अपना नाम ही बताती हूँ। शादी के पहले मैं बैनर्जी थी, शादी के बाद चैटर्जी हो गयी। मगर अब ? अब मैं क्या हूँ, यह मैं स्वयं भी नहीं जानती। रंजन मेरे जीवन से अलग हट गया है मगर तलाक अभी नहीं हुआ है। कहना उचित है

मिसेज रुणु। चैटर्जी कहने में नफरत होती है। कभी नहीं कहती हूँ। लन्दन के बंगाली समाज के बीच में अब भी मिसेज चैटर्जी के रूप में जानी जाती हूँ। दफ्तर और हेल्थ इंश्योरेन्स के कार्ड में भी लिखा है मिसेज रुणु चैटर्जी। तमाम नियम और कानून के मुताबिक मैं रुणु चैटर्जी होने के बावजूद मन ही मन आजाद हूँ। मैं पुनः मिस रुणु बैनर्जी हो गयी हूँ। एकबारगी अपरिचित समाज होता है तो मैं लोगों से यही कहकर अपना परिचय देती हूँ लेकिन अभी उन्हें सिर्फ अपना नाम ही बताया।

"ह्वाट रुणु ?"

"इंडियन नाम बहुत बड़ा होता है। इससे बड़ा नाम होने से आपको क्या याद रहेगा ?

लन्दन में क्या पढ़ रही हैं ?

"पढ़ाई कलकत्ते में ही हुई है।"

"लन्दन घूमने-फिरने आयी थी ?"

मैं लन्दन में ही रहती हूँ।"

"नौकरी करती हैं ?"

"हाँ।"

"आइल में खड़े होकर और मिस्टर वाल के सामने झुककर एक स्टुअर्ट ने एकाएक पूछा, "एनी ड्रिंक सर ?

मिस्टर वाल ने तत्क्षण कहा, "येस, ऑफकोर्स।"

"ह्वाट वुड यू लाइक सर ?"

स्टुअर्ट के द्वारा पूछने पर मिस्टर वाल ने मेरी ओर देखते हुए पूछा, "आप क्या पीजियेगा ? ह्विस्की ?"

मैंने धन्यवाद देते हुए कहा, "आइ डॉन्ट थिंग आइ नीड एनी।"

"ऐसा कहीं होता है ?"

स्टुअर्ट ने तत्क्षण कहा, "हैव समथिंग मैन ?

"क्या देने कहूँ ? ह्विस्की और जिन ?"

हवाई जहाज के मुसाफिरों को लंच देने के पहले ये लोग ड्रिंक सर्व करने आये हैं। वक्त ज्यादा नहीं है। बड़े ही व्यस्त हैं। बात करने या सोचने का अधिक अवकाश नहीं है। फिर भी मिस्टर वाल ने और कई बार अनुरोध किया। हमारे आदेश के लिए स्टुअर्ट अधीरता से हमारी ओर ताक रहे हैं। मैं बहुत अधिक शराब न पीने पर भी दाँव-पेंच में

पीती हूँ। बिना पिये रह नहीं पाती। कभी अपनी इच्छा से और कभी-कभी श्रीकान्त वगैरह की इच्छा के कारण। मैंने मन ही मन बहस की। नहीं, अब नहीं पिऊँगी। चाहें जो हो, स्वदेश जा रही हूँ। यह सब आदत न रहना ही अच्छा है। यह सब आदत रहेगी तो वहाँ असुविधा का सामना करना होगा। मुसीबत में फँस जाऊँगी। अगर स्वदेश जाकर वहीं रुकना पड़े? यदि प्याली के मौसेरे भाई विवेक से मुलाकात हो जाये? यदि वह मुझे फिर लन्दन न लौटने दे? मेरे सम्बन्ध में यदि उसके मन में कोई सपना पल रहा हो तो? वह जो बात मुझसे नहीं कह सका था, वह बात अगर इस बार कह दे तो? फिर क्या मैं लन्दन लौट सकूँगी? दुबारा सरदियों की रात में, बर्फ से आच्छादित शाम में श्रीकान्त और मैं""

"मैन, शुड यू लाइक जिन एण्ड टॉनिक?"

स्टुअर्ट की बात सुनकर मैंने जवाब दिया, "येस।"

मिस्टर वाल ने हँसते हुए कहा, "चूँकि मैं इण्डिया जा रहा हूँ इसलिए इनकी पसन्द के मुताबिक मुझे भी जिन और टॉनिक दीजिये।"

मैंने लगे हाथ उन्हें धन्यवाद दिया।

स्टुअर्ट ने जैसे ही दो गिलास में जिन और दो कन्टेनर में टॉनिक ढालकर आगे बढ़ाया, हम दोनों ने एक ही साथ पर्स से एक-एक पौंड का नोट बाहर निकाला। मिस्टर वाल ने बायें हाथ से मेरा हाथ हटाकर कहा, "नो, नोट यू।"

एयर होस्टेस ने उनके हाथ से जैसे ही नोट लिया, मैंने कहा, "आप क्यों दे रहे हैं?"

एयर होस्टेस उन्हें प्राप्य सिक्का देकर चली गयी। मिस्टर वाल ने कन्टेनर से टॉनिक ढालकर एक गिलास मेरी ओर बढ़ा दिया, "हैव इट।"

मैंने गिलास उठाकर कहा, "चीअर्स!"

"चीअर्स!"

आदमी के चलने का रास्ता बड़ा ही अजीब होता है। हर पग पर क्या रहस्य छिपा है, क्या अनहोना घट सकता है, कोई नहीं जानता। कुछ अनहोनी, अप्रत्याशित घटनाएँ सबके जीवन में घटित होती हैं। कोशिश करने से भी उनसे छुटकारा नहीं पाया जा सकता है। न तो प्याली को उनसे छुटकरा मिला है और न ही मुझे या श्रीकान्त को।

अचानक एक रात टेलीफोन की आवाज से नींद टूट गयी। टेली-फोन का रिसीवर कान के पास ले जाते ही श्रीकान्त की आवाज सुनायी पड़ी, "तुम क्या सो रही थीं ?"

हाँ।"

"इतनी जल्दी ?"

"इतनी जल्दी का मतलब ? कितना बज रहा है ?"

"साढ़े बारह।"

"साढ़े बारह बजे सोऊँगी नहीं ?" मुझे मालूम था कि वह दफ्तर के काम से कई दिनों के लिए लन्दन से बाहर गया हुआ था। इसलिए मैंने पूछा, "कब लौटे ?

"कब लौटे का मतलब ?"

शायद वह और कुछ कहता मगर मैंने उसे वह मौका नहीं दिया।

"आज लौटे हो या कल ही लौटे थे ?"

"अभी विक्टोरिया स्टेशन से आते ही तुम्हें टेलीफोन कर रहा हूँ।"

"सच ?"

"सच कह रहा हूँ, अभी-अभी वापस आया हूँ।"

"खाना खा चुके हो ?"

श्रीकान्त हँस दिया। बोला, "नहीं।"

"खाना खा लो। इसके बाद कब खाओगे ?"

"रसोई पकाने लायक घर में कोई सामान नहीं है।"

"फिर ?" मैं चिन्तित स्वर में पूछती हूँ।

श्रीकान्त ने निर्विकार भाव से कहा, "तुम्हारे यहाँ जाऊँ तो खाने को कुछ दोगी ?"

"तुम अगर इतनी रात में इतनी दूर आ सको तो फिर मैं खाना जरूर दूँगी।"

"आइ विल बी एट योर प्लेस विदिन हाफ एन ऑवर और सो।"

श्रीकान्त सचमुच ही एकाध घण्टे के बीच आ धमका। मांस बना हुआ था। सिर्फ दो मुट्ठी चावल पकाने में कितनी देर लग सकती है ? आते ही वह खाना खाने बैठ गया। खाना खत्म होने के बाद बोला, "इस लन्दन शहर में मैं सैकड़ों औरतों से परिचित हूँ मगर तुम्हारे

अतिरिक्त किसी को टेलीफोन नहीं कर सका। ऐसा क्यों, बताओ तो सही।"

"इस सवाल का जवाब क्या दूँ?"

"दे नहीं सकती हो?"

"सोचकर नहीं देखा है।"

"तुम्हें इस सवाल का जवाब मालूम है।"

"फिर बता ही दो।"

श्रीकान्त ने हँसते हुए एक बार मेरी ओर देखा। उसके बाद बोला, "सचमुच जोरों की भूख लगी थी। इसके अलावा तुम्हें देखने को मन छटपटा रहा था।"

"इतनी रात में शरारत मत करो।"

उसने गम्भीर होकर कहा, "सच कह रहा हूँ रुणु, मैंने कभी नहीं चाहा है कि एक युवती के प्रति मेरे मन में कोई दुर्बलता रहे।" श्रीकांत ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "मेरी माँ मरने के बाद....."

"तुम्हारी माँ जीवित नहीं है?"

"नहीं।"

"माँ के मरने के बाद क्या हुआ?"

"औरतों के प्रति पिताजी में इतनी दुर्बलता देखने-सुनने को मिली कि अन्ततः बी० एस-सी० परीक्षा देकर ही स्वदेश त्याग दिया। मगर अब देख रहा हूँ, पिताजी की तरह मुझमें भी दुर्बलता आने लगी है।"

यह बात सुनने में बुरी लगी। पूछा, "इसका मतलब?"

श्रीकान्त कुरसी छोड़कर मेरे पास चला आया और कान में फुस-फुसाते हुए कहा, "इतनी रात में तुम्हारे हाथ की रसोई न खाने से जिसका पेट नहीं भरता है, जिसे देखे बगैर नहीं रह पा रहा था उसको भी उस दुर्बलता की बात..."

मैंने झट से अपना मुँह अलग हटा लिया और कहा, "तुममें दुर्बलता हो सकती है मगर मुझमें कोई दुर्बलता नहीं है।"

उसने हँसते हुए मेरे चेहरे को अपने हाथों में थामकर कहा, "तुममें मेरे बनिस्बत अधिक दुर्बलता न होती तो मेरे लिए इतनी रात में झमेला बरदाश्त करतीं?"

लन्दन आने के दौरान मैं कितने असमंजस और संकोच के साथ बैठी थी! उस समय मेरी बगल में दो विदेशी महिला यात्री थीं। लेकिन

औरत होने के बावजूद मैं उनसे सहजता के साथ बातें नहीं कर सकी थी। शराब पीना तो दूर की बात, भूख लगने पर भी भर पेट खाना नहीं खाया था। एक बार टॉयलेट इसलिए गयी थी कि बगैर गये कोई उपाय न था। लेकिन डरते-डरते गयी थी। कितनी सतर्कता के साथ कमोड का उपयोग किया था! अब कमोड का उपयोग करने की इतनी अभ्यस्त हो गयी हूँ कि कलकत्ते के पाखाने की बात सोचते ही चिन्ता होने लगती है। सारा अभ्यास बदल गया है। बाथ-टब में अपने शरीर को डुबो कर स्नान करने के बदले बाल्टी से मग में पानी भर-भर कर स्नान करना होगा। असुविधा होने के बावजूद किसी से कह नहीं पाऊँगी। खान-पान, आहार-विहार इत्यादि की आदत में बदलाव आ गया है। रात में साड़ी-ब्लाउज-साया पहनकर सोने से नींद नहीं आयेगी लेकिन सिर्फ पैन्टी पर नाइटी पहनकर सोऊँ तो लोग आलोचना करेंगे। सबसे बड़ी बात है कि मैं बदल गयी हूँ। मेरी विचार-धारा, जीवन-प्रणाली, दृष्टिकोण—सब कुछ में आमूल परिवर्तन आ गया है। इस हवाई जहाज से कितने ही भारतीय जा रहे हैं फिर भी मैं बेझिझक मिस्टर वाल के पास बैठकर गपशप कर रही हूँ और जिन पी रही हूँ। थोड़ी-सी जिन पीना क्या कोई गुनाह है?

"आप क्या पहले पहल भारत जा रहे हैं?"

"नहीं, इसके पहले भी एक बार जा चुका हूँ।"

"कैसा लगा था?"

"सम्मति देने लायक अनुभव मेरे पास नहीं है, तब हाँ, जितना कुछ देखने का मौका मिला, दिलचस्प ही लगा।"

"पिछली बार आप इण्डिया में कितने दिनों तक थे?"

"तकरीबन छह सप्ताह।"

"कहाँ-कहाँ का चक्कर लगाया था?"

"ज्यादा से ज्यादा दिल्ली में ही था।"

"कलकत्ता नहीं गये थे?"

मिस्टर वाल ने जिन के गिलास से एक घूँट लेकर मुसकराते हुए पूछा, "यू बिलांग टु कैलकाटा?"

"हाँ।"

"कैलकाटा के बारे में पूछने से ही यह समझ गया था।"

हँसती हूँ। जिन की हल्की-हल्की चुस्कियाँ लेती हूँ। यात्रियों का हल्ला शोर-गुल सुनती हूँ। एयर होस्टेस-स्टुअर्ट की भाग-दौड़ देख रही हूँ। हम दोनों फिर गपशप करने लग जाते हैं। मिस्टर वाल ने पूछा, "कैलकाटा के अलावा इण्डिया की कोई दूसरी सिटी आपको अच्छी लगती है ?"

"आइ एम सॉरी, मैंने कोई दूसरा शहर नहीं देखा है।"

"रीअली ?"

"वास्तव में नहीं देखा है।"

"होली डे में बाहर नहीं जाती थीं ?"

"गयी हूँ, तब हाँ, कलकत्ते के आसपास की जगहों में ही।"

"यह प्लेन बम्बई होकर दिल्ली जा रहा है, आप कहाँ उतरिएगा ?"

"दिल्ली।"

"मैं भी दिल्ली ही जा रहा हूँ।" मिस्टर वाल ने जिन का आखिरी घूँट गले के नीचे उतार कर पूछा, "यू विल हैव अनादर ड्रिंक ?"

"नो, थैंक यू।"

"हैव वन मोर ?"

"मैं ज्यादा ड्रिंक नहीं करती हूँ।"

"जिन तो ह्विस्की नहीं है, फिर इसमें आपत्ति की कौन-सी बात है ?"

"आइ थिंक यू गो अहेड और मैं ही आपको पिलाऊँगी।"

"यह नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

"मैंने ही आपसे पहले अनुरोध किया था।"

सामाजिक नियम-कानून की पेचदगी के कारण मुझे हार स्वीकार करनी पड़ी। मिस्टर वाल ने और दो अदद जिन और टॉनिक देने कहा।

"चीअर्स।"

"चीअर्स।"

मैंने पूछा, "लन्दन के किसी भारतीय से आप परिचित हैं ?"

"पिछली बार भारत से लौटने के बाद एक डॉक्टर से जान-पहचान हुई थी, लेकिन कुछ दिनों बाद ही वे कनाडा चले गये।"

"तो फिर जान-पहचान दीर्घस्थायी नहीं हो सकी ?"

मिस्टर बाल ने दुबारा जिन का एक घूंट लिया। बोले, "रास्ते की जान-पहचान लंबे अरसे तक नहीं टिकती है। ठीक कह रहा हूँ न मिस रुणु ?"

जिन का गिलास होठों से लगाते ही मैं उनका संबोधन सुनकर चौंक उठी। किसी ने ऐसा नहीं कहा था। चमक उठना स्वाभाविक है। मैं कुछ कहूँ कि इसके पहले ही उनके मन में सन्देह जग उठा था। इसीलिए उन्होंने कहा, "आइ थिंक यू आर मिस रुणु ? इतनी जिल्दी आपने शादी नहीं की होगी ?"

एक ही साथ ढेर सारी जिन गले के नीचे उतारकर मैंने हंसते हुए कहा, "नहीं-नहीं, इतनी जल्दी शादी शुदा कैसे हो जाऊंगी ?"

मिस्टर बाल से यह कहकर मैं खुद भी चौंक उठी। लाख हो, हूँ तो शादी-शुदा ही। अभी पति मेरे पास नहीं है, न रहता है और न मैं उसे रहने दूंगी मगर लंबे-अरसे तक उसके साथ घर-गृहस्थी बसा चुकी हूँ। चाहे वह मेरी देह को क्षत-विक्षत न कर सका हो लेकिन मन को क्षत-विक्षत जरूर कर दिया है। पीड़ित, व्यथित और जर्जर बना दिया है। मेरे मन के अन्दर आग लगा दी है। मैं भले ही हँसती-बोलती हूँ, नौकरी करती हूँ, गपशप करती हूँ, घूमती-फिरती हूँ, थोड़ी-बहुत ह्विस्की या जिन पीती हूँ मगर हमेशा उस आग का उत्ताप महसूस करती हूँ। उस जलन से मुझे कभी मुक्ति नहीं मिलती है। केवल श्रीकान्त जब हँसी-मजाक करता है, जब वह तमाम सामाजिक भद्रता और सौजन्य का मुखौटा उतार कर मेरे पास आता है, अपने जानते मेरे सामने बहुत-कुछ दावा पेश करता है तब मैं बीते दिनों की तिक्तता और दाह भूल जाती हूँ। कलंकित पति की स्मृति भूल जाती हूँ।

यह सब मन की बातें हैं। बिलकुल मेरी निजी बातें। बाहर के विशाल समाज के लिए इसका कोई मूल्य या तात्पर्य नहीं है। जरूरत भी नहीं है। उन सबों के लिए मैं रंजन की पत्नी हूँ। मिसेज चैटर्जी। रुणु चैटर्जी। दफ्तर और हेल्थ इश्योरेन्स के कार्ड में यही मेरा परिचय है। लेकिन मैंने मिस्टर बाल को अपनी जीवन-कहानी का सबसे विचित्र संकेत दिया। लन्दन के जाने-पहचाने बंगाली समाज या कोई परिचित मर्द या परिचिता औरत सुन लेती तो हो सकता है कि मेरे संबंध में भी वे दोस्तमित्रों की मजलिस में, दावत-जलसे में या किसी सामाजिक मिलन के मेले में विजया चौधरी की तरह ही मेरी चर्चा करते।

बेंगाल इंस्टिट्यूट में विजया चौधरी को दूर से दुर्गा पूजा की अंजलि देते देखकर सान्याल भाभी ने मेरे कान में फुसफुसाकर कहा था, "इसे पहचानती हो ?"

"हाँ।" मैंने कहा।

"बताओ तो वह कौन है ?"

"वह विजया चौधरी है। चेलसी में···"

"तो फिर तुम पहचानती हो।" सान्याल भाभी ने अपनी छोटी-छोटी आँखों को धूर्त्त सियार की तरह एक ही सेकेण्ड के दरमियान घुमाकर पूछा, "वह किसके साथ आयी है, यह देखा ?"

"ध्यान नहीं दिया था। शायद अकेली ही आयी है।"

"वह अकेली आयेगी ? भारतीय नहीं मिलेगा तो कम से कम एक विदेशी को पकड़कर साथ ले आयेगी।"

मैं उदास हँसी हँस दी।

मेरी इस उदास हँसी से उन्हें और अधिक उत्साह मिला, "पहले उसकी शादी हो चुकी है, इस बात को वह स्वीकार ही नहीं करती।"

औरत और मर्द में एक जैसा गुण-दोष रहता है, रह सकता है, लेकिन दुनिया भर को सामाजिक व्यवस्था ऐसी विचित्र है कि औरतों के दुर्नाम और कलंक का ही प्रचार होता है। मर्द अपने महत्त्व का प्रचार करना जानते हैं, औरतें नहीं जानतीं। ऐसा औरतों का स्वभाव नहीं होता। लन्दन के ढेर सारे अखबारों में बीच-बीच में कॉल गर्ल की कहानी छपती है। उन औरतों के खिलाफ़ आलोचना-प्रत्यालोचना और निंदा की आँधी चलने लगती है। लेकिन जो महान् पुरुष उनका उपभोग करते हैं उनकी आलोचना इतने ज़ोर-शोर से नहीं होती है।

मैं और मनीषा सचमुच ही एक दिन विजया के घर पर गयी थीं। ट्यूब में बैठते ही मनीषा से पूछा, "तुम उससे क्या कहोगी ?"

"असीम के एक मित्र के यहाँ अचानक उससे जान-पहचान हो गयी थी। कहा था, "एक दिन मैं और तुम उसके घर जायेंगी।"

"उसने क्या कहा ?"

"कहेगी क्या ? बहुत ही खुश हुई। बार-बार आने का आग्रह करने लगी।"

"मैं तुम्हारे साथ जाऊँगी, यह कहा था ?"

"बेशक कहा था।"

"मेरे बारे में कुछ पूछा ?"

"पूछा, तुम भी नयी-नयी आयी हो क्या ?"

अतीत के इतिहास के संबंध में हम बेहद उदासीन हैं। कुछ साहब-सूबों से मामूली जानकारी प्राप्त हुई है मगर बहुत-कुछ जान नहीं सके हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी कलकत्ते में वास करने के बावजूद कितने लोगों को कलकत्ते का इतिहास मालूम है ? कितने लोग बता सकते हैं कि आज की लालदीघी के किनारे जी० पी० ओ० बिल्डिंग में ही पुराना किला था ? कितने ऐसे बंगाली हैं जो यह बता सकते हैं कि किस घर में बैठकर माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' काव्य की रचना की थी ? सत्यजित राय की 'पथेर पांचाली' फ़िल्म न देखी हो, ऐसे बहुत ही कम शिक्षित बंगाली होंगे। लेकिन मिर्जापुर के किस मेस में विभूति भूषण ने जीवन के महत्त्वपूर्ण दिन व्यतीत किये हैं, यह बात संभवतः कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर भी नहीं बता सकेंगे। जानने की जरूरत ही महसूस नहीं करते। माणिकतल्ला के बम-केस के मुजरिमों को कहाँ गिरफ्तार किया गया था, यह बात न जानने के बावजूद देश प्रेमी नेतागण क्रान्तिकारी बंगाल के एतिह्य के संबंध में निर्लज्ज की तरह भाषण देते हैं।

अंग्रेज अपने इतिहास के बारे में हाइड पार्क की सभा में भाषण नहीं देते मगर श्रद्धा के साथ सब कुछ याद रखते हैं। सभी न भी याद रखते हों तो भी पढ़े-लिखे लोग अवश्य ही याद रखते हैं। दुनिया के लोगों को याद करा देते हैं। सोलन स्क्वायर ट्यूब स्टेशन में उतरते ही मेरी आँखों के सामने चेलसी के बहुत दिनों की स्मृतियाँ तैरने लगीं। स्टेशन के सामने ही पिटर जोन्स की प्रसिद्ध दुकान है। इस दुकान के सामने का रास्ता ही किंग्स रोड है। द्वितीय चार्ल्स के व्यक्तिगत उपयोग के लिए इस रास्ते का निर्माण हुआ था। इसी रास्ते से वे जेम्स पैलेस से फुलहैम और हैमटन कोर्ट गये थे और नटी विनोदिनी के साहचर्य का उपभोग किया था। इसी मुहल्ले में सर टॅम्स मोर रहते थे और उनके यहाँ अष्टम हेनरी अड्डेबाजी करते थे। एडिसन, सर रोबर्ट वाल पोल्स, गे न्यूटन, सर हांनस सोलन के अलावा कितने ही विश्व-विख्यात लोगों ने चेलसी में ही जीवन के स्मरणीय दिनों को बिताया था। सोर हांनस सोलन के निजी संग्रह से ब्रिटिश म्युजियम का जन्म

हुआ था। मैं जानती ही कितना हूँ ? जो कुछ पढ़ा है उसमें से भी बहुत कुछ भूल गयी हूँ। तब हां, यह नहीं भूली हूँ कि चेलसी पेरिस चर्च में चार्ल्स डिकेन्स की शादी हुई थी। पहले दिन संभव नहीं हो सका था परन्तु बाद में विजया के साथ घूम-घूम कर बहुत कुछ देखा है।

चेलसी के रॉयल हॉस्पिटल की एक महिला डॉक्टर के दो कमरे वाले फ्लैट के एक कमरे में विजया रहती थी। मैं और मनीषा जैसे ही वहां पहुँचीं, उसने मुसकराते हुए हमारा स्वागत किया और अपने कमरे में ले गयी। कुछ कहने के पहले उसे ग़ौर से देखे बगैर रह नहीं सकी। उसके बारे में इतनी बातें सुन चुकी हूँ कि उसे गौर से देखने का लोभ सँभाल नहीं सकी।

"मेरी इतनी निन्दा सुन चुकी हैं कि लगता है, मुझे अच्छी तरह देखे बिना रह नहीं पा रही हैं ?" विजया ने हँसते हुए एकाएक सवाल किया।

मैं चौंक पड़ी। चाबुक की चोट लगी हो जैसे। स्वयं को संयत करने में कई सेकण्ड लगे। उसके बाद कहा, "नहीं-नहीं; ऐसी बात नहीं है।"

"मेरी निन्दा सुने बिना आप लन्दन में कैसे वास कर रही हैं ?"

मनीषा कुछ कहे कि इसके पहले ही मैंने कहा, "कितनी ही बात सुनने को मिलती हैं किन्तु उन पर क्या विश्वास किया जा सकता है ?"

विजया बोली, "आप भले ही विश्वास न करें मगर बहुतेरे व्यक्ति विश्वास करते हैं।" ज़रा चुप रहने के बाद फिर बोली, "जानती हैं, असली बात क्या है ? बहुत सारे भले लोगों की कमजोरी का मुझे पता है। इस लिए वे यह नहीं चाहते कि मेरे संपर्क में ज़्यादा आदमी आयें।"

मैं और मनीषा हंस दीं।

उस दिन तो नहीं, लेकिन बाद में जब हमारी घनिष्ठता में वृद्धि हुई, विजया ने हमें अपनी मन की बातें, दुःख का इतिहास और आदमी की नीचता की कहानी बतायी थी।

"जो लोग सामान्य हैं, जिन्हें अपने देश में कमोबेश सुख-शान्ति और मान-मर्यादा प्राप्त हुई है या प्राप्त हो सकती है, वे इस सुदूर देश में क्यों आयेंगे ?"

समझ गयी कि विजया ठीक ही कह रही है। मैं मौन रही।

"उस बूढ़े डॉक्टर विश्वास को पहचानती हो ?"

"जिन्होंने विजया सम्मेलन का सभापतित्व किया था ?"

"हाँ-हाँ, उसी बूढ़े के बारे में बता रही हूँ। वह कितना नीच है इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं।..."

"सच ? देखने से तो लगता नहीं है। बल्कि..."

"बल्कि अत्यन्त स्नेहशील जैसा लगता है, है न ?"

"हाँ।"

"स्नेहशील जरूर है, मगर युवती या अधेड़ औरतों के प्रति ही वह स्नेहशील रहता है।"

मैं हँस दी।

"मेरी बात सुनकर लोग हँस देंगे मगर मैं झूठ नहीं कह रही हूँ। बूढ़े की सरसता की बातें सुनना चाहती हो ?"

"तुम कहोगी तो जरूर सुनूंगी।"

"हैमस्टेड में एक दावत में शरीक होने पर रात काफ़ी गहरा गयी। डॉक्टर विश्वास ने कहा कि वे मुझे पहुँचा देंगे। मैं तुरन्त राजी हो गयी। होती क्यों नहीं ?"

"सो तो सही है।"

"हाइड पार्क कॉर्नर के पास आकर मुझसे पूछा : विजया वुड यू केअर टु हैव लिट्ल शैम्पन ?"

विजया हँस दी। बोली, "इतनी रात में शैम्पन पियूंगी ?"

अत्यन्त धीमी गति से गाड़ी चलाते हुए डॉक्टर विश्वास हँस दिये, "रात गहराये बिना शैम्पन में क्या मजा आता है ?"

"आज रहे। किसी दूसरे दिन देखा जायेगा।"

"किसी दूसरे दिन क्यों ? आज ही रहे।"

"रात काफी गहरा चुकी है। इसके अलावा मेरी जैसी साधारण बंगाली औरतें क्या ज्यादा ड्रिंक करती हैं ?"

"लन्दन में साढ़े ग्यारह-बारह बजे की रात क्या कोई रात है ? इसके अलावा यू आर नोट एन ऑडिनरी गर्ल।"

"मैं किस बात में असाधारण हूँ ?"

डॉक्टर बोस ने क्रमशः दो बार गाड़ी को घुमायी। तुम्हारे घर के पास आ गया हूँ क्या ?"

"रॉयल हॉस्पिटल से आगे बढ़ने पर थर्ड टर्न ऑन द राइट।"

"तुम क्या अकेली ही रहती हो ?"

"एक सहेली के साथ रहती हूँ मगर आज रात उसकी ड्यूटी है।"

"तुम्हारी सहेली कहाँ काम करती है ?"

"इसी रॉयल हॉस्पिटल में।"

"इज शी ए डॉक्टर ?"

विजया ने हल्की हँसी हँसकर जवाब दिया," येस, शी इज ए डॉक्टर।"

"तुम्हारी मित्र औरत ही है।"

उसने दुबारा हँसते हुए कहा, "आपके जैसा एलडरली बालक मित्र के रूप में मिल जाता तो एक साथ रह सकती थी।"

कुछ ही मिनटों के दौरान डॉक्टर विश्वास की गाड़ी विजया के घर के सामने आकर खड़ी हुई। डॉक्टर साहब ने पूछा, "शैम्पन की बोतल ले आऊँ ?"

"आज नहीं, अगले सप्ताहान्त में।"

"श्योर ?"

"श्योर।"

"फ्राइडे और सटरडे ?"

विजया ने हँसते हुए कहा, "यदि शैम्पन पिलाना चाहते हैं तो इट मस्ट बी फ्राइडे।"

"ठीक है। आइ विल पिक यू अप एट सेवन।"

"एग्रीड।"

"गुड नाइट।"

"गुड नाइट।"

इतना कहकर विजया चुप हो गयी।

मैंने पूछा, "बादवाले फ्राइडे में गयी थीं ?"

"बादवाले शुक्रवार को नहीं गयी मगर उसके बादवाले शुक्रवार को बिना गये रह नहीं पायी···।"

"क्यों ?"

"इस बीच दसेक बार टेलफोन करने के अलावा दो बार मेरे घर पर भी आये। इस पर कैसे नहीं जाती ?"

मैं हँस देती हूँ! कहती हूँ, "भूमिका रहने दो। असली बात बताओ।"

"उसके घर पर जाने पर एकाध घन्टे तक गपशप करने के दौरान

एक राउण्ड शैम्पन का दौर चल चुका था। मगर मिसेज विश्वास या उसकी लड़कियों पर नजर न पड़ने पर उनके बारे में पूछताछ की।

डॉक्टर विश्वास ने दाँत निपोर कर कहा वे लोग इण्डिया गये है।"

यह सुनते ही मैं घबरा गयी। फटी-फटी आँखों के देखते हुए पूछा, "इसके बाद ?"

"चूँकि रात गहराती जा रही थी इसलिए मैं बार-बार डिनर लेने की इच्छा प्रकट कर रही थी और वे बार-बार शैम्पन ऑफर किये जा रहे थे। मैं जितना ही ना-ना कर रही थी वे उतना ही अधिक दबाव डाल रहे थे। उन्होंने सोचा था, भरपूर शैम्पन पिलाकर नशे में चूर कर देंगे और मुझे अपना हम बिस्तर बनायेंगे। मगर मैं भी ठहरी विजया चौधरी ! हार माननेवाली औरत नही हूँ।"

डॉक्टर विश्वास के बारे मे कहते-कहते विजया का मुखड़ा ग्रेनाइट पत्थर जैसा कठोर हो गया। मैंने कोई सवाल नहीं किया। हिम्मत ही नहीं हुई। समझ गयी, लाख चेष्टा करने के बावजूद मिस्टर विश्वास का सपना अधूरा ही रह गया।

विजया ने जोरों से एक लंबी साँस ली और स्वगत भाषण के स्वर में बोली, "जानती हो रुणु, जिन्दगी में सिर्फ एक बार एक व्यक्ति के सामने हार माननी पड़ी थी।"

विजया के कारण मुझे बेहद तकलीफ का अहसास होता है। उसके बारे में सोचते ही मन उदास हो जाता है। जीवन में बहुत कुछ पाने के बावजूद कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकी। हालाँकि उसके पास क्या नही है। रूप, यौवन, अर्थ, यश प्रभाव—सब कुछ है उसके पास। लेकिन अन्ततः उसे क्या मिला ? दुर्नाम और कलंक। पासा खेलने पर युधिष्ठिर सब कुछ हार गये थे परन्तु पुनः उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया था। परन्तु विजया की तरह जो लोग अदृश्य के पासे के खेल मे हार गये हैं या हार रहे हैं, उन्हें क्या पुनः सब कुछ प्राप्त हो सकेगा ? और सब चाहे न मिले मगर मन में क्या स्वस्ति प्राप्त नही हो सकेगी, घर में शान्ति लौट सकेगी ?

विजया के चेहरे, चाल-चलन और बातचीत से पता चल जाता है कि वह हमारी जैसी साधारण मध्यवित्त परिवार की लड़की नही है। चाहे कोई कुछ कहे, आदमी के चेहरे पर उसके पारिवारिक एतिह्य की छाप रहती ही है। उसे किसी भी हालत में मिटाया नहीं जा सकता

है। लन्दन में बंगाली समाज के किसी व्यक्ति को उपवास या दरिद्रता की पीड़ा बरदाश्त नहीं करनी पड़ती। भारत के लखपतियों के बनिस्बत वे लोग अच्छा भोजन करते हैं। पेट के अन्दर थोड़ी-बहुत बीयर-ह्विस्की-जिन-ब्राण्डी-शेरी-शैम्पन जाती रहती है। ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट, रिजेन्ट स्ट्रीट की बड़ी-बड़ी दुकानों से कपड़े-लत्ते खरीदकर पहनते हैं, मगर फिर भी उन लोगों को देखते ही पता चल जाता है कि वे निम्न मध्यवित्त परिवार के पुरुष-स्त्री हैं। विजया जैसा पारिवारिक एतिह्य उनके पास नहीं है।

मैं स्वयं बदसूरत नहीं हूँ। बहुत से लोग मुझे सुन्दरी और बुद्धिमती कहते हैं। मैं स्वयं को सँवारकर नहीं रखती फिर भी बहुतेरे युवक मेरे पास खिंच आते हैं। मेरे निकट आने पर यद्यपि उन्हें मधुर स्वाद प्राप्त नहीं होता फिर भी जितना कुछ सौरभ प्राप्त होता है वे उसी से प्रसन्न रहते हैं। मैं किसी को समझने नहीं देती हूँ, किसी से कुछ नहीं कहती हूँ मगर महसूस अवश्य ही करती हूँ। मुझे खासा अच्छा लगता है, मजा मिलता है। बीच-बीच में श्रीकान्त हँसते हुए कहता है, "मैं न रहता तो तुम्हारी क्या हालत होती, मालूम है ?"

"क्या होता ?"

"एनाटॉमी क्लास के छात्रों की तरह लोगों का एक दल तुम्हारी देह के साथ खिलवाड़ करते।"

सुनने पर थोड़ा-बहुत आत्म-सन्तोष मिलने के बावजूद मैं गुस्से में

में वह सब और स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होता था। बाद में पता चला कि मेरा अनुमान गलत नहीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय मेसोपोटेमिया के लड़ाई के मैदान में जिन मुट्ठी भर भारतीय अफसरों को यथेष्ट ख्याति प्राप्त हुई थी, कर्नल चौधरी उनमें अग्रगण्य थे। कुमाऊँ रेजिमेन्ट से रिटायर करने के बाद वे फिर कलकत्ता लौटकर नहीं आये। कुछ सहकर्मियों के अनुरोध पर देहरादून में ही रह गये। उन्हीं की एकमात्र सन्तान थे विख्यात आई० सी० एस०, ए० के० चौधरी। कर्नल चौधरी की इच्छा थी कि उनका लड़का सैण्डहर्स्ट से निकलकर सेना में भर्ती हो। उसी योजना के साथ लड़के को उन्होने विलायत भेजा। लेकिन जहाज पर कुछ मित्रों ने उन्हें सलाह दी कि वे आइ० सी० एस० परीक्षा में ही सम्मिलित हों। इसी धारणा को मन में लेकर उन्होंने विलायत की जमीन पर पैर रखा।

"इतना ही नहीं, पिताजी की जिन्दगी की और भी बड़ी-बड़ी घटनाएँ जहाज पर घटित हुई थीं।"

"सच ?"

पी० एण्ड ओ० एस० एन० कम्पनी के जहाज से लन्दन से रवाना होने के दूसरे ही दिन मिस्टर चौधरी की जान-पहचान बैरिस्टर परशुराम सेन से हुई। बैरिस्टर सेन छुट्टी बिताने अपनी पत्नी और दो लड़कियों के साथ विलायत गये थे। अपने केबिन के पोर्टहोल से वे आफ बिस्क के नीले पानी को देखकर मिस्टर चौधरी अपने मन को परिपूर्ण नहीं रख पा रहे थे। सेन परिवार से वे घनिष्ठ हो गये। चीफ़ स्टुअर्ट को कहकर मेज बदलवा ली और एक साथ डिनर लेने के दौरान गपशप करते थे। मिसेज सेन के अलावा प्रतिभा और प्रमीला भी रहती थीं। प्रतिभा ने उसी बार बेथून से बी० ए० पास किया था मगर यह तय नहीं कर पा रही थी कि एम० ए० की पढाई करे या ऑक्सफोर्ड में दाखिला ले। मिस्टर सेन चाहते थे कि वह ऑक्सफोर्ड में दाखिला ले। प्रतिभा को और पढ़ने की इच्छा नहीं है और यदि पढना ही पड़े तो वह कलकत्ते में एम० ए० पढ़ेगी। प्रमीला हँसती है। कहती है, "अच्छा मिस्टर चौधरी, आप ही बताइये, ऑक्सफोर्ड में न पढ़कर कैलकाटा युनिवर्सिटी में पढ़ना क्या अर्थ रखता है ?"

"नो डॉट, ऑक्सफोर्ड से कैलकाटा युनिवर्सिटी की कोई तुलना

नहीं हो सकती, लेकिन जिन्हें पढ़ना है उनके निर्णय को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।"

मिस्टर सेन ने चुरुट से धुएँ को उगलकर हाथ बढ़ाया और मिस्टर चौधरी से हैण्डसेक किया। "यू विल वी ए वेरी गुड एडमिनिस्ट्रेटर।"

लगे हाथ मिसेज सेन ने कहा, "मैं भी तुम्हारी राय का सपोर्ट करती हूँ।"

प्रतिभा ने आंखों की कोर में हल्की हँसी का संकेत छिपाकर अपनी छोटी बहन से कहा, "देखा न मिला, आखिरकार जीत मेरी ही हुई।"

प्रमीला ने गम्भीर होकर अपनी राय ज़ाहिर की, "रोमन एम्पायर क्रॉस करने के वक्त रोमन एम्परर सबसे अधिक आनन्द से उन्मत्त था।"

मिस्टर चौधरी ने प्रमीला से पूछा, "आप इतिहास की छात्रा हैं?"

मिस्टर और मिसेज सेन ने एक साथ कहा, "इन दोनों को 'आप' कहकर संबोधित नहीं करें।"

"तुम इतिहास की छात्रा हो?"

"फ़र्स्टइयर में पढ़ती हूँ। फिर उसका इतिहास और भूगोल क्या!"

"कॉम्बिनेशन में हिस्ट्री है न?"

"यू विल गेट कॉम्बिनेशन आफ़ सो मेनी थिंग्स इन मी।"

सब लोग हँस देते हैं।

प्रतिभा बोली, मैं एवरेज लड़की हूँ मगर वह सचमुच टैलेन्टेड है।"

केप रोका, केप सेन्ट विसेन्ट को पीछे छोड़कर जहाज ने रफ्ता-रफ्ता केप टार्फ़ आॅल गार्व में प्रवेश किया। उसके बाद ऐतिहासिक इबन बतुआ के जन्म स्थान तांजियार में। जहाज रुकता नहीं है। आगे बढ़ता जा रहा है। देखते-देखते तारीफा पीछे छूट जाता है। दूर से जिब्राल्टर दिखायी पड़ता है।

मिस्टर और मिसेज सेन ने पहले कहा था कि वे नहीं उतरेंगे लेकिन पार्सर से कहकर उन तीनों के लिए जिब्राल्टर देखने का इन्तज़ाम कर लिया था। वक्त बहुत ही कम था। ज्यादा से ज्यादा एकाध घण्टे तक शहर का चक्कर लगाया जा सकता है। वेस्ट पोर्ट स्ट्रीट का चक्कर लगाकर ही वे प्रसन्न हो गये। मिस्टर चौधरी शहर से कुछ पैकेट तम्बाकू खरीद लाये।

जहाज पर लौट आने के बाद मिस्टर चौधरी ने प्रमीला से पूछा, "बता सकती हो मिला, कि जिब्राल्टर नाम कैसे पड़ा ?"

"मैं फ़र्स्ट इयर में पढ़ती हूँ। दीदी ग्रेजुएट है, उसी से पूछें।"

"प्रतिभा तुम्हें मालूम है ?"

"मैंने बी० ए० पास किया है, न कि आइ० सी० एस०।"

प्रमीला ने तत्क्षण कहा, "देख रहे हैं न, दीदी को भी मालूम नहीं है।"

चेहरे पर दबी मुसकराहट लाकर बोली, "मुझे लगता है, आपको भी मालूम नहीं है।"

प्रतिभा ने डांटा, "ऐ मिला, क्या हो रहा है !"

"आइ० सी० एस० पास किया है तो तू इतना अदब क्यों करती है ? मेरे बाबूजी बैरिस्टर हैं, पति भी बैरिस्टर होगा। मैं तेरी तरह आइ० सी० एस० की खातिर क्यों करने जाऊँ ?"

उसकी बात पर वे दोनों हँस देते हैं।

हँसी थमने पर मिस्टर चौधरी ने कहा, "पहले तुम्हारी दीदी की शादी हो जाये, उसके बाद तुम अपनी शादी के बारे में सोचना।"

"दीदी की शादी में कोई परेशानी नहीं होगी। आप जैसे एक आई० सी० एस० का इन्तजाम कर देने से ही दीदी का..."

प्रतिभा ने टोका, "अनाप-शनाप क्यों बक रही हो मिला ?" प्रसंग बदलने के खयाल से मिस्टर चौधरी की ओर देखते हुए कहा, "जिब्राल्टर नाम क्यों पड़ा, यह तो आपने बताया ही नहीं।"

"सेवन हण्ड्रेड एलेवन में तारिक इबन जैयाद ने इस जगह पर अपना दखल जमाया। आमतौर से लोग उन्हें जब अलतारिक कहते थे और उसी से जिब्राल्टर नाम पड़ गया।"

प्रमीला बोली, "लगता है, आपने गहन अध्ययन किया है।"

प्रतिभा बोली, "बगैर ब्रिलियन्ट हुए कोई आइ० सी० एस० हो सकता है ?"

मन ही मन खुश होने के बावजूद मिस्टर चौधरी ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं ब्रिलियन्ट नहीं हूँ।"

प्रमीला बोली, "देखिये, दीदी मेरी जैसी बातूनी नहीं है। उसने आपको ब्रिलियन्ट कहा है तो आप जरूर ही ब्रिलियन्ट हैं।"

मार्सेलिस और माल्टा पारकर जहाज पोर्ट सईद आता है। आदमी

चेहरे-मोहरे, कपड़ा-लत्ता और भाषा बदले हुए मालूम पड़ते हैं। साफ-साफ पता चल जाता है कि भारत अब दूर नहीं है।

जानती हो न, यह अदन पहले हम लोगों की बंबई प्रेसिडसी के अधीन था.....?"

दोनों बहनों ने एक साथ कहा, "सचमुच ?"

"मार्च थर्टी टू में अदन एक अलग प्रान्त बना बट इट इज स्टिल अण्डर गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया।"

उस रात जहाज का कोई यात्री नहीं उतरा। रात-भर शराब और नृत्य का दौर चलता रहा। जो लोग नाच नहीं रहे थे वे भी मेज छोड़कर नहीं गये। वे शराब पीते हुए अपने सहयात्री बंधु-बांधवों से गपशप करते रहे। सबके मन में विरह-वेदना मँडराती रही। मिस्टर सेन ने कहा, "तुम परमिशन दो तो एक बात कहूँ।"

"यू आर एट लिबर्टी टु से एनीथिंग यू लाइक।"

"गुड ! वेरी गुड !" ह्विस्की का गिलास बगल में सरकाकर रखते हुए बोले, "मिसेज सेन की आन्तरिक इच्छा है कि प्रतिभा से तुम्हारी शादी हो। आइ मीन हम सबों की यही इच्छा है।"

मिस्टर चौधरी ने हँसते हुए कहा, "आप लोग की यह राय हो सकती है मगर मिला इसका समर्थन नहीं करती है।"

मिसेज सेन ने कहा, "दरअसल मिला ने ही हमसे कहा है।"

उनकी बात पर सब लोग हँस देते हैं।

प्रमीला ने कहा, "आप आइ० सी० एस० के बजाय बैरिस्टर होते तो मैं ही आपसे शादी कर लेती। दीदी को चान्स नहीं मिलता।"

उसकी बात पर सब लोग हँसने लगते हैं।

इस हँसी के दरमियान मिस्टर चौधरी ने प्रतिभा से पूछा, "डू यू एग्री विथ योर पैरेन्ट्स ?"

"आइ एम नोट ऑवर एम्बिशस लाइक मिला।"

मिस्टर सेन बोले, "यू वेटर टॉक टु इच अदर प्राइवेटली।"

वे तीनों मेज छोड़कर चले गये। प्रमीला ने मिस्टर चौधरी के कान में फुसफुसाते हुए कहा, "यू कैन किस माइ दीदी टु नाइट, बट नो मोर फॉर द प्रजेन्ट।"

उन तीनों के चले जाने पर प्रतिभा ने पूछा, "मिला ने कान में क्या कहा ?"

"सुनना चाहती हो ?"

"आपको आपत्ति..."

"आप या तुम ?"

"एकाएक…।"

"इतने दिनों तक एक साथ जहाज पर गुजारने के बाद इसे एकाएक नहीं कहा जा सकता है।"

प्रतिभा हौले से मुसकरा दी। उसके बाद धीरे-धीरे कहा, "तुम्हें एतराज न हो तो मैं सुनना चाहती हूँ।"

"मिला ने कहा, आइ कैन किस यू टु-नाइट बट नथिंग मोर फॉर द प्रजेन्ट।"

प्रतिभा ने शर्म से आँखें झुका लीं।

"प्रतिभा, यू आर वेरी स्वीट एण्ड सॉफ्ट।"

"आँख झुकाकर ही उसने कहा, "यू आर ऑलसो वेरी चार्मिंग।"

"पहले तो तुमने कभी नहीं कहा था कि मैं चार्मिंग हूँ।"

"आपने भी तो कभी…"

"फिर आप ?"

"तुमने भी तो कभी यह नहीं कहा था कि मैं… "

"मैंने तय किया था, आज रात तुमसे कहूँगा… "

"क्या कहने को सोचा था ?"

"तुम मुझसे शादी करोगी या नहीं।"

"सचमुच पूछते ?"

"सचमुच।"

जहाज बंबई पहुँचने के एक महीने के दरमियान ही उन लोगों की शादी हो गयी।

विजया हँस दी। बोली, "समझ गयी होगी कि वे ही मेरे माता-पिता थे।"

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी।

"मेरे तीन भाई-बहन जन्मते ही मौत के मुँह में चले गये। उसके बाद मैंने जन्म लिया। माँ ने सोचा था, मैं भी जिन्दा नहीं रहूँगी। एक साल तक मेरा कोई नाम न रखा गया। आखिर: जब जिन्दा रह गयी तब मेरी माँ ने मेरा नाम रखा विजया।"

"सचमुच ?"

"मौसी कहा करती थी, मैंने चूँकि मौत को शिकस्त दी है इसलिए कभी शिकस्त नहीं खाऊँगी।"

मैं हँस देती हूँ। पूछा, "तुम्हारी मौसी अभी कहाँ हैं ?"

"मौसी जिन्दा नहीं है।"

"नहीं ?"

"नहीं। उन्होंने खुदकुशी कर ली थी।"

मैं चिहुँक उठी। उत्तेजना के साथ पूछा, "क्यों ? पति के साथ कुछ...।"

विजया के चेहरे पर उदास हँसी टँग गयी। धीरे-धीरे बोली, "नहीं-नहीं, उन्होंने शादी ही नहीं की थी।"

"फिर ?"

"मेरे पिताजी के कारण ही उन्होंने खुदकुशी की थी।"

"क्यों ?"

"हाँ रुणु, मैं तुमसे झूठ नहीं कह रही हूँ। इसके अलावा माँ-बाप और मौसी की निन्दा करने वाली औरत भी नहीं हूँ।"

"क्या हुआ था ?"

विजया ने एक लंबी साँस लेते हुए कहा, "मेरे पिताजी नम्बरी डिबॉच थे। आइ० सी० एस० ऑफिसर की हैसियत से उन्होंने जितना नाम कमाया था, व्यक्तिगत चरित्र के सन्दर्भ में उनका उससे ज़्यादा दुर्नाम फैला था।"

मैं अब सवाल नहीं कर सकी।

विजया खुद ही कहने लगी, "लगातार मेरे दो भाई-बहनों की मृत्यु हो जाने से माँ का स्वास्थ्य टूट गया। हमेशा वह अपने कमरे में गुमसुम बैठी रहती या फिर बंगले के लॉन में चहलकदमी करती रहती थी। उसके बाद जब एक बार और उसे इसी तरह के शोक से गुज़रना पड़ा तो माँ की सेहत और ज़्यादा खराब हो गयी।

इस बीच नाना के मरने के बाद जब नानी की भी सेहत खराब हो गयी तो मौसी भागी-भागी कलकत्ते से जलपाईगुड़ी गयी।....."

"उस समय तुम्हारे बाबूजी जलपाईगुड़ी में रहते थे ?"

"हाँ। तब वे वहाँ के डिविजनल कमिश्नर थे।"

"उसके बाद ?"

"मौसी जी हालांकि मेरी वजह से व्यस्त रहती थीं फिर भी बाबूजी

के अनुरोध पर उनके साथ यहाँ-वहाँ का चक्कर लगाती रहती थीं।" एकाध महीने के बाद मोसीजी कलकत्ता लौट गयीं, फिर भी बीच-बीच में उनके आने-जाने का सिलसिला लगा रहा। दो साल के बाद मेरा जन्म हुआ। मौसी जी भी आयीं, मगर माँ एक क्षण के लिए भी मुझे किसी के पास रहने नहीं देती थीं। शायद इसी वक्त मौसीजी का रिश्ता बाबू जी से काफ़ी गहरा हो गया…।"

"माइ गॉड।"

विजया हँस दी। "अभी भगवान का स्मरण मत करो। जरा धीरज रखो। दिन जैसे-जैसे बीतते गये बाबूजी मौसीजी के साथ टूर पर ज्यादा से ज्यादा निकलने लगे। किसी न किसी फ़ॉरेस्ट बँगलों में रात गुजारने लगे…।"

"यह क्या ?"

मौसी जी यद्यपि मुझे और मेरी माँ को प्यार करती थीं मगर पिताजी से घनिष्टता कम नहीं कर सकी या यों कह सकती हो कि कोशिश करने के बावजूद उसमें कमी नहीं ला सकीं।"

"एकाएक खुदकुशी क्यों कर ली ?"

"बाद में सुनने को मिला था, शी वाज प्रेगनेन्ट। मगर मौसीजी बड़ी ही दिलचस्प महिला थीं। शी वाज ए ब्रिलियन्ट स्टुडेन्ट, शी वाज काइन्ड एण्ड स्पोर्टिंग एज वेल।"

हँसी-खेल के सुयोग के अपव्यवहार के बाद जब प्रमीला सेन को चेतना आयी और उसने अपने शरीर के अन्दर एक और प्राणी के अस्तित्व का अहसास किया तो उसने निर्णय लेने मे देर नहीं की। बैरिस्टर सेन की अविवाहिता लड़की के हिस्से में जो विशाल सपत्ति थी उसे वह विजया को दे गयी—टु माइ इटर्नल डार्लिंग गर्ल। मिस्टर चौधरी को वह पहचानती थी और अपनी बीमार बहन की सेहत के बारे में उसे पता था। इसीलिए वसीयत मे स्पष्ट तौर पर लिख गयी कि बालिग विजया के अलावा उसके घर-द्वार या बेंक के पैसे पर कोई अपना अधिकार नहीं जमा सकेगा।

विजया जब छह साल की थी तो उसकी माँ का देहान्त हो गया। "मौत को शिकस्त देकर यद्यपि मैं जिन्दा रह गयी लेकिन उसी दिन से मेरी पराजय की शुरुआत हो गयी।" यह कहते-कहते उसकी बड़ी बड़ी आँखों में आँसू भर आये।

''दुखित मत होओ विजया। किसी की भी माँ हमेशा ज़िन्दा नहीं
...ती।''

''जानती हूँ रुणु, मगर मेरी माँ कितनी भली थी, यह तुम सोच
... नहीं सकती। धनी-मानी व्यक्ति की लड़की होने के बावजूद, आइ०
...० एस० की पत्नी होने के बावजूद वह धन को नफरत की निगाह से
...खती थी। मेरी माँ संन्यासिनी थी।

माँ के मरने के बाद विजया को घर के मोह से भी स्वयं को अलग
करना पड़ा। रेसिडेन्सल स्कूल में दाखिल करायी गयी। पहले
दार्जिलिंग में और उसके बाद नैनीताल में। तब विद्रोह करने लायक
उसके पास न तो मन था और न ही तब उसकी वह उम्र थी। मन में
भले ही दुःख, कष्ट, निराशा और पीड़ा का अहसास होता था परन्तु
पिता के समक्ष उन्हें कभी ज़ाहिर नहीं होने दिया। महाप्राण ईसा
मसीह के उपदेश, दोस्त मित्रों के साथ खेल-कूद, गीत-नृत्य और पढ़ने-
लिखने में ही यद्यपि दिन बीत जाते परन्तु रात काटे नहीं कटती थी।
अपनी बीमार माँ की उसे याद आती। मन में तीव्र इच्छा होती कि
माँ के समीप जाये।

इसका कारण यह था कि पिता के स्नेह का स्वाद या विस्वाद
दोनों में से किसी का उसे अनुभव न था। तोंदवाले रिवाल्वरधारी एक
पुलिस के साथ वे गाड़ी पर आते और फिर चले जाते। पिताजी की
गाड़ी पर नज़र पड़ते ही सदर फाटक का दरबान चौंक पड़ता। उपरेल
कमरे की खिड़की से विजया देखती रहती थी। उसे बड़ा ही मज़ा
मिलता और वह अवाक् हो जाती थी। बीच-बीच में नन्हीं विजया के
मन में सवाल उठता, बाबूजी क्या चोर हैं? डाकू हैं? पुलिस आक...
बाबूजी को क्यों ले जाती है? यह मोटा पुलिसवाला आकर हर रो...
बाबूजी को पकड़कर ले जाता है और फिर वापस कर जाता है। क्यो...
फिर फाटक के पास पुलिस इतनी लम्बी बन्दूक लेकर क्यों खड़ी र...
है? लगता है, बाबूजी जैसे ही भागने लगेंगे कि पुलिस उन्हें ...
लेगी। धायँ से गोली मार देगी।

तोंदवाला पुलिस का आदमी विजया को ज़रा भी पसन्द न...
एक तो बड़ा ही भद्दा मोटा, उस पर खासी बड़ी मूँछें। आँखें भी...

गोल और लाल। वह कभी उसके पास नहीं जाती थी। दूर से इशारे से बुलाने पर भी नहीं जाती थी। भाग जाती थी। सदर फाटक का दरवान विजया को बहुत ही अच्छा लगता था। वह मैदान में खेलने जाती तो दरवान मुसकराते हुए उसे पुकारता। विजया उसके पास जाती। एक-दो बातें बोलने के बाद बन्दूक को हाथ से छूकर दौड़कर भाग जाती और दोमंज़िले पर चली आती।

माँ यद्यपि बीमार थी फिर भी विजया के दिन मजे में गुजरते थे। माँ के गुजर जाने के बाद भी दिन बीत रहे थे। विशाल बँगला था। इस कमरे से उस कमरे और उस कमरे से फिर किसी दूसरे कमरे में चहल-कदमी करने पर ही थकावट महसूस होने लगती थी। बगैर खाना खाये ही माँ के बिस्तर पर लेट जाती थी।

शुरू-शुरू में स्कूल आने पर असह्य जैसा लगता था। रफ्ता-रफ्ता कुछ अच्छा लगने लगा। सवेरे स्कूल शुरू होने के पहले चर्च जाने पर वहाँ के विशाल पियानो का स्वर सुनना उसे बड़ा ही अच्छा लगता। वह औरत भी अच्छी लगती थी। पियानो के दो परदों में सीमाबद्ध नोट्स उसे कैद कर रख नहीं पाता। विजया से बड़ी होने के बावजूद उस सोनाली सरकार से ही उसकी दोस्ती हो गयी। उसने दार्जिलिंग देखा। चौराहे, बर्चहिल, लॉयड बोटनिकल गार्डन की सैर करती थी। छुट्टी के दिन वार्डन से इजाजत लेकर सोनाली के साथ रात के आखिरी पहर में बर्च हिल से हो आयी थी। सूर्योदय के समय कंचनजघा का बेजोड़ सौंदर्य देखकर मुग्ध हुई थी। छुट्टी का दिन जितना निकट आता गया, सोनाली और कंचनजघा से वह उतनी ही दूर हटती गयी। घर जाने के लिए विजया चंचल हो उठी।

विजया हल्की हँसी हँस दी।

मैंने पूछा, "हँस क्यों रही हो?"

सूर्य की किरणों से झलमलाता दार्जिलिंग सहसा बादलों से ढँक गया। विजया का चेहरा भी उदास हो गया। "जानती हो रुणु, बाबूजी मुझे किसी भी हालत में अपने पास नहीं ले जाना चाहते थे। स्कूल के एक्सकर्शन पार्टी के साथ नाना स्थानों में घूमने भेज देते थे।"

"सच?"

"हाँ बहन। दार्जिलिंग में रहने के दौरान शायद दो बार कलकत्ता

गयी थी मगर नैनीताल से एक वार ही कलकत्ता जाना हुआ था। लेकिन वाबूजी को कभी अपने निकट नहीं पाया....."

"दफ्तर से घर लौटकर....."

"राइटर्स विल्डिंग से घर लौटते ही वाथरूम चले जाते थे। उसके वाद फिर तैयार होकर वाहर निकल जाते थे।...."

"हर रोज तो नहीं जाते होंगे ?"

"हर रोज चले जाते थे।"

"फिर तुम किस तरह वक्त गुजारती थीं ?"

"हम लोगों का एक पुराना खानसामा था। मैं उन्हें बड़े चाचा कहा करती थी। बड़े चाचा रोज मुझे अपने साथ लेकर घूमने निकल जाते थे—चिड़ियाखाना, म्युजियम, विक्टोरिया मेमोरियल हॉल, किले के मैदान और गंगा के किनारे। बड़े चाचा के साथ वातचीत करने में मैं दिन गुजार देती थी। माँ की मृत्यु के वाद बड़े चाचा ही मेरे माता-पिता थे।"

चौधरी साहव जव फरीदपुर में डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट थे तो उसी समय बड़े चाचा का उनके घर पर आगमन हुआ था। उन दिनों चौधरी साहब बैरिस्टर परशुराम सेन की लड़की प्रतिभा को प्यार करते थे। पी० एण्ड० ओ० कम्पनी के जहाज की स्मृति तब भी उनके मन से धुली-पुँछी नहीं थी। पत्नी को साथ लिए स्टीमर से चक्कर काटते रहते थे। गृहस्थी का भार बड़े चाचा पर था। आइ० सी० एस० अशोक चौधरी के सक्रिय और व्यक्तिगत जीवन के अनेकानेक परिवर्त्तनों के एक-मात्र साक्षी बड़े चाचा ही थे। बड़े चाचा का जोवन दुःख से भरा था। लगातार आघात पर आघात उन्हें सहना पड़ा था। एक-एक कर दो पत्नियों और तीन सन्तानों के वियोग का शोक उन्हें झेलना पड़ा था। एकमात्र लड़का जहाज में कार्य-नियुक्त होने के बाद विदेश गया तो फिर लौटकर नहीं आया।

"यद्यपि मुझे माँ-वाप का स्नेह नहीं मिला था लेकिन वड़े चाचा ने मेरे तमाम अभावों की पूर्त्ति कर दी थी। उतना महान् व्यक्ति मुझे अपनी जिन्दगी में दिखाई नहीं पड़ा।"

वड़े चाचा की दास्तान सुनते-सुनते मेरा चेहरा खुशियों से दमक उठा। कहा, "काश मुझे ऐसा ही कोई वड़ा चाचा मिला होता तो जिन्दगी कितनी खुशहाल रहती।

"इस तरह के बड़े चाचा मिलना भाग्य की बात है। जब मैं छोटी थी, बड़े चाचा को मेरे कमरे में सोना पड़ता था। कॉलेज में पढ़ने के समय भी छुट्टियों में कलकत्ता आने पर वे मेरे पास न होते तो मुझे नींद ही नहीं आती। ऐसे कितने ही दिन बीते हैं कि मैं आधी रात में जगकर बड़े चाचा के कमरे में चली गयी हूँ।"

"बड़े चाचा का देहान्त कब हुआ ?"

"बड़े चाचा के देहान्त के बाद ही मैं इस मुल्क में चली आयी।"

"सच ?"

"हाँ।"

"तुम्हारे बाबूजी तुम्हारे साथ इस तरह का व्यवहार क्यों करते हैं ?"

"बाबूजी मुझे बेहद प्यार करते थे मगर वे मुझे अपने पास नहीं रख पाते थे या यह कह सकती हो कि रखना नहीं चाहते थे...।"

"क्यों ?"

"बाबूजी का चरित्र कभी अच्छा नहीं रहा। कितने जूनियर अफसरों की पत्नियों के साथ बाबूजी मौज मनाते थे, उसका कोई ठिकाना नहीं...।"

"कोई भी विरोध न करता था ?"

"आइ० सी० एस० डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के साथ झगड़ा करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। इसके अलावा इन मामलों मे वे बड़े ही चतुर थे। उसके बाद धीरे-धीरे एक पुलिस अफसर की पत्नी के साथ बाबूजी का रिश्ता अत्यन्त गहरा हो गया...।"

"वह ऑफिसर कैसे बरदाश्त कर लेता था ?"

"उनका भी चरित्र अच्छा नहीं था। इसके अलावा बाबूजी के प्रभाव से तरक्की करते गये थे। बीते दिनों के तमाम पुलिस अफसरों को डी० आइ० जी० साहब की कहानी मालूम है। आखिर में बाबूजी उनकी पत्नी को अपने पास ही रखा करते थे।"

"तुमने उस महिला को देखा है ?"

"बंगाली क्लब में बाबूजी का एक कमरा था। वह महिला वहीं रहती थी। हम लोगों के मयरा स्ट्रीट के मकान में कभी नहीं आती थी।"

"तुम्हारे बाबूजी का देहान्त कब हुआ ?"

"मैं बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी। बाबूजी दार्जिलिंग से बाग-डोगरा आ रहे थे। रास्ते में गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गयी और बाबूजी और ड्राइवर की मृत्यु हो गयी। लेकिन ए० डी० आइ० जी० साहब की औरत मौत के हाथ से बच गयी।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद और क्या ? उस बुढ़ापे में ही बड़े चाचा ने दौड़-धूप कर रुपया-पैसा और संपत्ति का सारा इन्तजाम किया। आखिर में पता चला कि लॉयेड्स बैङ्क में बाईस हजार रुपया जमा रहने के अतिरिक्त बाबूजी के पास न तो पैतृक और न ही कोई निजी संपत्ति बच गयी थी।"

"देहरादून में तुम्हारे दादा का···।"

"देहरादून का मकान बाबूजी ने बहुत पहले ही बेच दिया था···।"

"और मयरा स्ट्रीट का मकान ?"

"वह लीज पर लिया गया था। बाबूजी की मृत्यु के एकाध साल बाद ही मैंने उस मकान को छोड़ दिया। लेकिन माँ और मौसी की मुझे अगाध संपत्ति मिली थी। बड़े चाचा को कैंसर हो जाने पर मैंने एक मकान बेच दिया।" विजया थोड़ी देर के लिए चुप हो गयी। शायद वह थकावट महसूस कर रही थी। एक लंबी साँस लेकर बोली, मुझे पैसे की कमी नहीं है, कमी है तो आदमी की। यानी सगे-संबंधियों की।"

"तुम्हारा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है ?"

"निकट के आत्मीय न रहने पर भी बहुत सारे लोग हैं। लेकिन बाबूजी के साथ किसी का कोई संपर्क न रहने के कारण मैं उनसे परिचित नहीं हूँ। मेरे नाना के एक छोटे भाई अब भी मेरी खोज-खबर लेते हैं। वे मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते हैं।"

लॉयड्स बैङ्क के रुपयों को संबल बनाकर विजया एक दिन लन्दन चली आयी। बगैर आये रह न सकी। बड़े चाचा को खोने के बाद पिता के उस कलंक के इतिहास को माथे पर धारण कर कलकत्ते में नहीं रह सकी। अनजाने-अनपहचाने लोगों के बीच कई महीने निरुद्देश्य बिताने के बाद एक दिन इंडिया हाउस में लंच के दौरान समीर घोष से जान-पहचान हुई।

"यकीन करो रुणु, समीर जैसा युवक मैंने नहीं देखा है। उससे

जान-पहचान होने पर मैंने प्रसन्नता का अनुभव किया। बिजली का आघात लगने से आदमी जिस तरह चौंक उठता है, समीर से जान-पहचान होने पर मैं भी उसी तरह चौंक उठी थी। तुमसे जान-पहचान होती तो तुम भी चौंक उठतीं। आइ मीन इवन आफ्टर योर मैरेज।"

विजया हँसने लगी, साथ-साथ मैं भी।

"लन्दन शहर से मैं ऊब चुकी थी। अब अच्छा नहीं लग रहा था। इस शहर में अकेले नहीं रहा जा सकता है। मैं भी नहीं रह पा रही थी। ठीक इसी वक्त समीर से मुलाकात न हुई होती तो मैं शायद कलकत्ता लौट जाती।"

"देन ह्वाट हैपन्ड ?"

"क्या नहीं घटित हुआ! बैरिस्टर बनने के खयाल से मैं भी उसके साथ ग्रेस इन में भर्ती हो गयी। उसके बाद ग्रेस इन रोड को पकड़कर चाथेरी लेन में। ट्यूब स्टेशन की बगल से होते हुए होबर्न पार कर हम लिंकन्स इन फिल्डवे पहुँचते और उसके बाद ओल्डविच के मेले में खो जाते थे।"

"खो जाने का मतलब ?"

"सचमुच ही खो जाते थे। कहाँ जाते थे, क्या करते थे, यह हमें भी मालूम नहीं रहता था। हम दोनों सब कुछ करते थे। किसी-किसी दिन चक्कर लगाते हुए हम सोहो के किसी नाइट क्लब में पहुँच जाते और वहीं आधी रात बिताने के बाद घर लौटते थे।"

मैं अपलक दृष्टि से उसकी ओर ताक रही थी।

"तुम यह सुनकर हैरान हो रही हो मगर किसी दिन तुम्हें अकेले रहने की पीड़ा सहनी पड़ती तो समझती कि क्यों मैं समीर के साथ पागलपन में डूब जाती थी। जानती हो, उसके बाद क्या किया ?"

"क्या ?"

"वी स्टार्टेड लिविंग टुगेदर। मकान किराये पर लेकर पति-पत्नी की तरह रहने लगे। ही हैड मी एण्ड माइ मनी बट नेवर वान्टेड टु मैरी। मैं ही शादी की बारे में बातें करती थी, मगर वह कभी नहीं करता था। मैं शादी की चर्चा करती तो वह बातचीत को नया मोड़ दे देता। सीधे कुछ भी जवाब नहीं देता था। उसके बाद शादी की बातचीत के चलते एक दिन झड़प हो गयी। जानती हो, उसने क्या कहा ?"

"मैं बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी। बाबूजी दार्जिलिंग से व
डोगरा आ रहे थे। रास्ते में गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गयी और बा
और ड्राइवर की मृत्यु हो गयी। लेकिन ए० डी० आइ० जी० स
की औरत मौत के हाथ से बच गयी।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद और क्या ? उस बुढ़ापे में ही बड़े चाचा ने दौड़
कर रुपया-पैसा और संपत्ति का सारा इन्तजाम किया। आखि
पता चला कि लॉयेड्स बैङ्क में बाईस हजार रुपया जमा रहने के अ
रिक्त बाबूजी के पास न तो पैतृक और न ही कोई निजी संपत्ति
गयी थी।"

जान-पहचान होने पर मैंने प्रसन्नता का अनुभव किया। बिजली का आघात लगने से आदमी जिस तरह चौंक उठता है, समीर से जान-पहचान होने पर मैं भी उसी तरह चौंक उठी थी। तुमसे जान-पहचान होती तो तुम भी चौंक उठती। आइ मीन इवन आफ्टर योर मैरेज।"

विजया हँसने लगी, साथ-साथ मैं भी।

"लन्दन शहर से मैं ऊब चुकी थी। अब अच्छा नहीं लग रहा था। इस शहर में अकेले नहीं रहा जा सकता है। मैं भी नहीं रह पा रही थी। ठीक इसी वक्त समीर से मुलाकात न हुई होती तो मैं शायद कलकत्ता लौट जाती।"

"देन ह्वाट हैपन्ड ?"

"क्या नहीं घटित हुआ! बैरिस्टर बनने के खयाल से मैं भी उसके साथ ग्रेस इन में भर्ती हो गयी। उसके बाद ग्रेस इन रोड को पकड़कर चाबेरी लेन में। ट्यूब स्टेशन की बगल से होते हुए होबर्न पार कर हम लिंकन्स इन किंग्सवे पहुँचते और उसके बाद ओल्डविच के मेले में खो जाते थे।"

"खो जाने का मतलब ?"

"सचमुच ही खो जाते थे। कहाँ जाते थे, क्या करते थे, यह हमें भी मालूम नहीं रहता था। हम दोनों सब कुछ करते थे। किसी-किसी दिन चक्कर लगाते हुए हम सोहो के किसी नाइट क्लब में पहुँच जाते और वहाँ आधी रात बिताने के बाद घर लौटते थे।"

मैं अपलक दृष्टि से उसकी ओर ताक रही थी।

"तुम यह सुनकर हैरान हो रही हो मगर किसी दिन तुम्हें अकेले रहने की पीड़ा सहनी पड़ती तो समझती कि क्यों मैं समीर के साथ पागलपन में डूब जाती थी। जानती हो, उसके बाद क्या किया ?"

"क्या ?"

"वी स्टार्टेड लिविंग टुगेदर। मकान किराये पर लेकर पति-पत्नी की तरह रहने लगे। ही हैड मी एण्ड माइ मनी बट नेवर वानटेड टु मैरी। मैं ही शादी के बारे में बातें करती थी, मगर वह कभी नहीं करता था। मैं शादी की चर्चा करती तो वह बातचीत को नया मोड़ दे देता। सीधे कुछ भी जवाब नहीं देता था। उसके बाद शादी की बातचीत के चलते एक दिन झड़प हो गयी। जानती हो, उसने क्या कहा ?"

"क्या ?"

"कहा कि आइ० सी० एस० अशोक चौधरी की बेटी होने के बाव-जूद शादी करने का इतना शौक है ?"

"माइ गॉड !"

"दैट वाज द डे आइ किक्ड हिम आउट ऑफ माइ अपार्टमेन्ट। बहुत तकलीफ होने के बावजूद अब उसे मैं एक क्षण के लिए भी बर-दाश्त नहीं कर सकी।"

"समीर अब कहाँ है ?"

"मालूम नहीं। शायद अब यहाँ नहीं है।"

"उसके बाद तुमसे मुलाकात नहीं हुई ?"

"हर मैजेस्टिस थियेटर में एक हिन्दी फिल्म देखने के दौरान मुला-कात हुई थी। वह भी कई साल पहले।"

"तुमसे कुछ बातें की ?"

विजया व्यंग्य की हँसी हँस दी। "बात क्या करेगा ? बोलने की हिम्मत थी ? जो लोग बेईमान हैं, जिनमें चारित्रिक दुर्बलता रहती है और गन्दगी के सिवा कुछ भी नहीं रहता, वे क्या कभी सिर उठाकर बातें कर सकते हैं ?"

"एक्सक्यूज मी मिस रुणु। गिलास अब तक खाली नहीं हुआ ?"

मैं भूल ही गयी थी कि एयर इंडिया के हवाई जहाज से मैं भारत जा रही हूँ। मिस्टर वाल मेरे निकट बैठे हैं। बहुत पहले ही ड्रिंक सर्व किया जा चुका है। संभवतः थोड़ी देर बाद ही 'एक्सक्यूज मी' कहकर साड़ी-ब्लाउज या सलवार-कमीज पहने कोई एयर होस्टेस आकर एक ट्रे भोजन रख जायेगी। यह सब बात मेरे ध्यान से उतर गयी थी। अचानक बगल से मिस्टर वाल की बात सुनायी पड़ी तो मैंने स्वयं को संयत कर लिया। उसकी ओर देखते हुए चेहरे पर मुसकराहट लाकर मैंने कहा, "नन शुड हरी विथ ड्रिंक्स एण्ड लव ! ड्रिंक और प्रेम के मामले में जरा धीरे-धीरे आगे बढ़ना ही अच्छा होता है। है न ?"

"लवली मिस रुणु ! लवली !" मेरे कान के पास मुँह लाकर मिस्टर वाल ने दबे स्वर में कहा, "मर्द हर चीज में जरा जल्दीबाजी करते हैं। हैं न ?"

"आइ होप दिस इज नोट योर कनफेशन । इस तरह आप अपना दोष स्वीकार नहीं कीजिएगा ?"

मिस्टर वाल जोर से हँसने लगे । हँसी थमने पर बोले, "आप तो भयंकर युवती हैं !"

"क्यों, मैंने क्या किया ?"

"शादी न करने के बावजूद मर्दों के बारे में आपको खासा अच्छा अनुभव है ।"

"मैंने तो यह नहीं कहा कि मुझे अनुभव नहीं है ।"

मिस्टर वाल फिर हँस दिये । मैंने गिलास मे बचे जिन को गले के नीचे उतारा । गला और छाती को तर करने के बाद जिन जैसे ही पेट के अन्दर गया, मुझे पुन: विजया की याद आ गयी ।

"तुम तो स्वदेश जा रही हो । मेरा एक उपकार करोगी ?"

"क्या ?"

"किसी बड़े अफसर या विलायत से लौटे हुए व्यक्ति से नहीं, बल्कि एक अत्यन्त साधारण और भले बंगाली से मेरी शादी का इन्तजाम करा सकती हो ?"

मैंने स्तब्ध होकर उसके दयनीय चेहरे की ओर देखा ।

"सच कह रही हूँ रुणु, अब एकाकी जीवन जीना अच्छा नहीं लगता । तुम्हें तो फिर भी श्रीकान्त जैसा एक मित्र मिल गया है, लेकिन मुझे वह भी प्राप्त नहीं हो सका है । किसे लेकर, किसके सहारे जीवन जिऊँगी ?"

विजया का थका-हारा, करुण और उदास चेहरा मेरी आँखों के सामने इस प्रकार स्पष्ट तैर उठा कि मैं उसके बाद बाहर की ओर ताक नहीं सकी । अपनी निगाह को वापस लाकर मिस्टर वाल की ओर देखा । वे हँस पड़े । कहा, "लगता है, सपना देखने का इंटरवल हुआ है ।"

उसकी बात पर मैं भी हँस दी ।" आपने कैसे समझा कि मैं सपना देख रही थी ?"

"सपना न देखते रहने के बिना कोई इस तरह तन्मय हो सक है ?"

"मैं तन्मय हो गयी थी ?"

"यह भी समझ नहीं सकीं ?"

हम दोनों एक साथ हँसने लगे। हँसी का दौर थमने के बाद मिस्टर वाल ने कहा, "आफटर ऑल पिपुल ऑफ कैलकाटा इज फेमस फॉर टी, जूट एण्ड पोयट्स।"

उसकी बात पर मैं पुनः हँस देती हूँ। कहती हूँ, "इन तीनों में से किसी से मैं जुड़ी हुई नहीं हूँ।"

"ठीक-ठीक मालूम है न ?"

"डु यू मीन टु से मैं अपने बारे में इतनी सूचना भी नहीं रखती हूँ ?"

मिस्टर वाल बीच के हत्थे पर कुहनी टेक मेरी ओर झुककर बोले, "आप भले ही कवि न हों मगर पोयटिक अवश्य ही हैं।"

"क्यों ? मैं पोयटिक कैसे हो गयी ?"

"पोयटिक हुए बगैर कोई इतनी देर तक सूने आसमान की ओर आँखें टिकाये रह सकता है ?"

"लन्दन में एक लंबा अरसा गुजारने के बाद स्वदेश लौट रही हूँ, इसलिए काफी कुछ याद आ रहा है। यही वजह है कि चुपचाप सोच रही थी।"

"यह स्वाभाविक है, मगर मैं प्लेन पर सवार होने के बाद चुप्पी में डूबकर सोच नहीं पाता हूँ।"

"क्यों ?"

"प्लेन के पैसेंजर देखने में इतने अच्छे लगते हैं कि सोचने-विचारने का अवकाश नहीं मिलता है।"

मुझे बीते दिनों की याद आ गयी। साथ ही साथ हिथरो एयरपोर्ट की भी। "यह सच है कि प्लेन के पैसेंजर बड़े ही इन्टरेस्टिंग होते हैं।"

"आप क्या काफी यात्रा कर चुकी हैं ?"

"योरोप का कुछ चक्कर अवश्य ही लगाया है मगर कुछ दिनों तक हिथरो एयरपोर्ट में नौकरी करने के दौरान मैंने ढेर सारे हवाई जहाज के मुसाफिर देखे हैं।"

"वट एयरपोर्टस आर ओनली फर्स्ट स्टेप्स टु फ्रीडम।"

"इसका मतलब ?"

"मनुष्य जब अपने जाने-पहचाने माहौल के बाहर जाता है तभी वह स्वतंत्र होता है। नये माहौल में अनजाने मनुष्यों के बीच ही मनुष्य

का असली स्वरूप और चरित्र उभरकर सामने आता है। और उस स्वतंत्र राज्य में प्रवेश करने का पहला ठहराव हवाई अड्डा है।"

उनकी बातें बड़ी ही अच्छी लगीं। "वाह, आप बहुत ही अच्छी बातें करते हैं।"

मिस्टर वाल ने गंभीर होकर कहा, "अगर सिर्फ आकाश की ओर ही ताकती रहेंगी तो मेरे गुणों का आपको कैसे परिचय प्राप्त होगा?"

हम दोनों ने एक ठहाका लगाया। तत्क्षण आस-पास के अनेक यात्रियों की सरस दृष्टि हमारे निकट ठिठककर खड़ी हो गयी। मैंने जरा झुककर दबे हुए स्वर में कहा, "अभी आप यात्रियों की ओर नहीं देख रहे हैं, यात्री ही आपकी ओर देख रहे हैं।"

"मेरी ओर नहीं, हमारी ओर देख रहे हैं।"

आइल होकर जाते हुए एक हिप्पी अचानक हमारी सीट के पास खड़ा हो गया और बोला, "हैव ए गुड टाइम।"

मैं हँस दी। मिस्टर वाल ने उसे धन्यवाद दिया।

जाने-पहचाने माहौल के बाहर सचमुच ही आदमी में बदलाव आ जाता है। समाज के अनुशासन की सीमा-रेखा पार करने के बाद मनुष्य की अनेकानेक सुप्त प्रवृत्तियाँ जाग जाती हैं, प्रकाश में आ जाती है।

रंजन का अभिनय देखने का सिलसिला जब खत्म हो गया, जब माँग में सिंदूर की रेखा रहने के बावजूद मैं निःसंग हो गयी, उस समय किसी भी हालत में लन्दन में रहना बरदाश्त नहीं हो रहा था। ठीक उसी वक्त मेरे दफ्तर के कुछ लोगों ने मुझे आकर पकड़ा, "आइल ऑफ मैन घूमने चलिएगा?"

छुट्टियों में इस तरह के घूमने फिरने का कार्यक्रम हर बार निश्चित किया जाता था मगर मैं नहीं गयी थी। जाने की इच्छा नहीं होती थी, मन नहीं चाहता था। रंजन और मैं एक साथ छुट्टी लेकर बाहर जाते थे। दफ्तर के लोगों के साथ छुट्टियाँ बिताने की जरूरत नहीं पड़ती थी। लेकिन उस बार मैंने उनके प्रस्ताव को नहीं ठुकराया। इसके अलावा अस्थाना ने इस तरह बार-बार अनुरोध किया कि मैं नकार नहीं सकी। हम लोगों के उस दफ्तर में बहुत सारे भारतीय काम करते थे। मैं सबसे परिचित थी मगर एक-दो व्यक्तियों के अलावा मैं किसी और को पसन्द नहीं करती थी। अस्थाना मुझे अच्छा लगता था। उसके जैसा सज्जन और सभ्य आदमी हमारे दफ्तर में नहीं था।

लिवरपुल से फेरी से डगलस जाने के दौरान अस्थाना ने मेरे निकट बैठते हुए कहा, "तुम आयी हो इसलिए मैं बहुत खुश हूँ।"

मैंने कहा, "तुम उस तरह अनुरोध न करते तो मैं किसी भी हालत में नहीं आती।"

"सच ?"

"सच कह रही हूँ। उन लोगों के साथ एक ही दफ्तर में नौकरी की जा सकती है लेकिन छुट्टी का एक भी दिन बर्बाद नहीं किया जा सकता है।"

अस्थाना हँसने लगा। उसने सिगरेट सुलगायी। बोला, "मैं भी सिर्फ तुम्हारे कारण ही आया हूँ।"

"क्यों ?"

"तुम आजकल इस तरह बेजान-सी रहती हो कि मुझे बुरा लगता है।"

यह सुनकर मुझे अच्छा लगा। डगलस पहुँचने पर और भी अच्छा लगा। हजारों आदमी के साथ जैसे यह द्वीप पुंज भी हँस रहा है और समुद्र की लहरों के साथ नाच रहा है। दो दिन तक और-और लोगों के साथ इतना चक्कर लगाया कि थककर चूर हो गयी और दूसरे दिन शाम को मेरिन ड्राइव में अकेली ही बैठी रही। होटल लौटने के समय अस्थाना से मुलाकात हुई। मैंने पूछा, "कब वापस आये ?"

"अभी तुरन्त।"

"तुम लोग क्या सेंट पैट्रिक आइल का कैसल भी देखने गये थे ?"

"नहीं। सबने सोचा कि वहाँ से लौटने में देर होने से सन सेट नहीं देखा जा सकेगा, इसलिए···"

"पील का सन सेट बड़ा ही सुन्दर होता है ?"

"हाँ।"

"सब लोग क्या होटल में ही हैं ?"

"सभी कैसिनो गये हैं।"

"तुम नहीं गये ?"

"नहीं।"

"क्यों ? टायर्ड ?"

"थका तो हूँ ही, इसके अलावा सोचा, तुमसे जरा गपशप करूँगा।"

"खाओगे नहीं ?"

"क्या नहीं खाऊँगा ?"

"चलो, खा-पीकर ही गपशप करेंगे।"

"चलो।"

डाईनिंग हॉल से उठते ही अस्थाना ने कहा, "चलो, मेरे कमरे में ही बैठा जाये।"

"चलो।"

उसी के कमरे में गये। कमरे के अन्दर जाते ही अस्थाना ने दरवाजे का ताला बन्द कर दिया।

"दरवाजा लॉक क्यों कर दिया ?"

"न करने से कोई न कोई आकर तंग करेगा।" आगे बढ़कर मेरे कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा, "भय की कोई बात नहीं है। तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा।"

"तुम जगदीश अरोड़ा नहीं हो, यह जानती हूँ।"

"जगदीश तमाम औरतों के साथ बुरा सलूक करता है, यही न ?"

"इसके अलावा बड़ा ही वल्गर।"

कमरे में एक ही छोटा-सा कोच था। बगल में बैठते हुए अस्थाना ने पूछा, "तुमसे बुरा सलूक किया है ?"

"उसने किसके साथ बुरा सलूक नहीं किया है ?"

"सो तो सही है।"

गपशप करते-करते रात हो गयी। मैं जब-जब उठना चाहती थी वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे बिठा देता था। कहता है, "बैठो-बैठो, इतनी घबरा क्यों रही हो ? कल सबेरे ही उठकर दफ्तर नहीं जाना है।"

"दफ्तर नहीं जाना है तो इसका मतलब यह नहीं कि सोऊँ भी नहीं।"

"नींद आ रही है ?"

"इतनी रात हो चुकी है, नींद नहीं आयेगी ?"

"थोड़ी सी ब्राण्डी पियोगी ? बहुत ही अच्छी लगेगी।"

मैंने हँसकर कहा, "नहीं-नहीं, ब्राण्डी क्यों पिऊँ।"

"थोड़ी-सी पियो। सचमुच ही अच्छी लगेगी।"

"क्यों, तुम्हें पीने की इच्छा हो रही है क्या ?"

"तुम पीती तो मैं भी थोड़ी-सी पीता।"

लिवरपुल से फेरी से डगलस जाने के दौरान अस्थाना ने मेरे निकट बैठते हुए कहा, "तुम आयी हो इसलिए मैं बहुत खुश हूँ।"

मैंने कहा, "तुम उस तरह अनुरोध न करते तो मैं किसी भी हालत में नहीं आती।"

"सच ?"

"सच कह रही हूँ। उन लोगों के साथ एक ही दफ्तर में नौकरी की जा सकती है लेकिन छुट्टी का एक भी दिन बर्बाद नहीं किया जा सकता है।"

अस्थाना हँसने लगा। उसने सिगरेट सुलगायी। बोला, "मैं भी सिर्फ तुम्हारे कारण ही आया हूँ।"

"क्यों ?"

"तुम आजकल इस तरह बेजान-सी रहती हो कि मुझे बुरा लगता है।"

यह सुनकर मुझे अच्छा लगा। डगलस पहुँचने पर और भी अच्छा लगा। हजारों आदमी के साथ जैसे यह द्वीप पुंज भी हँस रहा है और समुद्र की लहरों के साथ नाच रहा है। दो दिन तक और-और लोगों के साथ इतना चक्कर लगाया कि थककर चूर हो गयी और दूसरे दिन शाम को मेरिन ड्राइव में अकेली ही बैठी रही। होटल लौटने के समय अस्थाना से मुलाकात हुई। मैंने पूछा, "कब वापस आये ?"

"अभी तुरन्त।"

"तुम लोग क्या सेंट पैट्रिक आइल का कैसल भी देखने गये थे ?"

"नहीं। सबने सोचा कि वहाँ से लौटने में देर होने से सन सेट नहीं देखा जा सकेगा, इसलिए···"

"पील का सन सेट बड़ा ही सुन्दर होता है ?"

"हाँ।"

"सब लोग क्या होटल में ही हैं ?"

"सभी कैसिनो गये हैं।"

"तुम नहीं गये ?"

"नहीं।"

"क्यों ? टायर्ड ?"

"थका तो हूँ ही, इसके अलावा सोचा, तुमसे जरा गपशप करूँगा।"

"खाओगे नहीं ?"

"क्या नहीं खाऊँगा ?"

"चलो, खा-पीकर ही गपशप करेंगे ।"

"चलो ।"

डाईनिंग हॉल से उठते ही अस्थाना ने कहा, "चलो, मेरे कमरे में ही बैठा जाये ।"

"चलो ।"

उसी के कमरे में गये । कमरे के अन्दर जाते ही अस्थाना ने दरवाजे का ताला बन्द कर दिया ।

"दरवाजा लॉक क्यों कर दिया ?"

"न करने से कोई न कोई आकर तंग करेगा ।" आगे बढ़कर मेरे कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा, "भय की कोई बात नही है । तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा ।"

"तुम जगदीश अरोड़ा नहीं हो, यह जानती हूँ ।"

"जगदीश तमाम औरतों के साथ बुरा सलूक करता है, यही न ?"

"इसके अलावा बड़ा ही वल्गर ।"

कमरे में एक ही छोटा-सा कोच था । बगल में बैठते हुए अस्थाना ने पूछा, "तुमसे बुरा सलूक किया है ?"

"उसने किसके साथ बुरा सलूक नहीं किया है ?"

"सो तो सही है ।"

गपशप करते-करते रात हो गयी । मैं जब-जब उठना चाहती थी वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे बिठा देता था । कहता है, "बैठो-बैठो, इतनी घबरा क्यों रही हो ? कल सवेरे ही उठकर दफ्तर नहीं जाना है ।"

"दफ्तर नहीं जाना है तो इसका मतलब यह नहीं कि सोऊँ भी नहीं ।"

"नींद आ रही है ?"

"इतनी रात हो चुकी है, नींद नहीं आयेगी ?"

"थोड़ी सी ब्राण्डी पियोगी ? बहुत ही अच्छी लगेगी ।"

मैंने हँसकर कहा, "नहीं-नहीं, ब्राण्डी क्यों पिऊँ ।"

"थोड़ी-सी पियो । सचमुच ही अच्छी लगेगी ।"

"क्यों, तुम्हें पीने की इच्छा हो रही है क्या ?"

"तुम पीतीं तो मैं भी थोड़ी-सी पीता ।"

"तुम पियो, मैं बैठी रहूँगी।"

"ऐसा कहीं होता है ?"

क्यों नहीं होता है ?"

बातचीत करते-करते अचानक अस्थाना ने मुझे बाँहों में भर लिया और कहा, "प्लीज''''"

"मैं तत्क्षण उठकर खड़ी हो गयी और कहा, "गुडनाइट।"

अस्थाना ने दाँत निपोरकर कहा, "इतनी जल्दी कहाँ जाओगी ?"

"और कहाँ जाऊँगी ? अपने कमरे में जाऊँगी।"

वह उठकर आया और मेरे गले को अपनी बाँहों में भरकर बोला, "हैव ए टेस्ट ऑफ इन द आइल ऑफ मैन।

"नॉनसेन्स।"

आँधी की गति से मैं मेज के पास आयी। वहाँ से चाबी लेकर दरवाजा खोला और बाहर चली आयी।

मिस्टर वाल की बात सुनकर मुझे अस्थाना की याद आ गयी। मैंने कहा, "अपने परिवेश के बाहर जाते ही आदमी क्यों बदल जाता है ?"

"तमाम अनुशासनों से मुक्ति पाने में एक तरह का आनन्द मिलता है।"

"मिलता है ?"

"वुड यू लाइक टु टेस्ट दैट फ्रीडम ?"

"आइ होप नोट।"

एकाएक एयर होस्टेस की आवाज सुनायी पड़ी, "मे आई हैव योर एटेंशन प्लीज। काइन्डली फैसन योर सीट बेल्ट एण्ड स्टॉप स्मोकिंग। यू विल बी शॉर्टली लैण्डिग एट फ्रैंक फोर्ट। लोकल टाइम इज''''"

एक बार खिड़की से बाहर की ओर निगाह दौड़ाते ही राइन के पार का दृश्य दिखाई पड़ा। इसी बीच हम फ्रैंक फोर्ट पहुँच गये हैं ?

"पहुँच गये का मतलब ? थोड़ी देर बाद ही फ्रैंक फोर्ट छोड़कर चले जायेंगे।"

फ्रैंक फोर्ट हवाई अड्डे को विमान ने जैसे ही छुआ, ऐसा लगा जैसे जिन्दगी की रफ्तार हवाई जहाज से भी ज्यादा है। ऐसा न होता तो मैं इस तरह स्वदेश लौटकर जाती ?

एयर क्राफ्ट ने जैसे ही धरती का स्पर्श किया, मिस्टर वाल ने कहा, "सो यू आर इन जर्मनी।"

"सो यू विल बी इन इण्डिया आफ्टर कॉपल ऑफ आवर्स।"

मिस्टर वाल ने मुसकराते हुए कहा, "इण्डिया लोग चाहे जहाँ भी हों, वे इण्डिया के अलावा और कुछ सोच ही नहीं सकते।"

"अपने देश के बारे में सोचना क्या अन्याय है ?"

"अन्याय नहीं है, मगर हमेशा अपने देश के बारे में ही सोचना क्या ठीक है ?"

"हम क्या हमेशा अपने देश के बारे में ही सोचते हैं ?"

"ऑफ कोर्स !" मिस्टर वाल ने मेरी ओर ताकते हुए कहा, "आप लोग चाहे जिस किसी देश में क्यों न रहें, अपने देश के खान-पान और कपड़े-लत्ते के अलावा कुछ भी पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि अपने स्वदेश वासियों के अलावा किसी दूसरे देश के आदमी को अपना मित्र भी नहीं बना पाते हैं।"

हवाई जहाज रनवे में दौड़ते-दौड़ते थक गया है। उसकी रफ्तार कम हो गयी है। मैंने एक बार खिड़की से बाहर की ओर देखा और उसके बाद दृष्टि को अपने पास खींच लिया। मिस्टर वाल से पूछा, "और कोई शिकवा-शिकायत है ?"

"रोजगार कर पैसा कमाने के बावजूद उसे खर्च न कर स्वदेश पैसा भेजना आप लोगों का एक दूसरा गुण है।"

मैं मुसकरा दी। कहा, "आप लोगों के फादर और फोर फादर्स, जिन लोगों ने हमारे मुल्क में एक लम्बा अरसा गुजारा था उन लोगों में इन गुणों के अलावा और बहुत सारे गुण थे—यह बात ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस की बहुत-सी पुस्तकों में पढ़ने को मिली है।"

हवाई जहाज रनवे से निकलकर लगभग एप्रेन एरिया में चला आया है। दो-चार मिनटों के दरमियान ही एप्रेन एरिया पार कर वे में आकर खड़ा हो जायेगा। मिस्टर वाल ने जबरन हँसते हुए कहा, "आपको डिप्लोमैटिक सर्विस ज्वाइन करना चाहिए था।"

"क्यों ?"

एक तो आप खूबसूरत युवती है उस पर हंसते-हँसते इतने खूबसूरत ढंग से दूसरे को पराजित कर देती हैं कि डिप्लोमैट होने से आप तरक्की कर जातीं।"

हममें से जो लोग सात समुद्र तेरह नदी पार कर विलायत इसलिए पहुँचे हैं कि उन्हें अन्न और पैसा प्राप्त हो, उन लोगों को क्रियाशील जीवन के तकाजे के कारण अंग्रेजों के सम्पर्क में आना पड़ता है। लेकिन कारखाने के बाहर, ऑफिस खत्म होने के बाद समाज के विशाल क्षेत्र में हमें अंग्रेजों के सम्पर्क में आने का मौका नहीं मिलता है। आर्थिक दैन्य के कारण हम उनके नजदीक जाने में असमंजस महसूस करते हैं। बीते दिनों के इतिहास का स्मरण कर वे भी हमें अपने पास ला नहीं पाते। यही वजह है कि अंग्रेजों के देश में वास करने के बावजूद हम अंग्रेजों से सबसे अधिक दूरी बनाये रहते हैं। जर्मन, फ्रांसीसी, डेनिश, स्पेनी, इतालवी, अमरीकी और हंगरीवासियों से हम हृदय खोलकर मिलते-जुलते हैं, दोस्ती कर सकते हैं, एक जैसी मर्यादा के साथ हँस सकते हैं, बहस-मुबाहसा कर सकते हैं मगर अँग्रेजों के साथ ऐसा किसी भी हालत में नहीं कर सकते हैं।

तरह-तरह की नौकरी करने के बाद मुझे पोस्ट ऑफिस में नौकरी मिली। हे मार्केट स्ट्रीट के पोस्ट ऑफिस के काउन्टर पर रहने के कारण बहुत सारे मुल्कों के अनगिनत लोगों से मेरी मुलाकात होती थी। जान-पहचान न रहने के बावजूद कोई-कोई मुसकरा देता था, कोई-कोई दो-चार बातें भी कर लेता था लेकिन किसी दिन कोई अंग्रेज युवक या युवती मुझसे बातें नहीं करता था और न ही मुसकराकर धन्यवाद देता था। इस मर्यादा को देने में वे बड़ी ही कंजूसी दिखाते हैं, उनके मन में असमंजस का भाव पैदा होता है। हे मार्केट के चारों तरफ सैलानियों का अड्डा रहता है। पोस्ट ऑफिस से निकल अमेरिकन एक्सप्रेस के किनारे से आगे बढ़ते ही बहुत सारे सैलानियों से मुलाकात होती थी। कभी-कभी दो-चार व्यक्ति मुझे पहचान लेते थे, बातें करते थे, थोड़ा-बहुत हँसी-मजाक करते थे या फिर मुझे जबरन इण्डिया या सिलोन टी सेन्टर में चाय पिलाने ले जाते थे। किसी अंग्रेज से इस तरह के व्यवहार की प्रत्याशा करना कल्पना के बाहर की बात है। इना रोस्तवान नामक एक हंगरीवासी सैलानी ने ही माला से मेरी जान-पहचान करा दी थी।

यह भी एक मजेदार बात है। मैं काउन्टर के अन्दर रहती हूँ, रोस्तवान काउन्टर के बाहर से एक पौंड का नोट बढ़ाकर टिकट खरीदता है। कभी-कभी वह दो-चार सवाल करता है और मैं उनका

जवाब देती हूँ। रोस्तवान हँसता है और धन्यवाद देता है। एक दिन पोस्ट ऑफिस से निकलते ही रोस्तवान से मुलाकात होती है। दो-चार साधारण शिष्टता की बातें करने के बाद ही एक बार मेरे सिर से पैर तक आँख दौड़ाते हुए बोला, "अच्छा, यह तो बताइये कि आप किस देश की रहनेवाली हैं ?"

"इण्डिया।"

"आइ सी।" रोस्तवान ने खुशियों में आकर ताली बजाते हुए कहा, "यही वजह है कि आप लोग इतने शिष्ट हैं।"

"आप लोग का मतलब ?"

"ठीक आपकी ही तरह कपड़ा-लत्ता पहनने वाली एक युवती से मेरी जान-पहचान हुई है……"

"सच ?"

"हाँ, लेकिन मैंने उनसे कभी नहीं पूछा कि वह किस देश की रहने वाली है।"

रोस्तवान महज दो-तीन हफ्तों के लिए लन्दन आया था मगर उससे जान-पहचान न हुई होती तो संभवतः जिन्दगी में माला से कभी मुलाकात नहीं हुई होती। मुलाकात न हुई होती तो अच्छा था। नये सिरे से एक और औरत के इतिहास की जानकारी नहीं हुई होती। मरदों की मौज-मस्ती के कारण, उनकी वासना का शिकार होने के कारण कितनी औरतों को बरबादी के रास्ते पर चलना पड़ता है, उसकी कोई सीमा नहीं।

द्वितीय विश्वयुद्ध जब समाप्त हुआ तो उस समय कैप्टन राय मिडल ईस्ट थियेटर में थे। पहले उन्होंने सोचा था कि कलकत्ता लौटकर प्राइवेट प्रैक्टिस करेंगे और मातृहीन माला को देख-रेख में ही जिन्दगी के बाकी दिन गुजार देंगे। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। कैप्टन राय लड़ाई खत्म होने के बाद स्वदेश लौटने के बजाय मित्रों के साथ लन्दन चले गये। माला दादी के पास ही रह गयी। पाँच साल के बाद कैप्टन राय जब कलकत्ता आये उस समय माला स्कर्ट-ब्लाउज पहन स्कूल जाने लगी। दादी और स्कूल की सहेलियों की अपनी छोटी-सी दुनिया में वह आनन्द से जीवन जी रही थी। उस आनन्द की दुनिया को छोड़कर वह किसी भी हालत में पिता के साथ विलायत जाने को राजी नहीं हुई।

इसी तरह कुछ और वर्ष बीत गये। माला स्कूल से निकल कर कॉलेज में भर्ती हुई। छोटी मौसी भी मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई खत्म कर वाहर निकली। कैप्टन राय पुनः कलकत्ते आये। छोटी मौसी एम० आर० सी० पी० पढ़ने कैप्टन राय के साथ विलायत गयी लेकिन माला नहीं गयी। जा नहीं सकी। जाती कैसे ? बूढ़ी दादी को छोड़कर कहाँ जाती ? दादी वगल में न रहती तो उसे रात में नींद नहीं आती थी।

तीनेक महीने बाद छोटी मौसी रूमा की चिट्ठी आयी—अन्ततः इस निर्णय पर पहुँची हूँ कि एम० आर० सी० पी० नहीं पढ़ूँगी। इसीलिए नौकरी मिलने पर ग्लासगो जा रही हूँ। सबको आश्चर्य हुआ। तय हुआ था, वहनोई के पास रहकर ही पढ़ेगी। लेकिन अचानक पढ़ाई बन्द कर नौकरी करने का इरादा लिए ग्लासगो जाने का कौन-सा कारण हो सकता है। लन्दन में भी तो नौकरी कर सकती थी। लन्दन में रहती तो कैप्टन राय देख-रेख कर सकते थे। कलकत्ते से दोनों के पास लम्बी चिट्ठियाँ भेजी गयीं परन्तु किसी ने ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया। सबके मन में जिज्ञास बनी रही।

लगभग एक वर्ष बाद माला को कॉलेज के पते पर छोटी मौसी का एक पत्र मिला—सोचा था, तुझे पत्र नहीं लिखूँगी, लेकिन आखिरकार बिना लिखे नहीं रह सकी। तू मेरा एक अनुरोध पालन करना। वह यह कि एकाएक लन्दन चली मत आना। और यदि आना ही पड़े तो मुझे सूचना भेज देना। मैं लन्दन एयरपोर्ट पर आकर तुझसे मिल लूँगी। मुझसे मिले वगैर अपने पिता के यहाँ मत जाना। हो सकता है कि तुझे दुःख उठाना पड़े। पत्र के अन्त में एक छोटा-सा अनुरोध था कि इस चिट्ठी के बारे में घर के किसी व्यक्ति से चर्चा मत करना।

दूसरे ही दिन माला ने छोटी मौसी को पत्र लिखा—आपकी चिट्ठी मिलने के बाद मुझे बार-बार यही लग रहा है कि एक वार मुझे लन्दन जाना ही चाहिए। बचपन में ही मातृहीन हो जाने के बावजूद आप लोगों के कारण मुझे कोई दुःख या कष्ट झेलना नहीं पड़ा है। बल्कि आप लोगों के स्नेह और प्यार के कारण मेरे दिन बड़े ही सुख और आनन्द से बीते हैं। अब लग रहा है कि मेरे सुख की अवधि समाप्त होने पर है।

रोस्तवान आर्टिस्ट है। वह अपने कलाकार मित्रों के एकदल के

साथ योरोप का भ्रमण करने के सिलसिले में लन्दन आया था। लन्दन में वह यहाँ-वहाँ बैठकर स्केच बनाता और चेहरे का नयी किस्म का पोर्ट्रेट बनाता था। एडमिरैलटी आर्च की बगल से तेज कदमों से चलने के दौरान रोस्तवान माला के पास पहुँचा था, "एक्सक्यूज मी ! मेरा नाम है इना रोस्तवान आप यदि अनुमति दें तो आपका एक पोर्ट्रेट स्केच तैयार करूँ।"

माला को आश्चर्य नहीं हुआ था। लन्दन की सड़कों पर अनेक कलाकार दीखते हैं। हालांकि आज तक उससे किसी कलाकार ने इस तरह का अनुरोध नहीं किया है लेकिन फिर भी उसे बहुत से सैलानियों के अनुरोध पर अपना फोटो खिंचवाना पड़ा है। रोस्तवान की बात सुनकर माला मुसकरायी और धन्यवाद देते हुए उससे कहा, "बट आइ एम सॉरी, आज मेरे पास वक्त नहीं है।"

"आज अगर यह काम न हो पाता है तो इतने बड़े लन्दन शहर में फिर कभी आपसे मुलाकात हो सकती है ?"

"कल ठीक साढ़े पाँच बजे मैं यहाँ आ जाऊँगी।"

"सचमुच आयेंगी ?"

"हाँ।"

रोस्तवान ने बाद में मुझे बताया था, "पहले-पहल माला को देखा तो वह बड़ी ही हँसमुख और सुखी युवती लगी लेकिन पोर्ट्रेट स्केच बनाने के समय गौर से उसके चेहरे की ओर देखने पर लगा, संभवतः वह सुखी नहीं है।"

रोस्तवान ने जब माला से मेरी जान-पहचान कराई तो उसकी ओर देखते ही मुझे लगा कि वह बड़ी ही थकी-मांदी है।

रोस्तवान अब भी मुझे पत्र लिखता है और माला के बारे में पूछ-ताछ करता है। माला को चिट्ठी लिखता है तो उसके नीचे मुझे भी दो-चार पंक्तियाँ लिखता है। इंगलैंड में रोस्तवान जैसा स्नेही मित्र मिलना असंभव है। अंग्रेज कर्त्तव्य का पालन करते हैं मगर सहानुभूति का प्रदर्शन करें, ऐसी उदारता उनमें नहीं है।

एप्रेन एरिया पार कर हवाई जहाज बे में आकर खड़ा हुआ। तत्क्षण तमाम यात्री उठकर खड़े हो गये। मिस्टर बाल ने हैट रैक से

मेरा कोट उठाकर मुझे पहना दिया और मैंने उन्हें हृदय से धन्यवाद दिया, "सो काइन्ड ऑफ यू !"

जानती हूँ, यह पुरुषों का कर्त्तव्य है। लेकिन मिस्टर वाल से व्यंग्य करने के कारण मैंने उनसे इस प्रकार की शिष्टता की उम्मीद नहीं की थी। मुझे उस प्रकार धन्यवाद देते हुए देखकर उन्होंने हँसते हुए कहा, "चाहे जो हो आप जवान औरत हैं और उस पर भारतीय। शायद भावावेश में आकर आपने मुझे आवश्यकता से अधिक धन्यवाद दे डाला।"

मैंने कहा, "नो, यू डिजर्व इट।"

वाल साहब ने मेरे कान के पास अपना मुँह ले जाकर फुसफुसाते हुए पूछा, "डु आइ डिजर्व एनथिंग एल्स ?"

मैंने जबरन हँसी रोककर कहा, "अण्डर कनसिडरेशन।"

यात्री उतरने लगे हैं। हम भी आहिस्ता-आहिस्ता आइल होकर आगे बढ़ते गये। एरो रैम्प से नीचे उतरने के बाद दूर से टर्मिनल बिल्डिंग पर दृष्टि जाते ही मेरा मन उदास हो गया। लन्दन छोड़कर आने के कारण मन में पीड़ा का अनुभव हुआ। लगा, मैंने गलती की है। किसके लिए और क्यों स्वदेश जा रही हूँ ? जिस दिन मुझे पहेल-पहल मालूम हुआ कि कनाडा में रंजन की पत्नी है, लड़की है, उसी दिन और उसी क्षण भारत लौटने के लिए मेरा प्राण सचमुच ही बेचैन हो उठा था। लेकिन आज, इतने दिनों के बाद किसके लिए इतने पौंड खर्चकर स्वदेश जा रही हूँ ? स्वदेश में मेरा है ही कौन ? माँ नहीं है, भैया पराया हो गया। नये वर्ष और दशहरे के एक-दो एरोग्राम के लेन-देन के अलावा भैया के साथ और कोई संबंध नहीं रह गया है। कलकत्ते में और जितने बाकी सगे-संबंधी हैं, उनकी दृष्टि में मेरा कोई मूल्य नहीं है और मैं भी उन्हें कोई महत्त्व नहीं देती। तब क्या सिर्फ विवेक की खातिर मैं स्वदेश जा रही हूँ ?

किसी-किसी युवती के जीवन में वैशाख की आँधी की तरह आँधी आती है और वह उसे उड़ा कर ले जाती है। जिस तरह कि प्रिया-प्याली को उड़ाकर ले गयी थी। मेरी जिन्दगी में कभी इस तरह की वैशाख की आँधी नहीं आयी थी इस तरह उड़कर स्वयं को खो देने में एक प्रकार का आनन्द रहता है, ऐश्वर्य-प्राप्ति का सुख रहता है। मुझे उस आनन्द और ऐश्वर्य प्राप्ति का सुयोग नहीं मिला है। शायद विवेक

आज भी मुझे, प्यार करता है। लेकिन वह क्या उदयन की तरह उन्मत्तता के साथ प्यार कर सकेगा ? जिस मर्द के सिर पर प्यार के लिए जुनून सवार नहीं होता, जो प्यार के लिए सीमा से बाहर नहीं जाता उसके मंगल के लिए माँग में सिंदूर लगाया जा सकता है लेकिन मन में तृप्ति का अहसास नहीं होता।

इसके अलावा बाल साहब ने हालांकि मुझे मिस रनु कहकर संबोधित किया है लेकिन दरअसल मैं मिस नहीं हूँ। मेरी शादी हुई है, पति के साथ मैंने घर-गृहस्थी बसायी है। इस देह पर उसकी वासना का चिह्न स्पष्ट न रहने पर भी अस्पष्ट नहीं है। लन्दन के कुछ लोग मेरे बारे में हालांकि फुसफुसाकर चर्चा करते हैं लेकिन अतीत के इस इतिहास को वहाँ अहमियत नहीं दी जाती है। वहाँ वर्तमान ही प्रमुख अतीत नहीं है लेकिन भारत ? वहाँ मेरे व्यतीत के इतिहास को कोई नहीं भूलेगा, कोई मुझे क्षमा नहीं करेगा। समाज के हर कोने में मेरे संबंध में चर्चा चलेगी। उस चर्चा से विवेक के मन में कोई सवाल नहीं उठेगा ? कोई दुविधा पैदा नहीं होगी ? संकोच नहीं जगेगा ? कहीं मोह के नशे में बीते दिनों की दुर्बलता की स्मृति को दुहराकर कुछ दिनों तक अपने पास रखकर उसके बाद मुझे अँधेरे में ढकेलकर विवेक खो तो नहीं जायेगा ?

"एक्सक्यूज मी, विल यू हैव ए ड्रिंक ?"

बाल साहब की बात सुनकर मैं चौंक पड़ी। और-और यात्रियों के साथ मैं कब टर्मिनल बिल्डिंग के ट्रांजिट लाउंज पहुँच गयी हूँ, पता नहीं चला। "नो, थैंक यू। आइ एम ऑलरेडी ड्रिंक।" मैंने कहा।

बचपन में मध्याकर्षण शक्ति के विषय में पढ़ा है। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, शनि, शुक्र, वृहस्पति—तमाम ग्रह-उपग्रहों में अपनी-अपनी मध्याकर्षण शक्ति है। इसी मध्याकर्षण शक्ति के कारण हम खोते नहीं हैं। दुनिया के हर व्यक्ति में चुंबकशक्ति और विद्युत शक्ति है। शायद इसी वजह से आदमी आदमी को अपने पास खींचता है, आदमी-आदमी को प्यार करता है। घर-गृहस्थी का निर्माण करता है। समाज की रचना होती है। इसके अलावा यह भी सुना है कि दो ग्रहों और उपग्रहों की मध्याकर्षण शक्ति के बीच के एक विशाल अंचल में किसी ग्रह या उपग्रह की मध्याकर्षण शक्ति नहीं है। वास्तविक शून्यता वहीं है। आदमी वहाँ तैर सकता

किसी भी ग्रह-उपग्रह की मध्याकर्षण शक्ति उसे वहाँ से न खींचकर लाती है न ही ला सकती है।

मैं क्या उसी प्रकार के महाशून्य में वास करती हूँ ? मैं भी जैसे ग्रह से ग्रहान्तर में यात्रा कर रही हूँ। कुछेक साल लन्दन में बिताने के बाद अब उस शहर को छोड़कर जाने में खराब लग रहा है। अब भी योरोप में ही हूँ। पश्चिम जर्मनी ब्रिटेन से अपेक्षाकृत आधुनिक है, सुन्दर है। कहा जा सकता है कि इन दोनों देशों के बीच तुलना नहीं हो सकती है। इस फ्रैंकफोर्ट हवाई अड्डे से क्या हिथरो एयरपोर्ट की तुलना हो सकती है ? नहीं, नहीं हो सकती है। यह कितना अधिक आधुनिक और सुन्दर है ! सब कुछ ताम-झाम और चमक-दमक लिये है। बार, रेस्तराँ, ड्यूटी फ्री शॉप—सब कुछ हिथरो से कहीं अधिक उन्नत है। मनुष्य के भोग्य की सामग्रियों की जैसे चारों ओर लूट हो रही हो। हिथरो में भी सब कुछ है मगर प्रचुर मात्रा में नहीं। वहाँ लोग आधुनिकता के सैलाब में बह नहीं जाते हैं। हिथरो में लन्दन का आदमी खोजने से मिल जाता है। वहाँ के समाज में लोगों की एक भूमिका है। लेकिन इन देशों में मनुष्य की आवश्यकता जैसे समाप्ति पर आ गयी है। इस पश्चिम जर्मनी से शुरू कर स्कैण्डनेविया के तमाम देशों में आदमी समाज का नायक नहीं, बल्कि एक साधारण पार्श्व चरित्र है। यहाँ भोग की वस्तुओं की बहुतायत है लेकिन मन के आनन्द और प्राणों की मुक्ति का सुयोग सीमित है। लन्दन को हालांकि मैं पीछे छोड़ आयी हूँ परन्तु अब भी उसके प्राणों के खिचाव और मध्याकर्षण शक्ति का अनुभव कर रही हूँ। इसके अलावा श्रीकान्त को छोड़कर आना भी अच्छा नहीं लग रहा है। मन में एक प्रकार की शून्यता और पीड़ा का अनुभव कर रही हूँ। जरूरत ही क्या थी ग्रह से ग्रहान्तर में यात्रा करने की ?

ब्रिटेन और भारत, श्रीकान्त और विवेक के बीच मैं खड़ी हूँ। दो ग्रहों की मध्याकर्षण शक्ति के बीच तैर रही हूँ। जैसे मैं परित्यक्ता और वर्जिता होऊँ। मेरी शिराओं में अवश्य ही रक्त का संचालन हो रहा है लेकिन तमाम स्नायु जैसे अवश, जड़ और शिथिल हो गये हैं। मैं जीवित हूँ मगर मुझमें प्राण नहीं हैं। मैं खामोश बैठी हूँ। मन ही मन सोच रही हूँ। सोच रही हूँ अपने व्यतीत और भविष्य के बारे में। मैं क्या थी, कहाँ थी और अब कहाँ जा रही हूँ। बहुत ही धीरे-धीरे, डरी सहमी सी मेरी छाती धड़क रही है, मैं साँस ले रही हूँ और उसे बाहर फेंक रही हूँ, पलकें

भी बीच-बीच में झपकने लगती हैं। इसके अतिरिक्त मैं अचल, स्थिर हूँ। लेकिन मन के भीतर, प्राणों के आँगन में, छाती के अनजाने गह्वर में भी कँपकँपी का अनुभव कर रही हूँ। पूरा जिस्म जल रहा है।

चाहे कोई कुछ कहे लेकिन धरती की मध्याकर्षण शक्ति के बीच रहकर किसी भी आदमी के लिए एकबारगी अलगाव की स्थिति में, संगी-साथी के बिना रहना मुमकिन नहीं है। हर आदमी को कोई न कोई अवलंबन या साथी की आवश्यकता पड़ती है। शैशव, किशोर, यौवन और वृद्धावस्था—हर समय चाहिए। संसार त्यागकर संन्यासी होने पर भी गुरु और गुरुभाई की आवश्यकता पड़ती है। दो ग्रहों की मध्याकर्षण शक्ति के बीच आदमी के लिए विचरण करना संभव नहीं है। ग्रह से ग्रहान्तर की यात्रा के क्रम में इस फ्रांकफोर्ट हवाई अड्डे के ट्रांजिट लाउंज में चुपचाप बैठे रहने पर मुझे बार-बार लग रहा है कि मैंने शायद लेखा-जोखा में कोई बड़ी गलती की है।

मैं दिल्ली क्यों जा रही हूँ? किस वस्तु की आशा में? मेरे जैसा भाग्य-परिवर्त्तन का दौर बहुत सारी औरतों के जीवन में आया है और बहुतों के जीवन में आयेगा। हमलोगों के देश और समाज के हर परिवार की किसी न किसी औरत के भाग्य में उलट-फेर का दौर आता ही रहता है। मेरी बड़ी मौसी की छोटी लड़की का नाम प्रीति है। वह मेरी हमउम्र है। उसने रसायन शास्त्र में ऑनर्स लेकर बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। सबको मालूम था और आशा थी कि प्रीति एम० ए० में दाखिल होगी, अच्छी तरह परीक्षा पासकर किसी कॉलेज में लेक्चरर बहाल होगी। उसके बाद शादी होगी। लेकिन सो सब कुछ भी नहीं हुआ। बी० एस-सी० पास करते ही मौसाजी ने उसकी शादी करा दी। आज वह सास-ससुर के जुल्म और पति की अवहेलना बरदाश्त कर जिस तरह जीवन जी रही है, मैं उस तरह जी नहीं पाती। मुझमें उतनी सहन-शक्ति नहीं है। उतनी सहन-शक्ति होती तो मैं क्या रजन को छोड़कर चली आती? प्रीति जैसी मैं पतिव्रता होती तो अनगिनत अवहेलना अपमान और ग्लानि बरदाश्त कर रजन की दासी बनकर रहती। मैं खामोश रहती हूँ, ज्यादा बातें नहीं करती, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मुझमें अपार सहन-शक्ति है। मैं सब कुछ त्याग

सकती हूँ लेकिन मर्यादा नहीं छोड़ सकती हूँ। शुरू में कुछ न जाने पर भी बाद में धीरे-धीरे मुझे पता चल गया था कि रंजन शिक्षित नहीं है, उसकी रुचि परिमार्जित नहीं है। मुझे पता चल गया था कि वह ए० सी० वर्क शॉप का निहायत एक मामूली कारीगर है। यह सब जानने के बाद मन ही मन बहुत दुखित हुई थी, यह सच है लेकिन फिर भी उसे सम्मान देने और प्यार करने में मैंने कोई कंजूसी नहीं की थी। डोबेलस से अच्छा-अच्छा रेकार्ड ले आती थी, साल-गिरह पर उसे हेग डिम्पल ह्विस्की लाकर देती थी। और भी बहुत सारी चीजें देती थी। दूँ क्यों नहीं ? पति चाहे शिक्षित या अशिक्षित जो भी रहे, उसे सब कुछ सौंप देने में सिर्फ आनन्द ही नहीं मिलता बल्कि ऐश्वर्य प्राप्ति का सुख प्राप्त होता है। सारा कुछ जानने-सुनने और सारा कुछ अर्पित कर देने के बाद जिस दिन मुझे पता चला कि मैं उसके जीवन के लिए निहायत एक औरत हूँ, उसके आनन्द की संगिनी हूँ तो उस दिन अपने आपको संयत नहीं रख सकी। मैंने विद्रोह कर दिया। मुझे जो मर्यादा रंजन से प्राप्त नहीं हुई थी, उसी मर्यादा के लोभ में क्या मैं दिल्ली विवेक के पास जा रही हूँ ?

मेरी शादी के बारे में विवेक को कोई पता न था। प्याली से मेरी शादी और विलायत जाने की खबर पाकर उसने डायरी में मेरे लन्दन के पते को लिख लिया था। कुछ दिन बाद ही मुझे पत्र मिला। छोटा-सा पत्र था परन्तु पढ़ते ही समझ गया कि वह रूठा हुआ है। मैंने लगे हाथ उत्तर दिया—आपका पत्र पढ़ते ही समझ गयी कि आप रूठे हुए हैं, लेकिन आप मुझसे रूठ सकते हैं, यह नहीं जानती थी। शायद मैं बहुत-कुछ नहीं जानती थी। ठीक कह रही हूँ न ?

फिर पत्र आया—इतनी जल्दी तुम्हारा पत्र मिल जायेगा, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। तुम्हारा पत्र पाकर लग रहा है कि तुम सब कुछ समझती थीं, सिर्फ उसकी गहराई को नहीं समझती थीं। शायद इसीलिए तुम्हारी जिन्दगी में इतनी बड़ी घटना घटित हुई और मुझे इसका पता नहीं चला।

पत्र आने पर उत्तर देना चाहिए। देती भी हूँ। उसके बाद फिर चिट्ठी आती है। उस पत्र का भी उत्तर देती हूँ। इसी तरह चल रहा है। उसके बाद रंजन जब कनाडा चला गया तो मैंने विवेक को एक लंबा पत्र लिखा। सारी बातों की सूचना देते हुए मैंने अन्त में लिखा—

आपको यह पत्र क्यों लिख रही हूँ, मालूम नहीं। अपने दुःख का इतिहास और उतार-चढ़ाव की कहानी अपने मन में दबाकर नहीं रख पा रही हूँ, मुझे बस इतना ही मालूम है। असह पीड़ा का अनुभव करती हूँ। लगा, किसी के सामने सारी बातें व्यक्त कर दूँ तो हो सकता है कि थोड़ी-सी शान्ति मिले और असह पीड़ा में थोड़ी-बहुत कमी आ जाये। इसी उम्मीद को लेकर आपको इतना कुछ लिखा है। इस क्षण सोच नहीं पा रही हूँ कि और किसे यह पत्र भेज सकती थी।

भले ही देर से मगर दो सप्ताह के अन्दर ही विवेक ने मेरे हर पत्र का उत्तर दिया था। इस पत्र का जवाब मुझे दो महीने के बाद मिला था। इतने दिनों से उसका उत्तर न पाकर मैं कितना-कुछ सोच रही थी! अन्ततः उसके पत्र से पता चला कि उसे नयी नौकरी मिल गयी है और वह दिल्ली चला आया है। दिल्ली पहुँचते ही उसे एकाध महीने के लिए बाहर का चक्कर लगाना पड़ा था। लिहाजा यह पत्र उसके हाथ में देर से पहुँचा। बहरहाल उसने मुझे बड़ा ही अच्छा पत्र लिखा था—आदमी दुःख के दिनों में भाग्य के उलट-फेर के सामने खड़े होने पर उसे ही याद करता है जो उसका सबसे अधिक निकट का व्यक्ति हो। उस व्यक्ति को वह अपने बिलकुल निकट पाना चाहता है। तुमने अपने विनाश के दिन में सबसे पहले जो मुझे याद किया है, इसके लिए मैं आभारी हूँ। मुझे मालूम नहीं था कि तुम मुझे इतना अपना समझती हो। अब यदि मैं तुम्हें अपना परम आत्मीय समझकर आगे बढ़ आऊँ तो क्या तुम रुकावट डालोगी? आज से अपने तमाम भले-बुरे की जिम्मेदारी क्या तुम मेरे हाथों में सौंप नहीं सकती?

इसके बाद कितनी ही चिट्ठियों का आदान-प्रदान हुआ। चिट्ठी के माध्यम से ही हममें घनिष्ठता आयी। आपसे हम तुम पर उतर आये मगर मैं यह पूछ नहीं सकी कि उसने शादी की है या नहीं। या फिर शादी की है मगर सुखी क्या नहीं हो पाया है? विवाहित जीवन में सुखी न होने के कारण ही वह क्या मुझे अपने निकट पाना चाहता है? क्या वह बता सकता है कि किस अधिकार के बल मैं उसके निकट जाऊँ? उसके जीवन में मैं अनिश्चय का अँधेरा खींच लाऊँ? सिर्फ यह सब बात ही मैंने नहीं लिखी थी। बाकी सारा कुछ लिखा है और जाना है।

एक चिट्ठी की बात तीव्रता के साथ याद आ रही है।""3

हो रुणु, कुछ दिन पहले दफ्तर के काम से हिमाचल प्रदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया है। उसके बाद कांगड़ा से डलहौजी लौटने के दौरान धर्मशाला के टूरिस्ट बंगलों में अप्रत्याशित तौर पर उदयन से मुलाकात हो गयी। हम दोनों एक-दूसरे को पहचानते थे मगर हमारा प्रत्यक्ष परिचय नहीं था। डाइनिंग हॉल में लंच लेने के दौरान अचानक हम एक-दूसरे को देखकर चौंक पड़े। ज्यादा से ज्यादा एक मिनट के लिए। उसके बाद वह मुसकराता हुआ आगे आया और बोला, "मैं उदयन हूँ। आपकी बहन को प्यार करता था। आप मुझे पहचान रहे हैं?"

मैंने कहा, "जरूर पहचानता हूँ।" उसके बाद कहा, "आपसे परिचित होने की इच्छा बहुत दिनों से थी लेकिन यह नहीं सोचा था कि इतने दिनों के बाद कलकत्ते से इतनी दूरी पर इस तरह मुलाकात हो जायेगी।"

उदयन हँसने लगा। बोला, "विवेक बाबू, आदमी को अपनी जिन्दगी में कब किससे मुलाकात हो जाती है, कहना मुश्किल है। हर साल तेईस मई को मैं इस टूरिस्ट बंगलों में क्यों आता हूँ, आपको पता है?"

"क्यों?"

"प्याली को प्राप्त करने के बावजूद जब मैंने खो दिया तो फिर कलकत्ते में टिकना मेरे लिए दुश्वार हो गया। कालका मेल पर सवार होकर सीधे शिमला चला गया मगर हिमालय के निविड़ सान्निध्य में भी मेरे मन को शान्ति नहीं मिली।…"

मैं प्याली का बड़ा भाई हूँ फिर भी उसने बेहिचक मुझसे कहा, "आपकी बहन ने मुझे जो आनन्द और शान्ति दी है वह क्या मुझे हिमालय दे सकता है?" उदयन एक तरह की अजीब हँसी हँस दिया। उसके बाद कहा, यह नामुमकिन है।"

"आप यहाँ क्यों आते हैं यह तो…"

"बताता हूँ। शिमला से रवाना होकर मैंने घूमना शुरू किया। तेईस मई की सुबह इस टूरिस्ट बंगलों में पहुँचने पर पता चला कि दोपहर के पहले कमरा मिलना मुश्किल है। मैं सामने के इस बरामदे पर बैठकर चाय-सिगरेट पीते हुए एक पुस्तक पढ़ रहा था।…"

"उसके बाद?"

"ग्यारह बजे एकाएक देखा कि प्याली और उसके पति अन्दर से बाहर निकल कर आये और बरामदे पर खड़े हो गये....."

"शुरू में मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ मगर आदमी के जीवन में बहुत सारी अविश्वसनीय घटनाएँ भी घटित होती हैं।" उदयन ने अचानक मेरे हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा, "यकीन कीजिये विवेक बाबू, वे लोग आनन्द मनाकर जिस कमरे से बाहर आये, चौकीदार मुझे उसी कमरे में ले गया।"

पत्र के आखिर में विवेक ने लिखा है—"उदयन से सीखा और जाना है कि प्रेम किसे कहते हैं। उसके सामने खड़े होने पर मैंने अपने आपको इतना क्षुद्र और बौना महसूस किया कि यह बात तुम्हें लिखकर समझा नहीं पाऊँगी। अच्छा रुनु, मैं क्या कभी उस तरह का प्रेम नहीं कर पाऊँगा ?

"बहुत बातें सुन चुकी हूँ, बोल चुकी हूँ मगर आज दिल्ली जाने के दौरान लग रहा है, नहीं, कोई बात न बोल सकी हूँ और न ही सुन सकी हूँ। फिर जा क्यों रही हूँ ? दूर से संवेदना प्रकट करना या प्यार करना मुश्किल बात नहीं है लेकिन समाज के अनगिन लोगों की आलोचना अनसुनी कर मुझ जैसी भाग्यहीन युवती को सम्मान के साथ जीवन में स्वीकार कर लेना आसान काम नहीं है। विवेक क्या यह कर सकेगा ?

मालूम नहीं। सचमुच मालूम नहीं है। किसी को अच्छी तरह जानने-पहचानने के लिए जितने दिनों तक घनिष्ठता के साथ मिलने-जुलने की आवश्यकता पड़ती है, विवेक से उस रूप में मैं कभी मिल-जुल नहीं सकी हूँ। प्याली को बिना जताये, किसी भी व्यक्ति को समझने का मौका दिये बगैर कलकत्ते मे विवेक और मैं मिलते-जुलते रहे हैं, साथ-साथ घूमते-फिरते रहे हैं और सिनेमा देखते रहे हैं। अच्छा जरूर लगता था मगर उसे अपने निकट पाने के लिए मन में कभी बेचैनी का अहसास नहीं होता था। प्यार सिर्फ अच्छा ही नहीं लगता, वह आदमी के जीवन में पूर्णता और तृप्ति ले आता है। प्यार तुच्छता के अँधेरे को बेधकर महान जीवन की ओर ले जाता है। विवेक को अपने निकट पाकर मैंने कभी उस पूर्णता, तृप्ति और तुच्छता की ग्लानि से मुक्त महान जीवन का स्वाद नहीं पाया था। पाने की प्रत्याशा भी नहीं की थी।

विवेक को मैंने मित्र के रूप में ही स्वीकार किया था। उसी रूप में उससे मिलती थी और यह अच्छा ही लगता था। क्यों नहीं लगेगा? श्रीकान्त की तरह लम्बा-चौड़ा न होने के बावजूद वह देखने में सुन्दर है। उसके चेहरे पर कौमार्य की सरलता देखकर मुझे बड़ा ही अच्छा लगता था। उसकी बातचीत और आचार-विचार देखकर साफ-साफ पता चल जाता है था कि वह औरतों के मामले में बिलकुल कोरा और अनुभवहीन है। यही वजह है कि उसका सहज-सरल ढंग से मिलना-जुलना और बातें करना मुझे बड़ा ही अच्छा लगता था। सरलता के कारण ही बालकों को लोग पसन्द करते हैं। कैशोर की शुरुआत में ही सरलता का वह सौंदर्य नष्ट होने लगता है। जवानी की देहरी पर पाँव रखते ही उस सरलता की अन्तिम किरण विदा हो जाती है। होना स्वाभाविक है। कठोर और निष्ठुर धरती के संपर्क में आते ही हर आदमी को बहुत कुछ खोना पड़ता है, विसर्जित करना पड़ता है। इतने दिनों के दरमियान विवेक में बेशक वह सरलता न होगी, मगर उन दिनों उसमें थी। सवेरे के सूर्य की तरह स्वच्छ-सरल दृष्टि से मेरी ओर बहुत देर तक ताकने के बाद वह कहता था, "तुम्हें देखते ही तुम्हें पाने की इच्छा जगने लगती है।"

मैं हँस देती थी।

"हँस रही हो? सच कह रहा हूँ रुणु, सवेरे की ओस की बूँद की तरह तुम सहज ही नहीं खो जाओगी।"

कलकत्ता छोड़कर लन्दन आने के बाद ही पत्रों के माध्यम में हम एक-दूसरे के निकट आये हैं। शायद मैं उसे प्यार भी करने लगी हूँ। हो सकता है कि दावे जताने लायक थोड़ा-बहुत अधिकार भी अर्जित कर लिया है। मन में आस्था और विश्वास पैदा न हुआ होता तो फिर दिल्ली के लिए रवाना होती ही क्यों? जितना कुछ विश्वास, आस्था या प्यार मैंने अर्जित किया है उसे ही पूंजी बनाने से क्या मेरे जीवन के अनिश्चय का अन्त हो जायेगा?

मालूम नहीं।

फिर लन्दन और श्रीकान्त को छोड़कर दिल्ली क्यों जा रही हूँ? इतना जरूर है कि श्रीकान्त को विवेक के बारे में कोई जानकारी नहीं है, साथ ही उसे यह भी नहीं मालूम है कि मैं किसी खास उम्मीद से दिल्ली जा रही हूँ या नहीं। औरतें बड़ी सावधान होती हैं। शायद

स्वार्थी भी। मैं भी कोई कम सावधान और स्वार्थी नहीं हूँ। यदि मैं सतर्क और स्वार्थी न होती तो श्रीकान्त को बगैर कुछ जताये विवेक के पास जाने के लिए रवाना होती ही क्यों?

छिः छिः! मैं इतनी तुच्छ हूँ! श्रीकान्त भले-बुरे का विवेचन किये बिना मेरे निकट आकर खड़ा हुआ है, स्वयं को मेरे हाथों में सौंप दिया है। विलायत के बंगाली और भारतीय शिक्षित होने के बावजूद संस्कार से मुक्त नहीं हैं। हम दोनों अन्तरंगता और घनिष्ठता के सूत्र में बँध गये हैं, यह बात किसी के लिए अनजानी नहीं है। इसके अलावा वह कोई काम लुक-छिपकर नहीं कर पाता है। लन्दन के तमाम लोगों को मालूम है कि वह मेरा प्रत्येक दिन का साथी है। बीच-बीच में मुझे बे-इन्तहा लज्जा जकड़ लेती है, मगर श्रीकान्त किसी की परवाह नहीं करता है।

"अच्छा श्रीकान्त, मिलादी ने क्या सोचा होगा?

"क्यों, वह क्या सोचेंगी?"

"इस तरह कोई पुकारता है?"

"जानती हो, वक्त क्या है?"

"घड़ी में चाहे कितना ही क्यों न बजा हो, इस तरह हाथ पकड़कर कोई पुकारता है?"

"कोई भले ही ऐसा न कर सके मगर श्रीकान्त कर सकता है।"

"हमारे चले आने के बाद वे लोग आपस में कितनी चर्चा करते होंगे!"

"उनकी चर्चा से मेरा क्या बनता-बिगड़ता है?"

"यह ठीक है कि तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता है लेकिन मेरा? मैं तो स्त्री हूँ।"

एकाएक श्रीकान्त की आवाज में बदलाव आ गया। बोला, "नहीं, तुम्हारा भी कुछ नहीं बिगड़ता है। जो लोग तुम्हारी मुसीबत के समय आगे बढ़कर नहीं आये उनकी चर्चा-परिचर्चा से तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ता है।"

इस धरती पर और कौन इस तरह कह सकता है? कोई नहीं। 'श्रीकान्त' नाम के अन्दर एक प्रकार की मादकता है, यही न? श्रीकान्त हालांकि दावा पेश नहीं करता फिर भी उसका बन्धन बड़ा ही कठिन है। उसके निकट तमाम अधिकार हैं और अहंकार को विसर्जित करने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मिस्टर वाल ने मेरे निकट आकर चुपचाप फ्लाइट एनाउंसमेन्ट वोर्ड की ओर उँगली से इशारा किया और मैं समझ गयी कि अब वैठे रहने का वक्त नहीं है। दिल्ली जाने वाले एयर इंडिया विमान की आहार-विश्राम की अवधि समाप्त हो गयी। ट्रांजिट लाउंज में वैठकर यात्रियों के गपशप, विश्राम या एक-दो राउंड ड्रिंक करने की पारी ही अव वाकी रह गयी है। मैं कुछ नहीं बोली। एक वार वाल साहब की ओर देखा और मुसकराकर खड़ी हो गयी।

हम लोग बचपन से ही शोरगुल, हल्ला-हंगामा सुनने के अभ्यस्त रहे हैं। हम लोग अस्पताल के मेटरनिटी वार्ड में माँ के पास उसकी वगल में जव सोये रहते हैं उस समय डॉक्टर-नर्स की कृपा-भिक्षा के लिए माँ की व्यर्थ प्रार्थना के वाद गुर्राहट सुनते ही हमारी श्रवण-इन्द्रिय सतर्क होने लगती है। उसके वाद धीरे-धीरे हम घर में, राह-बाट में, स्कूल-कॉलेज, ट्राम-वस, ऑफिस-अदालत, कारखाने वगैरह में शोर-गुल सुनते हैं। हाट-वाजार और रेल-स्टेशन तो शोरगुल, हो-हल्ला और हुल्लड़वाजी के लिए मशहूर हैं। लन्दन आने के पहले मैं हवाई-जहाज पर सवार नहीं हुई थी। पहले-पहल मैं रंजन को विदा करने के लिए दमदम एयर पोर्ट गयी थी, उसके वाद तव जव मैं वहाँ से रवाना हुई थी। रेल स्टेशन की तरह हो-हल्ला न होने के वावजूद दमदम हवाई अड्डे पर भी कोई कम शोर-शरावा नहीं होता है। शायद हम शोर-गुल, हो-हल्ला और मार-पीट किये बिना कोई काम नहीं कर सकते। पूजाघर, कालीघाट के मन्दिर और शादी के जलसे में भी शान्ति नहीं रहती है। प्रीति की शादी के जलसे में दोनों पक्ष के पुरोहितों के तर्क-वितर्क के वाद दोनों पक्ष के वीच कितनी ही भद्दी वहसें चलीं और अन्ततः उन वहसों ने झगड़े का रूप ले लिया था। प्रीति भय और दुःख से थरथरा रही थी और रो रही थी। मैं उसे अपनी वाँहों में लेकर वैठी थी, फिर भी मेरी आँखों से आँसू चू पड़े थे। प्रायः हर विवाह-घर में किसी न किसी कारणवश तुच्छ घटना अपना रूप दिखा जाती है। यहाँ तक कि लाश जलाने के लिए जाने के वक्त भी हम कुत्सित उल्लास के साथ हरि नाम लेते हैं। शान्तिप्रिय भारत में कोई काम शान्ति और खामोशी के साथ नहीं होता है।

योरोप में सव कुछ उल्टा ही देखने को मिलता है। उन लोगों के देश में यद्यपि भगवान वुद्ध या महात्मा गांधी का आविर्भाव नहीं हुआ

है लेकिन वे हम लोगों की तरह शोरगुल, हो-हल्ला, मार-पीट और दंगा-हंगामा नहीं करते। भारत के इतिहास की तुलना में उन लोगों के इतिहास के पृष्ठों पर अधिक युद्ध-विग्रह की कहानी भी लिखी हुई नहीं है। हम सरव हैं, वे नीरव हैं। शोर-गुल के बिना हम कुछ भी नहीं सुन पाते। दमदम हवाई अड्डे की तरह लाउड स्पीकर से चिल्लाकर फ्लाइट एनाउंसमेन्ट हुए बगैर हो सकता था कि मैं एयर इंडिया के यात्रा-आरम्भ की बात जान भी नहीं पाती। मैंने मिस्टर वाल को धन्यवाद दिया, "सो काइन्ड ऑफ यू टू रिमेम्बर मी।"

मिस्टर वाल हँसकर बोले, "आइ एम स्कॉटिश बाइ बर्थ। दो राउंड स्कॉच का दौर चलाते ही मेरा दिमाग खराब नहीं होगा।"

लन्दन-दिल्ली-बम्बई के रूट में एयर इंडिया विमान में जितना वैचित्र्य देखने को मिलेगा, बी० ओ० ए० सी० पैनऐम, स्कैण्डिनेवियन, स्विस एयर, टी० डब्लू० ए० या दूसरी किसी एयर लाइन के विमान के यात्रियों में इतना वैचित्र्य देखने को नहीं मिलता है। छोटे-छोटे बच्चों के साथ अत्यन्त साधारण यात्रियों से शुरू कर जहाज के खलासी, कारखाने के कारीगर, लन्दन ट्रांसपोर्ट के कण्डक्टर, अण्डर ग्राउण्ड के बुकिंग क्लर्क, छात्र-छात्राएँ, बैरिस्टर, डिप्लोमेट, फिल्म-स्टार, व्यवसायी और मंत्रियों के अतिरिक्त और कितनी तरह के यात्री एयर इंडिया के विमान में देखने को मिलते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं। आने-जाने के दोनों मार्ग पर ये लोग दिखाई पड़ते हैं। मेरे हवाई जहाज के यात्रियों के बीच संभवतः इस प्रकार के सभी लोग हैं। बंगाली, बिहारी, गुजराती, मराठे, पंजाबी और सिंधी हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन ईसाई सभी हैं।

फ्रांकफोर्ट एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में बैठे रहने के दौरान बीच-बीच में मेरी दृष्टि इधर-उधर गयी थी और उन तमाम लोगों को देखा था। आस-पास के दो-चार युवक-युवती की आँखों से आँख मिलाते ही मैं मुसकरा दी थी और उनके चेहरे पर भी मुसकराहट तिर आयी थी। एक बार बगल से बंगला जबान भी सुनने को मिली थी। मुझे आश्चर्य नहीं लगा था। कलकत्ते के बंगालियों की कलकत्ते से यदि दुर्गापुर बदली हो जाती है तो वे अनशन और हड़ताल करते हैं, यह सच है; लेकिन कुछ समय तक हिथरो एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में काम करने के दौरान मुझे पता चल गया है कि दुनिया के हर कोने में

करते हैं। किसी जमाने में मैंने स्वयं लन्दन के हिथरो एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में कुछ दिनों तक काम किया था। आज फ्रांकफोर्ट के एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में बैठे रहने के दौरान दो-चार यात्रियों के मुँह से बंगला जबान सुनकर मुझे बीते दिनों की याद आ रही है।

उस दिन मेरी ड्यूटी तीसरे पहर थी और रात नौ बजे तक चलने वाली थी। ड्यूटी पर आते ही ट्रांस एटलान्टिक यात्रियों का एक झुण्ड शोरगुल करता हुआ ट्रांजिट लाउंज के अन्दर आया। कुछ यात्री खुश थे और कुछ असन्तुष्ट। मैंने ध्यान नहीं दिया। तब मैं आस-पास की बहुत सारी घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देती थी। उसके कुछ समय पूर्व रंजन को मैंने खो दिया था। अन्न-वस्त्र और वासस्थान के लिए पहले-पहल नौकरी करने गयी थी। सो भी अत्यन्त साधारण नौकरी। साधारण और नगण्य। ट्रांजिट लाउंज में बैठे हजारों यात्री चाय-कॉफी पी रहे थे, स्नैक्स खा रहे थे। बच्चे तरह-तरह की कैण्डी, चाकलेट या किस्म-किस्म की चीजें खा रहे थे। लोग अखबार पढ़ रहे थे और सिगरेट के कश ले रहे थे। ट्रांजिट की सफाई की जिम्मेदारी मेरे अलावा कुछ और औरतों पर थी।

मैं सिर झुकाकर टोकरी में गन्दगी रख रही थी। एकाएक बगल से गीत का स्वर मेरे कानों में आया—क्यों मुझे पागल बनाकर जा रहे हो, ओ जाने वाले ! सिर उठाकर देखते ही मेरे चेहरे पर मुसकराहट टंग गयी। मेरी आँखों से आँख मिलते ही गानेवाले सज्जन के चेहरे पर भी मुस्कराहट तिर आयी। खड़े-खड़े गपशप कर सकूँ, इतना अवकाश नहीं था। घूम-घूमकर सेन्टर टेबल से कागज के मैले टुकड़े साफ कर रही थी। थोड़ी देर बाद देखा, वह सज्जन आगे बढ़कर मेरे पास चला आया है। एक बार उसकी ओर देखकर मैंने निगाह मोड़ ली। क्योंकि उन दिनों सुन्दर और हँसमुख युवजनों की ओर देखना मुझे अच्छा नहीं लगता था। लगता था, शायद ये सब लोग रंजन जैसे ही अभिनेता और विश्वासघातक हैं। धोखा देकर वे मुझे फिर किसी मुसीबत में डाल देंगे।

"नमस्कार !"

यह शब्द मेरे कानों में पहुँचा पर मैंने कोई जवाब नहीं दिया। इस

तरह देखा जैसे सुन न सकी या फिर सुनने पर भी मेरी समझ में नहीं आया ।

"क्या बात है, आपने उत्तर नहीं दिया ?"

यात्रियों से बातचीत करना न तो हमारा काम है और न ही यह हमारे लिए उचित है । तब हाँ, दो-चार शब्द बोलने की मनाही नहीं है । कभी-कभी हम यात्रियों से बात करते हैं । बात करना पड़ता है, बिना बोले काम नहीं चलता है । यात्रियों के प्रति अशिष्टता दिखाना अन्याय है । यही वजह है कि लाचार होकर मुझे कहना पड़ा, "आप मुझसे कुछ कह रहे हैं ?"

"ऑफकोर्स आपसे ही कह रहा हूँ ।"

"कहिये ।"

"कोई खास बात कहनी नहीं है । तब हाँ, बहुत दिनों के बाद एक बंगाली महिला पर निगाह पड़ने से बहुत ही अच्छा लग रहा है ।....."

"धन्यवाद !"

अब मैं खड़ी नहीं रहती हूँ । अपने काम में लग जाती हूँ । ट्रांजिट लाउंज की दूसरी ओर चली जाती हूँ, मगर दुबारा मुलाकात हो जाती है । बात सुनती और कहती हूँ । सवेरे की तरह यात्रियों का मजमा नहीं है । काम का दबाव कम है । इसलिए बीच-बीच में चार-पाँच मिनटों के लिए गपशप करने में असुविधा नहीं होती है ।

"आपको देखते ही लगा था कि बंगाली हैं मगर सच ऐसा सोचा नहीं था...।"

"कि लन्दन एयर पोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में एक बंगाली महिला इस तरह मामूली क्लिनर का काम कर सकती है । यही न ?"

"मुझे मालूम है कि यह इंडिया नहीं है । यहाँ कोई काम छोटा नहीं समझा जाता है ?"

"मुझे देखकर आपने गीत क्यों गाया ?"

"वे हँस दिये । बोले, "क्यों गाया, मालूम नहीं, मगर बहुत दिनों के बाद आप जैसी एक बंगाली युवती बहुत ही अच्छी लगी ।"

मैं टोकरी हाथ में लिए जरा चक्कर लगाने लगती हूँ । उसके बाद घूमकर आती हूँ और पूछती हूँ, "आप जहाँ रहते हैं वहाँ बंगाली नहीं हैं ?"

"मैं जमाइका के एक टेक्सटाइल मिल में काम करता हूँ। कहा जा सकता है कि उधर बंगाली एक तरह से नहीं हैं।"

"सच ?"

"हाँ। यही वजह है कि किसी बंगाली महिला की तलाश में जमा-इका से कलकत्ता जा रहा हूँ।"

मैं मुसकराने लगती हूँ।

"आप मुसकरा रही हैं ? उतने दूर देश में अकेले रहना कितना कष्टदायक है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकती हैं।"

यह सुनकर मुझे तकलीफ हुई। कहा, "थोड़ी बहुत कल्पना कर सकती हूँ।"

"यहाँ तो बहुत सारे बंगाली हैं। अतः हमारा कष्ट आप लोग समझ नहीं सकेंगी।"

भले आदमी का न तो मुझे नाम मालूम है न ही उसका परिचय जानती हूँ। फिर भी गपशप किये जा रही हूँ। "यहाँ क्या आपको फ्लाइट चेंज करना है ?"

"दुःख की बात क्या कहूँ !..."

"क्यों, क्या हुआ ?"

"ब्रिटिश वेस्ट इंडीज एयरवेज के एक स्पेशल फ्लाइट से पेरिस जा रहा था। पेरिस से एयर फ्रांस के फ्लाइट से इंडिया जाने की बात थी। लेकिन ओरली एयरपोर्ट में अकस्मात् हड़ताल हो जाने के कारण ओरली एयरपोर्ट बन्द हो गया है।..."

"फिर ?"

"ओरली में न उतर पाने के कारण यहाँ आकर उतरा हूँ....."

"उसके बाद ?"

"अलटरनेट एरेंजमेन्ट किया जा रहा है। शायद कल सवेरे दूसरे एयरलाइन्स के फ्लाइट से हम रवाना होंगे।"

"ट्रेवल फ्लाइट अपसेट होने से बड़ा ही खराब लगता है ?"

वे हँस दिये।

"हँस क्यों रहे हैं ?"

"मुझे खराब नहीं लग रहा है।"

"क्यों ?"

"सचमुच ही खराब नहीं लग रहा है।"

"क्यों ?"

"आप अन्यथा तो नहीं लेंगी ?"

मन में सन्देह हुआ कि कहीं मेरे विषय में ही कुछ कह न बैठें। फिर भी मैंने कहा, "नहीं-नहीं, अन्यथा क्यों लूँगी ?"

"आपसे मुलाकात हो जायेगी यह जानता तो इतना खर्च कर इंडिया का टिकट कटाता।"

मैं हँस देती हूँ। कहती हूँ, "आप तुरन्त कोई बात सोच सकते हैं।"

"मैंने कुछ गलती की ?"

"आपको जो भी मर्जी हो मन ही मन सोच सकते हैं मगर आपकी इच्छा पूरी करने की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है।"

उस युवक नाम मुझे याद नहीं है। भरसक नवेन्दु था। विदेश में अपने देश की किसी युवती पर नजर पड़ते ही बहुत से युवकों के मन में बहुत सारी प्रत्याशाएँ पैदा होती हैं। हो सकता है, शिकार करने की प्रवृत्ति भी जगती हो। मिस्टर बाल की बगल से होते हुए जब मैं आगे बढ़ने लगी तो दो-चार बंगाली यात्रियों का मंतव्य मेरे कान में आया। चाहे वह अश्लील न हो मगर बेसुरा अवश्य ही लगा। मैं मन ही मन हँसने लगी। सोचा, उन्हें यह मालूम नहीं है कि पुरुषों के मामूली संपर्क से रोमांचित होने की मेरी पारी आखिरी सीमा में पहुँच चुकी है। शायद मेरी खुशियों के दिन समाप्त हो गये हैं। श्रीकान्त मेरी भलाई की खातिर ही मुझे प्यार करता है। मेरे सुख के लिए वह काफी कुछ करता है परन्तु मुझे जिस संरक्षण और सान्निध्य की आवश्यकता है, उस सन्दर्भ में वह कभी बातें नहीं करता है और न की हैं। लोग यही सोचते हैं कि श्रीकान्त मुझसे शादी कर लेगा। यहाँ तक कि विजया का भी दृढ़ विश्वास है कि मेरे जीवन में सूनापन नहीं है। श्रीकान्त मुझे पूर्ण बनाने की प्रतिबद्धता के साथ मेरे निकट आकर खड़ा हुआ है, लेकि मुझे मालूम है कि निकट आने के बावजूद वह दूर का व्यक्ति है। मैं उसे अपने समीप पाती हूँ लेकिन मन में पूरे तौर पर पाने के आनन्द से वंचित हूँ। इस धरती के कुछ लोग शरद ऋतु के मेघखंडों की तरह मन के आकाश में उदित होते हैं और बरसात के अन्त की घोषणा कर

जाते हैं परन्तु वे जिम्मेदारी का भार उठाने से कतराते हैं। इतने बड़े नीले आकाश के क्रोड़ में भी वे अपने लिये कोई स्थान नहीं बना पाते हैं। श्रीकान्त इसी तरह का आदमी है। उसे पाकर क्या किसी स्त्री का मन परिपूर्ण हो सकता है ?

मालूम नहीं।

चाहे किसी को मालूम न हो मगर मुझे मालूम है कि उससे रूठकर ही मैं दिल्ली जा रही हूँ। विवेक के पास जा रही हूँ। प्याली की तरह मैं प्रेम में सरावोर नहीं हुई थी मगर तमाम औरतों की तरह पति का सपना देखा था, बाल-बच्चों का सपना देखा था। देखूँ क्यों नहीं ? धूप से जली धरती को शान्त करने और हरी-भरी बनाने के लिए ही आकाश में वर्षा के काले मेघ दीख पड़ते हैं। जिस वर्षा काल के बादलों से बरसात न हो तो फिर उसकी सार्थकता ही क्या है ? आकाश में छाने का उन्हें अधिकार ही क्या है ? ऑक्सफोर्ड बॉण्ड स्ट्रीट की बड़ी-बड़ी डिपार्टमेन्टल शॉप के सामने विण्डो शॉपिंग करने से आँखों को भले ही आनन्द मिले मगर मन को न तो तृप्ति होती है और न ही हो सकती है। जवानी की हाट सजाकर कुछ मरदों के मन में चंचलता जगाकर भले ही खुश हुआ जा सकता है मगर आत्म तृप्ति प्राप्त नहीं होती। इसीलिए तो पति और सन्तान की जरूरत महसूस की जाती है। दुनिया का और कोई वैभव पाने का अधिकार न रहने पर भी हर औरत इतनी प्रत्याशा जरूर ही करती है। यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। प्रकृति ने मुझे यह अधिकार दिया है। किसी का कृपा-लब्ध ऐश्वर्य लेकर मैं यह दावा पेश नहीं करा रही हूँ।

इस धरती के समाज के बीच एकाकी रहने पर कुछ लोगों का व्यंग्य-विद्रूप, अयाचित-अप्रत्याशित मंतव्य मुझे सुनना ही होगा। लंदन में सुन भी चुकी हूँ। इस फ्रांकफोर्ट एयरपोर्ट पर भी सुनने को मिला। अब अच्छा नहीं लग रहा। श्रीकान्त क्या यह सब समझता नहीं ? जानता नहीं है ? विवेक समझेगा ?

मालूम नहीं।

कुछ भी नहीं जानती हूँ। बस इतना ही जानती हूँ कि श्रीकान्त मुझे प्यार करता है। वरना कोई क्या इस तरह हवाई अड्डे की ओर भागा-भागा आता है ?

धीरे-धीरे मैं पुनः एयरक्राफ्ट के अन्दर चली गयी। मिस्टर वाल के पास जाकर बैठ गयी। लेकिन मेरा मन ?

लन्दन से फ्रांकफोर्ट। पहले सोचती थी, कितना दूर होगा ! अब जानती हूँ कि इस दूरी का कोई महत्त्व नहीं है—कलकत्ते से मुगलसराय की जो दूरी है, उतनी ही दूरी है। शायद उससे भी कम। मात्र चार सौ एकसठ मील। सात सौ एकतालीस किलोमीटर। दिल्ली मेल या बम्बई मेल से जाने पर एक रात बिताने के बाद मुगलसराय पहुँचा जा सकता है। अभी इस दूरी को हमने एकाध घण्टे में ही तय कर लिया। चूँकि ट्रेन या मोटरगाड़ी की गति अधिक नहीं होती इसलिए हमेशा मील का हिसाब किया जाता है लेकिन आधुनिक विमानों की गति इतनी तेज है कि विमान-यात्री दूरी का हिसाब करने की जरूरत महसूस नहीं करते। 'टाइम्स' या डेली 'टेलीग्राफ' पढ़ते हुए एक देश की राजधानी से दूसरे देश की राजधानी पहुँचने के दौरान विमान-यात्री चंचलता का अनुभव नहीं करते। उन लोगों के लिए एक दो राउण्ड स्कॉच पीने के बाद लंच खत्म करते ही एक महादेश के एक छोर से दूसरे महादेश के दूसरे छोर तक पहुँचना या एक रात की कुछेक घण्टों की नींद को छलावा देकर दो महादेशों को अतिक्रम कर तीसरे महादेश के आधे हिस्से को पार करना अत्यंत स्वाभाविक बात है।

विमान-यात्री होने के बावजूद मैं दूरी का हिसाब किये बगैर नहीं रह पा रही हूँ। मैं केवल एक देश की सीमा लाँघकर दूसरे देश में नहीं पहुँच रही हूँ बल्कि एक जीवन-वृत्त की परिक्रमा कर रही हूँ। इसे ही सर्कल ऑफ लाइफ कहा जाता है। इस एयर इण्डिया विमान के द्वारा भारत की मिट्टी का स्पर्श करते ही मेरे जीवन का एक वृत्त पूरा हो जायेगा। बकौल डरविन के शागिर्दों के, जन्म से मृत्यु तक ही एक जीवन-वृत्त है लेकिन न्यूटन और डरविन के सिद्धान्तों पर आदमी का जीवन नहीं चलता। खासकर मेरी जैसी साधारण भारतीय महिलाओं के जीवन का गति-पथ कब कौन-सा मोड़ ले लेगा, यह बात कोई भी नहीं बता सकता है। नवीन जीवन के प्रशस्त पथ पर खड़ी होते न होते कितनी ही अभागिन नारियों के चलने के रास्ते का अन्त आ जाता है। दिल्ली पहुँचते न पहुँचते मेरे रास्ते का अन्त आ जायेगा। पथ की

अन्तिम सीमा में मुझे नये पथ का अता-पता और नये जीवन का संकेत मिलेगा या नहीं, मालूम नहीं। खेवा-घाट पहुँचते ही क्या सब लोग नदी के उस पार पहुँच जाते हैं ?

मैं अपने यात्रा-पथ की दूरी को अनदेखा नहीं कर पा रही हूँ। एयर होस्टेस की घोषणा से पता चल रहा है कि कितनी दूर आ चुकी हूँ और हिसाब कर रही हूँ कि और कितनी दूर जाना है।

लन्दन से फ्रांकफोर्ट आने में इतना कम वक्त लगा कि इस बीच 'एपिटाइजर' के तौर पर एक-दो राउण्ड ड्रिंक सर्व करने के अलावा यात्रियों को लंच नहीं दिया गया है। फ्रांकफोर्ट से रोम की दूरी अधिक नहीं है। छः सौ सैंतालीस मील, एक हजार एकतालीस किलोमीटर। डेढ़ घण्टा भी नहीं लगेगा। अब यात्रियों को लंच दिया जायेगा। मैं यहीं से बैठे-बैठे देख रही हूँ, स्टुअर्ट और एयर होस्टेस भोजन परोसने की जोर-शोर से तैयारी कर रहे हैं। मेरे आगे और पीछे जितने यात्री हैं वे लंच लेने के बाद कॉफी पियेंगे, कॉफी के बाद एक सिगरेट पीकर खत्म करेंगे और उसके बाद ही जनता को संबोधित करने की प्रणाली की तरह एयर होस्टेस की आवाज सुनेंगे—विल बी शॉटली लैण्डिंग एट रोम···

और मैं ? यह सही है कि और-और लोगों की तरह लंच लूंगी, कॉफी पियूंगी। लेकिन मन ही मन कहाँ चली जाऊंगी, क्या-क्या सोचूंगी, इसकी कोई इयत्ता नहीं। कितने ही सुखों की स्मृतियाँ, दुःखों के इतिहास, विफलता और यातना की घटनाओं के टुकड़ों को दुहराते हुए मैं रोम पहुँचूंगी, इसका पता नहीं। एक-दो स्कॉच, ब्राण्डी या जिन एण्ड टॉनिक या बीयर का दौर समाप्त करते ही सब लोग लन्दन से फ्रांकफोर्ट पहुँच गये और मैं उस अवधि के दौरान आकाश-पाताल सोचती रही। कभी-कभी सोचती हूँ, अब भावना और चिन्ता के सैलाब में नहीं बहूँगी। जो होने को है, होने दो। लन्दन में रहने से खाने-पीने की कमी नहीं होगी। सरकार के खजाने में जितना-कुछ जमा करती हूँ उसके बदले बीमारी की गिरफ्त में फँस जाने पर अच्छी तरह इलाज जरूर ही किया जायेगा। अकस्मात् किसी कारणवश बेरोजगार हो जाना पड़े तो उतना भत्ता अवश्य ही मिल जायेगा जिससे मेरा गुजर-बसर हो सके। बीच-बीच में अखबार में पढ़ने को मिलता है कि अमुक भारतीय या अमुक पाकिस्तानी को किसी रेस्तराँ या होटल के अन्दर

घुसने नहीं दिया गया या फिर किसी दफ्तर या कारखाने में किसी अंग्रेज ने किसी काले आदमी को उचित अधिकार का उपभोग करने नहीं दिया। या फिर इसी तरह की और कोई बात। इस तरह की घटनाएँ न घटती हों—ऐसी बात नहीं; लेकिन किसी विशेष क्षेत्र में ही विशेष कारणों से इस तरह की घटनाएँ घटती हैं। मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि शिक्षित और शिष्ट होने पर इस तरह की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता है।

इन समस्याओं को याद आते ही मुझे ब्राडफोर्ड के दिनों की याद आ जाती है। बहुत रोने-धोने और झगड़ा-टंटा करने पर रंजन एक दिन एयर कनाडा का एक टिकट कटा कर ले आया। समझ गयी, अब नाटक के पंचम अंक की शुरुआत होने जा रही है। टिकट लाकर इस तरह टेलफोन की बगल मे रख दिया कि तत्क्षण मेरी दृष्टि उस पर पड़ गयी। मगर मैंने कोई सवाल नहीं किया। वह कैसे ही टॉयलेट से लौटकर आया, मैंने मेज पर दो व्यक्तियों का भोजन परोस कर रख दिया। मूक चलचित्र की तरह मुझे एक भी शब्द का उच्चारण नहीं करना पड़ा। वह खाने बैठ गया। मै भी खाने बैठी। खाना खत्म होते ही वह दो बड़े-बड़े सूटकेसों को सहजने लगा। पंचम अंक में नाटक जरा द्रुत गति से आगे बढ़ने लगा। रसोईघर का काम समाप्त कर मैं लेट गयी। खिड़की की ओर मुँह कर करवट लिए लेटने के बावजूद यह अच्छी तरह समझ रही थी कि रंजन जाने की तैयारियाँ कर रहा है। नींद नही आ रही थी, मैं जगी हुई ही थी। लेकिन अन्ततः कब नींद के आगोश में खो गयी, पता ही नहीं चला। चूँकि रात काफी ढलने के बाद सोयी थी इसलिए और-और दिनों की तरह प्रातःकाल आँखें नहीं खुलीं। रंजन की पुकार सुनकर आँखें खुलीं, "रुनु, जरा उठोगी ?"

उसकी पुकार सुनकर मैं विस्तर पर उठकर बैठ गयी। मैंने एक भी शब्द नहीं कहा। कह भी नहीं सकी।

"इस्लाम साहब को दो महीने का किराया दे दिया है। तुम्हारा बार्कले बैङ्क का चेक बुक मेज की दराज में है और···"

रंजन खामोश हो गया।

रात-भर आराम करने के बावजूद यद्यपि मैं बिस्तर पर बैठी थी लेकिन अनिद्रा-अनाहार से क्लिष्ट व्यक्तियों की तरह मेरा सिर चकराने लगा। दोनों आँखों में आँसू भर आये और ढुलक कर मेरे हाथ और घुटनों पर गिर पड़े। मन में तीव्र इच्छा हो रही थी कि एक बार उसकी ओर देखूँ मगर ऐसा नहीं कर सकी।

रंजन एकाएक मेरे पास आगे बढ़कर आया और अपने हाथों से मेरे चेहरे को ऊपर की ओर उठाया। देखा, उसकी आँखों से भी आँसू ढुलक रहे हैं। मालूम नहीं, वह कब तक मेरा चेहरा अपने हाथों में थामे रहा, कब तक वह मेरी ओर देखता रहा और मैं उसकी ओर देखती रही। शायद एक या दो मिनट। शायद उससे अधिक। हम दोनों में से कोई कुछ बोल नहीं सका। उसके बाद एकाएक रंजन लपकते हुए कमरे से बाहर चला गया। सोचा था, उन्हें प्रणाम करूँगी। मगर मेरी वह इच्छा पूरी नहीं हो सकी।

आज भी उस बात को सोचती हूँ तो दुःख होता है। बड़ा ही खराब लगता है। चाहे जो हो, वह मेरा पति है। हमेशा के लिए उससे अलग होना आसान बात नहीं है। बल्कि असंभव ही कहा जा सकता है। मृत्यु-शोक बरदाश्त किया जा सकता है पर विरह की यातना असह्य होती है। पति के मरने के बाद वैधव्य बरदाश्त किया जा सकता है। करना पड़ता है। लेकिन पति के जीवित रहते उसको खो देना सचमुच ही असह्य होता है। रंजन ने पग-पग पर मुझे धोखा दिया है। वह असत्यवादी और अशिक्षित है। लंपट और चरित्रहीन है। फिर भी वह मेरा पति है। उस मनहूस सवेरे उसकी आंसू से भरी आँखें देखकर मुझे लगा था कि वह मुझे प्यार करता है। मुझे चाहता है, बल्कि प्राणों से चाहता है।

मैंने क्या उसे प्यार किया था?

जरूर।

अब भी क्या उसे प्यार करती हूँ?

यह बड़ा ही मुश्किल सवाल है। तुरन्त जवाब देना कठिन है। उसे मैं घृणा की दृष्टि से देखती हूँ, उस पर क्रोध आता है। मेरे वर्त्तमान जीवन की जटिलता और इस अस्तित्वहीन जीवन जीने की विवशता

के लिए एकमात्र रंजन ही जिम्मेदार है। मुझसे शादी करने की जरूरत ही क्या थी? मुझे लन्दन जाने की जरूरत ही क्या थी? शादी करने लायक कोई युवक मुझे क्या कलकत्ता में नहीं मिलता? एक क्या, सैकड़ों युवक मिल जाते। थोड़ी बहुत चेष्टा करते ही मिल जाता मगर चेष्टा करता ही कौन? बाबू जी जीवित रहते तो कोई बात न थी। बड़े आदमी की दुलारी लड़की से शादी करने के बाद भैया मुझे बरदाश्त नहीं कर पा रहा था। विधवा माँ क्या करती? लड़के की बात पर कुछ कह नहीं सकी। लिहाजा रंजन से मेरी शादी हो गयी। कलकत्ते के किसी शिक्षित युवक से शादी हुई होती तो मैं सुख से रहती। क्यों नहीं रहती? मुझे अतीत का कोई ऐसा व्यामोह नहीं था कि पति को प्यार करने में झिझक का अनुभव होता। कलकत्ते में क्योंकि जन्म लिया है, वहीं बड़ी हुई हूं इसलिए शादी के बाद कलकत्ते में रहने से आनन्द के साथ ही रहती। चार-पांच रुपया हाथ में आते ही देश प्रिय पार्क के कोने में जाकर एक ब्लाउज खरीद सकती थी, या फिर दोनों मिलकर उज्ज्वला में सिनेमा देखने जा सकते थे। रविवार को वसुश्री में कितने अच्छे-अच्छे गीतों का आयोजन होता है! रवीन्द्र सदन में तो रोज कुछ न कुछ होता ही रहता है। लन्दन आने के बाद से बंगला अखबार देखने का मौका नहीं मिला है। एकमात्र जयन्तीदी के घर पर जाने पर रविवार का अखबार देख पाती हूं। बहुत दिनों के बाद बंगला अखबार हाथ में आते ही शुरु में सिनेमा का विज्ञापन पढ़ती हूं। लन्दन में विश्व के कितने ही विख्यात कलाकारों की फिल्में दिखायी जाती हैं। बीच-बीच में देखने जाती हूं। श्रीकान्त की खातिर ही देखना पड़ता है। अच्छी लगती हैं, बहुत ही अच्छी। लेकिन फिर भी उत्तम कुमार की कोई फिल्म देखने के लिए मन छटपटाता रहता है। श्रीकान्त को मैं बेहद पसन्द करती हूं। शायद उसे प्यार करती हूं। बीच-बीच में उसको आँखों के सामने रखकर भविष्य का सपना देखती हूं। आखिरकार मैं यदि पुनः लन्दन वापस आकर उससे शादी कर लूं तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। उसका सब कुछ मुझे अच्छा लगता है, सिर्फ एक चीज के मामले में मेरे विचार से उसका विचार मेल नहीं खाता है। वह सौमित्र चैटर्जी का भक्त है और उत्तम कुमार को कोई खास पसन्द नहीं करता है। उत्तम कुमार के बारे में अनाप-शनाप बातें सुनने पर मेरा मूड बिगड़ जाता है। उत्तम इज उत्तम। अद्वितीया अनन्य। अतुलनीय।

सिनेमा हॉल के परदे पर जब उत्तम कुमार का चेहरा देखने को मिलता है तो मेरा अन्तर भी परिपूर्ण हो उठता है। कलकत्ते में लन्दन जैसा सुख न रहने पर भी वहाँ बंगला सिनेमा और उत्तम कुमार तो है। मेरी जैसी बंगाली महिलाएँ इतने में ही खुश रहती हैं।

एकाध महीने पहले जयन्तीदी के घर पर बंगला अखबार में देखने को मिला कि रवीन्द्र सदन में मानवेन्द्र मुखर्जी की नजरुल-संगीत की मजलिस जमी है। यह सब विज्ञापन देखते ही मन उदास हो जाता है। 'भरिया पराण सुनितेछि गान' और 'नीलाम्बरी साड़ी पड़े के जाय'—इन दोनों गीतों को सुनते ही मेरे टिकट का पैसा वसूल हो जाता। आनंद के लिए लन्दन आना जरूरी नहीं है। बल्कि हम लोगों के आनन्द का सारा कुछ कलकत्ते में ही है। लन्दन में उपभोग किया जा सकता है। मगर मन-प्राणों को आनन्द से भर दे, ऐसा सुयोग देखने को नहीं मिलता है।

कलकत्ते में शादी हुई होती तो मैं खासे सुख के साथ रह पाती मगर रंजन ने मेरे जीवन को तहस-नहस कर दिया। मैं हर वक्त रंजन के बारे में नहीं सोचती हूँ। सोचना नहीं चाहती और सोचकर कोई फायदा भी नहीं है। मेरे जीवन में अब उसकी कोई भूमिका नहीं है। लेकिन एकाएक जब सारी बातें याद आ जाती हैं—शादी की बात, कोहबर की बात, कलकत्ते के कुछ दिनों की बात, लन्दन आने की अपनी कहानी, उसे सब कुछ निःशेष कर सौंप देने की स्मृति से शुरू कर कनाडा में उसके द्वारा शादी करने की बात, उसकी पत्नी और बच्चे की कहानी और अन्ततः हमारे विच्छेद के दिनों के सूनेपन की व्यथा—तो सचमुच ही वह असहनीय जैसा लगने लगता है। लगता है, हाथ में रिवाल्वर होता तो हो सकता था कि उसे गोली मार कर मौत के घाट उतार दिया होता।

मेरा मन कितना विचित्र है, यह सोचकर भी मुझे आश्चर्य होता है। रंजन ने कहा था, इस्लाम साहब बहुत ही अच्छे आदमी हैं। जब तक लन्दन में रहना है, यहीं रहना।

शायद उसने सोचा था, मैं उसके जाने के कुछ दिन बाद ही भारत लौट जाऊँगी। यही वजह है कि उसने इस्लाम साहब का घर छोड़ने से मना किया था। उसने यह नहीं सोचा था कि मैं अकेली ही लन्दन में रह जाऊँगी। वाकई मैंने इस्लाम साहब का घर नहीं छोड़ा है। इस्लाम

साहब पाकिस्तानी मुसलमान हैं मगर ऐसे भले आदमी दुर्लभ होते हैं। लन्दन आने से पहले किसी पाकिस्तानी मुसलमान के साथ हिलने-मिलने का मौका नहीं मिला है। अखबार पढ़कर उनके सन्दर्भ में बुरी धारणा बना ली थी। किसी भी तरह उन्हें भले आदमी और मित्र के रूप में सोच नहीं पाती थी। लेकिन यहाँ आने पर मेरी पुरानी धारणा बिलकुल बदल गयी।

कलकत्ते से हियरो एयरपोर्ट पर उतरते ही रंजन मुझे इसी इस्लाम साहब के घर पर ले आया था। घर के सामने के छोटे से टेरेस पर इस्लाम साहब ने सपरिवार मेरा स्वागत किया लेकिन उस दिन ठीक से बातचीत और जान-पहचान नहीं हो सकी। कई दिनों के बाद उन्होंने हम दोनों को डिनर पर आमंत्रित किया। इस्लाम साहब की बीवी हालांकि थोड़ी-बहुत मितव्ययी मालूम हुईं लेकिन उनकी एक बात मुझे भूली नहीं है। इस्लाम साहब और रंजन जब ड्राइंगरूम में ह्विस्की की बोतल लेकर बैठ गये तो वह मुझे अन्दर ले गयीं। घर-गृहस्थी की छोटी-मोटी बात के बाद कहा, "यह हिन्दुस्तान या पाकिस्तान नहीं है। यहाँ मैं तुम्हारी दीदी हूँ और तुम मेरी छोटी बहन हो। और इस्लाम साहब तुम्हारे बड़े भाई हैं।"

इस्लाम साहब की पत्नी ने मेरी तरह कलकत्ता विश्वविद्यालय के समावर्तन में योगदान कर युनिवर्सल आर्ट गैलरी के स्टूडियो में अपना फोटो नहीं खिंचवाया है, लेकिन उन्होंने जिस सरलता और माधुर्य के साथ मुझे अपना लिया, वह देखकर मैं अचंभे में आ गयी। फिर भी मन ही मन उन पर विश्वास नहीं कर सकी। सोचा, संभवतः मुझे खुश करने के लिए ही यह सब कहा है।

कुछ दिन बीतने पर, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, शरत और हेमन्त बीतने के बाद समझ में आया, हम शिक्षित औरतें दूसरे को खुश करने के लिए ही बातें करते हैं परन्तु जिन लोगों ने विश्वविद्यालय में विश्व-विद्या के गरल का पान नहीं किया है, वे सिर्फ मन, प्राण और विश्वास की ही बातें कहते हैं।

उनकी एक और बात मुझे याद आती है। सवेरे जब रंजन कनाडा के लिए रवाना हो गया तो मैं बिस्तर पर बैठकर रो रही थी। दोपहर में मिसेज इस्लाम ने आकर मुझे सांत्वना देने के बाद कहा, "रुणु, उठो। खाना खा लो। गुस्से में बैठी मत रहो।"

गहरे दुःख में भी मुझे हँसी आ गयी। पूछा, "इस तरह छली जाने पर भी गुस्से में नहीं आऊँ?"

मिसेज इस्लाम ने मेरे सिर को सहलाते हुए कहा, "हम लोगों के मुल्क से यहाँ आने के बाद तकरीबन हर मर्द में यह मर्ज देखने को मिलता है। इस्लाम साहब भी खासे एक लंबे अरसे तक इस मर्ज के शिकार रहे थे। तब हाँ, यह मर्ज ज्यादा दिनों तक नहीं टिकता है। भाई साहब में भी यह मर्ज नहीं रहेगा..."

मैं हँसने लगी थी।

"सच कह रही हूँ रुणु, यह मर्ज ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकता है। तुम्हारा भी यह गुस्सा नहीं टिकेगा। दुबारा सब कुछ पटरी पर आ जायेगा।"

मिसेज इस्लाम की बात मुझे बीच-बीच में याद आती है। सोचती हूँ, वाकई क्या सब कुछ सही रास्ते पर चला आयेगा? लेकिन कैसे? उसके द्वारा पहली पत्नी को तलाक देने पर भी बीते दिनों का इतिहास मिट नहीं जायेगा। इसके अलावा उसके लड़के का क्या होगा? इन प्रश्नों का उत्तर मुझे मालूम नहीं। बहुत कोशिश करने के बावजूद उत्तर नहीं मिलता है। फिर भी लगता है कि मिसेज इस्लाम की बात सच निकले तो संभवतः अच्छा रहे।

रंजन के चले जाने के एकाध महीने बाद इस्लाम साहब एक शनिवार के सवेरे मेरे यहाँ आये, "बहन जी!"

"आइये-आइये!" मैंने इस्लाम साहब को बिठाया।

सोफे पर बैठते ही इस्लाम साहब बोले, सोचा था एक बात कहूँ मगर...।"

मैं हँस दी, "कहिये, क्या कहना है। उतनी दुविधा की कोई जरूरत नहीं है।"

"मुझे लगता है कि इस तरह चुपचाप बैठे रहना ठीक नहीं है। इसका शरीर और मन दोनों पर प्रभाव पड़ेगा...।"

"मगर मैं क्या करूँ भाई साहब?"

"मैं मामूली आदमी हूँ। मैं बिलकुल साधारण काम का इन्तजाम कर दे सकता हूँ, मगर..."

"मगर क्या?"

इस्लाम साहब ने हँसकर कहा, "बहन जी, आप बी० ए० पास कर

चुकी हूँ। इन साधारण कामों के बारे में बताने में भी मुझे शर्म महसूस हो रही है। तब हाँ, इस मुल्क में हर काम को सम्मान की निगाह से देखा जाता है।"

इस्लाम साहब हियरो एयरपोर्ट में ही हैवी ड्यूटी लॉरी चलाते हैं। उन्हीं की चेष्टा के बल पर मैंने हियरो एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज में सक्रिय जीवन की शुरुआत की।

रंजन दो महीने का किराया देकर गया था। उसके बाद मैं जब प्रथम सप्ताह का आठ पौंड किराया देने गयी तब इस्लाम साहब ने मुझे एक छोटी-सी बात कही थी, "बहन जी, मुझे हर हफ्ते अड़तालीस पौंड किराया मिलता है। इसके अलावा तीन व्यक्तियों से मकान किराया मिलता है। फिर अगर मैं बहन जी से किराया न लूं तो भी मेरी गृहस्थी अच्छी तरह चल जायेगी।"

इस देश में न तो कोई दया दिखाता है और न ही कोई इसकी प्रत्याशा करता है। इसलिए उन्होंने इसके साथ ही कहा, "किराया मैं छोड़ नहीं दूँगा। भाई साहब से मैं किराया वसूल लूंगा।"

"भाई साहब आपको मिलेंगे कैसे?"

इस्लाम साहब हँसकर बोले, "मेरा किराया हजम कर जायें, ऐसी सामर्थ्य भाई साहब में नहीं है।"

शायद उन्होंने सोचा था कि रंजन दो-चार महीने के अन्दर ही लौटकर चला आयेगा। लेकिन जब वह छह महीने के बाद भी नहीं आया तो उसके बाद से उन्होंने किराया लेना शुरू किया। तब हाँ, मैं अपनी मर्जी से अपने सुविधानुसार किराया चुकाती रही और उन्होंने इसके लिए कभी कुछ नहीं कहा। मैं जब कम्युनिटी रिलेशन्स की नौकरी वार्ड फोर्ड में कर रही थी, उस समय भी इस घर को नहीं छोड़ा था। प्रत्येक सप्ताहान्त में आती और ठहरती थी। अब भी मैंने उस मकान को नहीं छोड़ा है। इस्लाम साहब की वजह से छोड़ नहीं सकी हूँ। इसके अलावा मैं छोड़ना चाहूँ तो भी क्या इस्लाम साहब की लड़की सुरैया छोड़ने देगी?

इस मकान को न छोड़ने के कारणों से सब लोग अवगत हैं। विजया को मालूम है, श्रीकान्त को मालूम है, इसके अलावा अनेकों को मालूम है। लेकिन उस मकान को न छोड़ने का एक और कारण है। यह बात न तो किसी को मालूम है और न ही मैंने जानने दिया है। जिन्दगी में

मौज मनाने का मुझे मौका नहीं मिला है। आनन्द का ज्वार आते न आते भाटे का दौर चलने लगा। मेरा छोटा-सा हरा-भरा द्वीप रेगिस्तान के उजाड़ से भर गया। जो भी मीठी स्मृति मेरे मन में छिपी हुई है, उसका केन्द्र ये दो कमरे हैं। इन दोनों कमरों में मुझे रंजन की एक प्रकार की गंध मिलती है, उसके स्पर्श का बोध होता है। मैं बहुत ही बुजदिल हूँ। अकेले एक कमरे में रह नहीं पाती हूँ लेकिन इस मकान में अकेले रहने पर मुझे डर नहीं लगता है। नींद में, अवचेतन अवस्था में मुझे लगता है कि मैं रंजन के दो बलिष्ठ बाहुओं के घेरे में हूँ। फिर मेरे लिए डरने की कौन-सी बात है? बीते दिनों की इस छोटी-सी स्मृति और आँखों से दूर चले गये रंजन के इस संरक्षण को मैं किसी भी हालत में विसर्जित नहीं कर पाती हूँ। साहस नहीं होता है। भय लगने लगता है।

मैं मन ही मन हँसने लगी। चरित्रहीन पति के बारे में सोचते-सोचते मैं कहाँ बह कर चली जा रही हूँ?

"एक्सक्यूज मी! सीट-बेल्ट आप नहीं खोलिएगा? बीच के हैण्ड-रेस्ट पर कुहनी रखकर जब मिस्टर वाल ने मुझसे कहा तो मैंने सामने की ओर नजर फेंकी। 'नो स्मोकिंग' साइन का लाल संकेत गायब हो चुका है। इसका मतलब यह कि पाँच-दस मिनट पहले ही फ्रांकफोर्ट से रवाना हो चुकी हूँ। कितनी दूरी तय की ही है! मगर इस बीच अपने जीवन के रास्ते के कितने लंबे और जटिल पथ की परिक्रमा कर चुकी हूँ!

कमर से सीट बेल्ट खोलते हुए मैंने वाल साहब की ओर देखा और मुसकराकर उन्हें धन्यवाद दिया।

भोजन-परिवेशन की शुरुआत हो गयी है। एयर होस्टेस का जत्था लंच ट्रे लिए आइल होकर आ जा रहा है। मिस्टर वाल ने दबी मुस-कराहट के साथ कहा, "नो मोर ड्रिंकिंग। अभी तुरन्त लंच लेना है।"

"आइ नो।"

"बाइ द वे, डु यू इट मीट?"

मैंने गंभीरता के साथ कहा, "आइ एम ए मैन-इटर।"

"इंडियन लोग मैन-इटर होने पर भी हमेशा मीट-इटर नहीं हुआ करते हैं।"

अब कुछ बोलने का अवकाश नहीं मिला। एयर होस्टेस दो लंच ट्रे हाथ में लिए आयी और जरा झुककर मुझसे पूछा, "एक्सक्यूज मी मैम! वेज और नन-वेज ?"

मैं उत्तर दूँ कि इसके पहले ही मिस्टर वाल ने कहा, "शी इज ए मैन-इटर।"

एयर होस्टेस ने हँसते हुए मुझे गौर से देखा और लंच देकर चली गयी।

लंच लेते हुए मिस्टर वाल बोले, "इस लंच के लोभ के कारण ही मैं हमेशा एयर इंडिया को प्रेफर करता हूँ।"

"ऑन बिहाफ ऑफ सिक्स हंड्रेड एण्ड फिफ्टी मिलियन पीपल् ऑफ इंडिया मैं क्या आपको धन्यवाद दे सकती हूँ ?"

"आइ वोन्ट डिसलाइक दैट।"

हम दोनों हँस पड़ते हैं। हँसना मुझे हमेशा अच्छा लगता है। स्कूल, कॉलेज, बंधु-बांधव और सगे-संबंधियों के बीच मेरी हँसी की प्रसिद्धि थी और अब भी है। विजया का तो कहना है, "तुम्हें हँसते हुए देखने पर यह नहीं लगता कि तुम्हारे मन में कोई दु:ख गहरे उतर गया है।" इसी हँसी की वजह से विजया के अनुरोध पर फादर जोन्स ने मुझे कम्युनिटी रिलेसन्स के दफ्तर में नियुक्त किया था। उन्होंने कहा था, "माइ चाइल्ड, एक तो तुम विजया की सहेली हो, उस पर खुलकर हँस सकती हो। यू मस्ट गेट ए जॉब।"

अंग्रेजों में बहुत सारे दोष हैं लेकिन उनमें कुछ ऐसे गुण हैं जो हम लोगों में दुर्लभ ही कहा जा सकता है। फादर जोन्स असम के चाय बागान और दार्जिलिंग के पहाड़ पर काफी लंबा अरसा गुजार चुके हैं। विजया जब दार्जिलिंग स्कूल में पढ़ती थी, तभी से वह फादर जोन्स से परिचित है। उसके बाद लेक डिस्ट्रिक्ट से लन्दन लौटने के दौरान ट्रेन में वे दोनों पुनः मिले। उम्र होने से बावजूद फादर जोन्स चुपचाप बैठे नहीं रह सकते हैं। वे यार्कशायर के रहने वाले हैं। लीड्स में शिक्षा-दीक्षा हुई है। छोटे से एक फार्म और रेस रिलेसन्स का काम करते हुए बुढ़ापे में अपने आपको व्यस्त रखते हैं। जरूरत नहीं थी, फिर भी एशिया, अफ्रीका और वेस्ट इंडीज के काले लोगों के कल्याण के लिए कुछ न कुछ

करते रहते हैं और इसी में उन्हें सुकून मिलता है। इसी फादर जोन्स के कारण मैंने हिथरो एयरपोर्ट के ट्रांजिट लाउंज के काम से इस्तीफा दे दिया था और कम्युनिटी रिलेसन्स के दफ्तर की नौकरी स्वीकार कर लन्दन छोड़ दिया था।

मैं सिर्फ नौकरी के लिए ही ब्राडफोर्ड नहीं गयी थी। रंजन के चले जाने के बाद लन्दन में रहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। बीच-बीच में असहनीय जैसा लगता था। यही वजह है कि ब्राडफोर्ड जाने का सुयोग मिलते ही मुझे अच्छा लगने लगा। सवेरे आठ बजे किंग्स क्रॉस से ट्रेन में बैठकर दो सौ मील रास्ता तय कर ठीक साढ़े दस बजे मैं लीड्स पहुँची। लगभग कलकत्ता-हावड़ा की तरह ही लीड्स और ब्राडफोर्ड शहर अगल-बगल हैं। ब्राडफोर्ड में ही उन्नीसवीं सदी के विक्टोरियन ब्रिटेन के साथ मेरा पहले-पहल साक्षात्कार हुआ। सॉसर की तरह शहर के चारों तरफ पहाड़ और बीच में ढलान है। सेंट्रल कलकत्ते की तरह ही ब्राडफोर्ड शहर के बीच बीते दिनों के अनेकानेक स्मृति-चिह्न बिखरे हुए हैं। अचानक सरसरी निगाह से देखने पर साफ-साफ समझ में आ जाता है कि महारानी विक्टोरिया की अनु-प्रेरणा से जो औद्योगिक विप्लव हुआ था और जिस पर ये लोग गर्व करते हैं, उसके लिए इस ब्राडफोर्ड शहर का अवदान कोई कम नहीं है। लेकिन लन्दन से आते ही अच्छा नहीं लगा। मन उदास हो गया। लगा, शायद मैंने गलती की है। परिचित परिवेश के प्रति एक प्रकार का मोह रहता है। कलकत्ता छोड़कर बाहर जाने के समय मन नहीं लगता था। कलकत्ते के अतिरिक्त दिल्ली, बम्बई और मद्रास को पसन्द करने का सुयोग नहीं मिला है। उन्हें देखा भी नहीं है। कलकत्ते के अतिरिक्त एकमात्र लन्दन में रही हूँ और उसे पसन्द किया है। मैं ओटोवा, वाशिंगटन, न्यूयार्क, रोम, पेरिस, कैरो और टोकियो में भी नहीं रही हूँ। लेकिन जो लोग उन शहरों में रह चुके हैं उन्हें जानती हूँ। लन्दन में उन लोगों से जान-पहचान हुई है। सब लोग एक स्वर में स्वीकार करते हैं कि हर किस्म के लोगों का ऐसा मिलन-मेला, आनन्द बाजार किसी और शहर में नहीं है। जिन लोगों ने फ्रांसीसी सभ्यता और संस्कृति के परिवेश में जीवन बिताया है उन लोगों के

लिए एकमात्र पेरिस ही मक्का जैसा है। लन्दन की तरह पेरिस का रस-भंडार तमाम दुनिया के लिए खुला हुआ नहीं है। एक बार मैं कुछ मित्रों के साथ बी० बी० सी० कैन्टिन में अड्डेबाजी कर रही थी। वहाँ बी० बी० सी० टेलीविजन के एक कैमरामैन मिस्टर गर्डन से परिचय हुआ। मिस्टर गर्डन का जन्म दक्षिण अफ्रीका में हुआ है। उन्होंने अपना कैशोर और यौवन इजिप्ट के स्वेज शहर में बिताया है। अपने सक्रिय जीवन की शुरुआत उन्होंने कैनबरा में किया था। उसके बाद रोम में। प्रौढ़ावस्था में वे लन्दन चले आये। बी० बी० सी० के काम के सिलसिले में एक से अधिक बार सारी दुनिया का चक्कर काट चुके हैं। "डु यू नो आई हैव विजिटेड कैलकाटा टेन टाइम्स ?"

"क्या कह रहे हैं आप !"

"ह्वेन एवर आइ गो टु कैलकाटा, मैं कोल्हू टोले में कुरता परचेज करता हूँ। दे आर सो लवली।"

हम लोग हँस देते हैं।

"हँस रहे हैं ? मेरे घर पर आकर देख लीजिएगा कि मैं कोल्हू टोले का कुरता घर में पहनता हूँ।

"रीअली।"

"जब मैं टैगोर के शान्ति निकेतन में दो सप्ताह था तो उस समय मैं कुरता और पाजामा ही पहनता था···।"

सुभाष ने पूछा, "आप शान्ति निकेतन में भी रह चुके हैं ?"

मिस्टर गर्डन ने हँसते-हँसते कहा, "क्यों विश्वास नहीं हो रहा ? आइ हैव सीन चित्रांगडा एट शान्ति निकेटन···"

मेरे मुँह से निकल गया, "सच कह रहे हैं ?"

मिस्टर गर्डन ने मुझसे पूछा, "आपने चित्रांगडा देखा है ?"

"देख चुकी हूँ।"

"एट शान्टि निकेटन ?"

"नहीं, कलकत्ते में।"

"देन यू हैव नोट सीन रीअल चित्रांगडा। मैंने कलकत्ते में भी देखा है मगर शान्ति निकेटन की तुलना में वह कुछ भी नहीं है।"

हम चुप हो जाते हैं।

उन्होंने थोड़ी देर बाद फिर कहा, "चाइनीज लोटस डान्स, सोवियत बैले, शान्टि निकेटन का चित्रांगडा, शेक्सपीयर के नाटक के सर

लारेंस ऑलिवर और पॉल रॉबसन के गीत मैं अपने जीवन में नहीं भूलूंगा।"

इसी गर्डन साहब ने कहा था, "देअर आर टु सिटीज इन द वर्ल्ड—लण्डन एण्ड कैलकाटा।"

सिर्फ गर्डन ही नहीं, और भी बहुत सारे लोगों से सुना है, लन्दन और कलकत्ते जैसा जिन्दादिल शहर और कोई नहीं है। उसी कलकत्ता और लन्दन को छोड़कर ब्राडफोर्ड जाना पड़ा।

मार्लबोरा रोड स्थित कम्युनिटी रिलेसन्स काउंसिल में मेरा दफ्तर है। उससे और उत्तर एक एवेन्यू में रहती हूँ। छोटा-सा दफ्तर है। चार ही कर्मचारी हैं वहाँ। दफ्तर के बड़े साहब सी० आर० ओ० कम्युनिटी रिलेसन्स ऑफिसर हैं। वृद्ध न होने पर भी अधेड़ जरूर हैं। जाति के अंग्रेज। मैं भारतीय हूँ। मिर्जा पाकिस्तानी। मिस देसाई ब्रिटिश पारपत्र धारिणी पूर्व अफ्रीका की गुजराती महिला। एक शब्द में इसे मिनि कॉमनवेल्थ कहा जा सकता है। काले आदमी पर कोई जुल्म होने पर उसका प्रतिकार करना ही काउन्सिल का सबसे बड़ा काम है। नंबर दो काम है मोटे तौर पर ब्रिटेन के आर्थिक क्षेत्र में आ प्रवासियों के अवदान और आवश्यकता की पृष्ठभूमि में उन लोगों की उपस्थिति की अनिवार्यता से अंग्रेज समाज को सचेतन करना। इसके अलावा एक और काम है। काले लोगों के जिन बाल-बच्चों ने ब्रिटेन में जन्म लिया है और बड़े हो रहे हैं, वे काले रंग के होने के बावजूद ब्रिटिश नागरिक हैं और इसीलिए शिक्षा-दीक्षा देकर योग्य बनाया जाये।

शुरू दिन चार कमरों और चार व्यक्तियों वाले उस दफ्तर को देखकर मुझे हँसी आयी थी। सोचा था, इन छोटे-छोटे दफ्तरों और मात्र चार व्यक्तियों के ब्राडफोर्ड के लाख से भी अधिक काले लोगों का कौन-सा उपकार होगा। इसके अलावा चार अलग-अलग सभ्यता-संस्कृति और देश के लोगों के द्वारा क्या एक साथ काम करना संभव हो सकेगा? आहिस्ता-आहिस्ता मेरे मन से इन सन्देहों का बादल छँट गया। दफ्तर और दफ्तर के सहकर्मी मुझे अच्छे लगे। अच्छा लगने का कारण था।

शुरू दिन ही मिर्जा ने मुझसे कहा, "दीदी, मैं आप लोगों का जमाई हूँ।"

मैं चौंक उठी, "इसका मतलब ?"

मिर्जा हँसकर बोला, "मैंने बंगाली लड़की से शादी की है।"

सुनकर अच्छा लगा। "आप भी तो बंगाली हैं ?"

मिर्जा फिर हँस दिया। बोला, "बंगला में बातचीत करने से ही क्या कोई बंगाली हो जाता है ? मैं वेस्ट पंजाब का···"

"लेकिन आपकी बंगला सुनने से तो ऐसा नहीं लगता।"

"शिक्षा-दीक्षा ढाका में ही हुई है।"

"सच ?"

"हाँ।"

"लगता है, ढाका में रहने के दौरान ही आपने शादी की है।"

मिर्जा जेब से सिगरेट-लाइटर निकालते हुए बोला, "शादी ढाका में ही हुई थी। लेकिन शादी के दूसरे दिन ही हम भागकर यहाँ चले आये थे।"

"क्यों ?"

मिर्जा सिगरेट सुलगाकर मुसकराया। मेरे चेहरे की ओर देखते हुए बोला, "मेरे अब्बाजान बंगालियों को बरदाश्त नहीं कर पाते थे। इसलिए ढाका में क्या होता, कहा नहीं जा सकता।"

मैं चुप्पी साधे रही।

मिस देसाई कुछ टाइप किये हुए कागजात लेकर जैसे ही मिर्जा के कमरे में आयी, वह ठिठककर खड़ी हो गयी। "सॉरी टु डिस्टर्ब यू।" मैंने कहा, "नॉट एट ऑल।"

मिस देसाई ने एक बार मिर्जा की ओर निगाह दौड़ायी, उसके बाद मेरी ओर देखकर हँसती हुई बोली, "उनकी धारणा है कि तमाम दुनिया का हर बंगाली उनका सगा-सम्बन्धी है।"

मैं हँस देती हूँ। कुछ भी नहीं बोलती हूँ।

मिस देसाई ने सिर हिलाते हुए कहा, "रीअली बिलिव मी। मैं जरा भी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रही हूँ। जब टेलीफोन करने पर ये कहीं न मिलें तो समझ लीजिये कि कॉर्नवाल एरिया के किसी बंगाली के घर पर अड्डा जमाये हुए हैं।"

मैं कुछ कहूँ कि इसके पहले ही मिर्जा बोला, "हाफ अंग्रेज होकर नखरे मत करो।"

"ह्वाट ?"

"ह्वाट-ह्वाट मत करो। तुम अड्डे का मतलब क्या समझोगी छोकरी ?"

"डॉन्ट टॉक इन बंगाली। स्पीक इन इंगलिश।"

मिर्जा ने उसकी बात का परवाह किये बगैर मुझसे कहा, "यह लड़की देखने में कितनी खूबसूरत है मगर स्कर्ट ब्लाउज पहनकर आती है तो लगता है निगल जायेगी।"

मिर्जा की बात सुनकर हंसने का मन करने लगा मगर हँस नहीं सकी। अब मिर्जा ने उस पर आँख टिकाते हुए कहा, "ह्वाइ डॉन्ट यू वियर साड़ी ? साड़ी पहनने से तुम बहुत ही अच्छी लगोगी।"

"मैं क्या पहनूँ और क्या न पहनूँ, इसके लिए तुम्हें माथापच्ची करने की जरूरत नहीं।"

"तुम यह सब ड्रेस पहनकर आती हो तो आइ फील एक्साइटेड।"

मिर्जा की बात सुनकर मैं दंग रह गयी। सोचा, मिस देसाई बेहद गुस्से में आ जायेगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। हँसती हुई बोली, "जॉली गुड न्यूज। डाइवर्स योर बेंगाली वाइफ एण्ड देन मैरी मी।"

मिर्जा ने गंभीर होकर कहा, "जहन्नुम में जाओ।"

मिस देसाई ने एक हाथ से मिर्जा के गले को पकड़कर मेरी ओर देखा और बोली, "मुझसे झगड़ा करने के बावजूद यह भला आदमी है। मगर उसकी पत्नी और भी भली है।"

सचमुच ही वीणा बहुत अच्छी स्त्री है। देखने में जैसी है वैसा ही है उसका स्वभाव। मैं ब्राडफोर्ड में ज्यादा दिनों तक नहीं रही थी लेकिन उन कई महीने के दौरान ही वीणा से मेरी गहरी दोस्ती हो गयी थी। बहुत दिनों तक मेरी धारणा थी कि वह हिन्दू लड़की है। कल्पना नहीं कर सकी थी कि बंगाली होने के बावजूद मुसलमान परिवार की लड़की का नाम वीणा हो सकता है। एक दिन एलबम में उसके घर के लोगों की तसवीर देखते हुए पूछा, "तुम लोग हिन्दू हो न ?"

वीणा हँस दी। "नहीं, हम लोग मुसलमान हैं।"

"फिर तुम्हारा नाम वीणा कैसे पड़ा ?"

"तुम लोग हमारे देश की जानकारी नहीं रखती हो, इसलिए तुम्हें

मालूम नहीं है कि आजकल लड़कियों के नाम या वेश-भूषा देखकर समझा नहीं जा सकता कि कौन हिन्दू और कौन मुसलमान है।"

"सच ?"

"ईस्ट पाकिस्तान कहने से तुम लोगों की आँखों में जो तसवीर तिरकर आती है, अब वह ईस्ट पाकिस्तान नहीं है।"

"मुझे राजनीति में कभी रुचि नहीं रही। राजनीति की खास-खास खबरों के बारे में भी मुझे कोई जानकारी नहीं है। इसीलिए पूछा, "इसका मतलब ?"

"बंगाली जाति और बंगाली भाषा के अलावा तुम्हें हमारे यहाँ किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व देखने-सुनने को नहीं मिलेगा।"

मैं कलकत्ते की लड़की हूँ। ढाका मेरे घर से निकट ही है। लेकिन मुझे उस आस-पास के स्थान की खबर दूसरे देश में आने पर मिली।

केवल वीणा नहीं, ब्राडफोर्ड आने पर बांगला देश के और बहुत सारे व्यक्तियों से जान-पहचान हुई। जान-पहचान और घनिष्ठता। मिर्जा के साथ मैंने भी कॉनवाल एरिया में सिलहटवासियों के अड्डे पर आना-जाना शुरू कर दिया। हक साहब की दुकान में बैठकर चाय पीती हूँ, पापड़ खाती हूँ और गपशप करती हूँ। लोगों का आना-जाना और खरीद-फरोख्त का काम देखती रहती हूँ। मंसूर साहब जैसे ही दुकान के अन्दर आये और मुझ पर उसकी नजर पड़ी तो बोले, "दो-दिन आपके दफ्तर गया मगर मुलाकात नहीं हुई।"

"कब गये थे ?"

"पिछले हफ्ते के बुधवार को गया था। मिर्जा साहब ने आपसे मेरे बारे में नहीं कहा ?"

"नहीं। कोई जरूरत थी ?"

"वैसी कोई खास जरूरत नहीं। तब हाँ, सोचा था कि एक दरख्वास्त आपसे दिखा लूँ।"

"किस चीज की दरख्वास्त थी ?"

"बड़े साहब के द्वारा छुट्टी मंजूर करने के बाद छोटे साहब ने हुक्म दिया कि अभी छुट्टी मंजूर नही की जायेगी" मंजूर साहब ने एकाएक अपनी आवाज को तेज करते हुए कहा, "छुट्टी नहीं मिलेगी, यह कहने से ही क्या मैं छोड़नेवाला हूँ। तत्क्षण सी० आर० ओ० साहब के पास एक दरख्वास्त दे आया...।"

"यही दरख्वास्त मुझसे दिखाना था..."

पाँच वरसों के बाद मंसूरअली साहव वीवी के पास जाने को वड़े वेचैन हो उठे थे। मुझे अपना वाक्य पूरा करने न देकर उन्होंने असली वात वता दी, "मन जव एकवार वेचैन हो उठा है तो मुझे क्या कोई रोककर रख सकता है दीदी?"

कॉर्नवाल में वांगला देश के ही आदमी भरे हुए हैं। खासतौर से सिलहट के। नोआखाली, कुमिल्ला और चटगाँव के आदमी भी हैं, लेकिन कम संख्या में। वारिशाल, ढाका और फरीदपुर के आदमी नहीं के वरावर हैं। किसी जमाने में ये लोग एक मुट्ठी अन्न और कपड़े के एक टुकड़े के लिए हाहाकार करते थे। उसके वाद एक दिन कलकत्ता और चटगाँव के वन्दरगाह पर नाम लिखाकर सात समुद्र तेरह नदी पार कर यहाँ चले आये थे। अन्ततः घूमते-फिरते हुए व्राडफोर्ड पहुँचे। जिस इंगलिश ट्विड के लिए दुनिया-भर के शौकीन और रुचि-संपन्न आदमी उत्कंठित रहते हैं वह सव सूटिंग और कोट-पैण्ट ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट तैयार करता है। वॉण्ड स्ट्रीट और रिजेन्ट स्ट्रीट उन्हें दुनिया की हजारों दुकानों में चालान कर ख्याति अर्जित करते हैं। वह सव कपड़ा और-और लोगों अतिरिक्त इनलोगों के द्वारा तैयार किया जाता है। इंजीनियरिंग कारखाने में भी वहुत से लोग काम करते हैं। उनकी आय अच्छी ही है। सप्ताह में तीस चालीस पौंड। रुपये के हिसाव से साढ़े पाँच सौ से लेकर साढ़े सात सौ आठ सौ तक। सव लोग अत्यन्त साधारण ढंग से जीवन जीते हैं। आमदनी का आधा हिस्सा भी खर्च नहीं करते हैं। एक-दो महीने के वाद वैंक के जरिये मोटी रकम स्वदेश भेजने के अतिरिक्त खासी अच्छी रकम अपने पास रख लेते हैं। चार-पाँच साल के वाद जव वे स्वदेश जाते हैं तो सवसे पहले हक साहव की दुकान पर पहुँचते हैं।

"दीदी, एकाध दर्जन जापानी नाइलोन की साड़ी का चुनाव कर दें।"

वीवी के लिए नाइलोन के साड़ी-व्लाउज, वाल-वच्चों के लिए कोट-पैण्ट, स्कर्ट-व्लाउज के अलावा एकाध दर्जन नाइलोन की लुंगी तथा चाँदपुर में जो भाई-भतीजे वी० ए० में पढ़ते हैं उनके लिए व्रीफकेस, लांग कोट, फाउन्टेन पेन की खरीदगी करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी वहुत सारे लोगों के लिए ये लोग वहुत सारी चीजें खरीदते हैं।

मैं हक साहव की दुकान में वैठकर देखती हूँ और सोचती हूँ कि कितने लंवे अरसे तक ये लोग विदेश में रहकर वर्फ गिरी रातों में

मशीन से तालमेल बिठाते हुए परिश्रम करते हैं और पैसे कमाते हैं। लेकिन अपनी सुख-सुविधा और विलासिता के प्रति ये लोग उदासीन हैं। चारों तरफ बिखरे अपने तमाम सगे-संबंधियों के लिए ये लोग एक-एक पैसा जोड़ते रहते हैं। उनके चेहरे पर हँसी देखने के लिए ही ये लोग इतना आत्म-त्याग करते हैं।

"चारेक लालटेन दे दो।"

हक साहब जैसे ही लालटेन लाने गये मैंने आश्चर्य में आकर पूछा, "लालटेन! यहाँ से लालटेन ले जाइएगा?"

मंसूर अली साहब हँसकर कहते हैं, दीदी, हम लोगों का गाँव कोई विलायत का गाँव नहीं है। लालटेन के बिना कहीं काम चल सकता है?"

"सो तो समझी, मगर यहाँ क्या लालटेन तैयार की जाती है?"

"यह जर्मन लालटेन है।"

ब्राडफोर्ड के कार्नवाल प्लेस के हक साहब की दुकान पर न जाती तो मुझे पता ही नहीं चलता कि जर्मनी में लालटेन तैयार की जाती है। और भी बहुत सारी बातें नहीं जानती थी। यह नहीं जानती थी कि इस लालटेन की रोशनी से न केवल मंसूर साहब का घर आलोकित होगा, बल्कि इसके प्रकाश से उसका और उसके बीवी का मन जगमगा उठेगा।

इस धरती के चलने के पथ पर आगे बढ़ने पर आदमी से ही दुःख और चोट पहुँची है लेकिन साथ ही आदमी से ही स्नेह और प्यार भी मिला है। उसकी आन्तरिकता पर मुग्ध होना पड़ा है। मैं ब्राडफोर्ड में ज्यादा दिनों तक नहीं रही थी। विजया के द्वारा दबाव डालने पर नयी नौकरी में भर्ती होकर पुनः लन्दन चली आयी थी। सो हो। ब्राडफोर्ड के उन काले आदमियों को निकट से देखना मेरे लिए जरूरी था, उनका स्नेह और प्यार पाना जरूरी था। रंजन के विश्वासघात के कारण मनुष्य के प्रति मेरा विश्वास उठता जा रहा था। मगर आदमी के प्रति आस्था और विश्वास न रहे तो इस संसार में कोई टिक सकता है? मैं भी टिक नहीं सकती थी। ब्राडफोर्ड के मिर्जा, वीणा, मिस देसाई और कार्नवाल एरिया के उन आदमियों ने मुझसे फिर से आदमी के प्रति विश्वास करने की सामर्थ्य पैदा कर दी। उन लोगों से फिर कभी मुलाकात होगी या नहीं, मालूम नहीं; लेकिन बीते दिनों को या

आते ही, जरा पीछे की ओर मुड़कर देखते ही वे लोग सभी मजमा लगाकर इकट्ठे हो जाते हैं ।

"एक्सक्यूज मी, यू विल हैव कॉफी और टी ?"

कान के पास जैसे ही एयर होस्टेस के शब्द आये, मैंने अपनी दृष्टि को बाहर से अन्दर लाकर कहा, "टी ।"

एयर होस्टेस ने तत्क्षण मेरी प्याली में चाय और दूध ढाल दिया । मिस्टर वाल से कुछ पूछूँ कि इसके पहले ही उसने प्याली आगे बढ़ा दी । प्याली चाय से लबालब भर गयी ।

चाय की प्याली होंठों से लगाने के पूर्व ही एयर क्राफ्ट के कमाण्डर ने यात्रियों को संबोधित करते हुए कहा, "यू हैव योर लंच एण्ड मस्ट बी डिलाइटेड टु नो दैट यू विल बी ओवर फ्लोरेन्स इन टु मिनट्स । यानी हम अभी एक सौ अस्सी मील उत्तर हैं ।

कमाण्डर की घोषणा सुनते ही मैं चौंक उठी । फिर तो आधा घंटे बाद ही हम रोम पहुँच जायेंगे । योरोप समाप्त हो जायेगा । इसके बाद मध्य पूर्व । बेरुत । सिर्फ एक ही हॉल्ट । उसके बाद ही दिल्ली । आँधी के वेग की तरह घड़ी की सुई घूम जायेगी । घूम भी रही है । सवेरे लन्दन, दोपहर में रोम, राम को बेरुत और रात का अन्धेरा खत्म होने के पहले ही दिल्ली ।

"हैव यू विजिटेड रोम ?" मिस्टर वाल ने चाय पीते हुए मुझसे पूछा ।

"आइ एम सॉरी····"

आपने रोम नहीं देखा है ?"

"नहीं ।"

"ऐनी डैम ब्याय फ्रेंड वुड हैव ब्रॉट यू हिअर ।"

"यू थिंक सो ?

"सर्टेनली ।"

आप अपनी गर्ल फ्रेंड को ला चुके हैं ?"

"आइ डिड बट····"

"फिर 'बट' क्यों ?"

"जिसे ले आया था अब उससे मेरी दोस्ती नहीं है ।"

"यह तो स्वाभाविक है।"

"स्वाभाविक क्यों ?"

आइ मीन इट इज वेरी कॉमन एमंग यू पीपुल·····"

मिस्टर वाल ने चाय खत्म कर मेरी ओर झुकते हुए कहा, "मैं प्रतिज्ञा कर सकता हूँ कि आप जैसी किसी महिला मिल जाये तो·····"

"हमें रोम में ब्रेक जर्नी करनी है ?"

"क्यों ?"

"फिर सेन्ट पिटर्स में हमारी शादी हो सकती है।"

मिस्टर वाल अपनी हँसी संभाल नहीं सके। उनके साथ मैंने भी हँसना शुरू कर दिया।

"मे आइ हैव योर एटेंशन प्लीज। यू विल बी सर्टेनली लैण्डिग एट रोम।·····"

तत्काल अण्डर-कैरेज खोलने की आवाज सुनाई पड़ी। जैसे ही खिड़की से बाहर की ओर गौर से देखा तो पता चला कि रोम आ गया है।

लंच समाप्त हो चुका है। तकरीबन तमाम पुरुष यात्री सिगरेट सुलगाये हुए हैं। कुछ महिलाएँ भी। कलकत्ते से लन्दन आने के दौरान विमान के अन्दर महिला-यात्रियों को सिगरेट पीते देखकर आश्चर्य हुआ था। मुझे लगा था, वे असभ्य हैं। अब वैसा नहीं लगता। अब बहुत सारे देशों के अनगिन लोगों को देखने पर मालूम हो गया है कि पुरुषों की तरह महिलाएँ भी सिगरेट पीती हैं। इसमें असभ्यता या अश्लीलता कुछ भी नहीं है।

यह बिलकुल निजी पसन्द-नापसन्द और रुचि की बात है। पहले मेरा संस्कार से घिरा मन यह मानने को तैयार नहीं होता था। अब पूरे तौर पर भले ही सस्कार-मुक्त न होऊँ पर आंशिक तौर पर अवश्य ही हो गयी हूँ और यही वजह है कि औरतों का सिगरेट पीना मुझे अजूबा जैसा नहीं लगता है हम लोगों के शहरों और नगरों को साधारण, मध्य-श्रेणी की महिलाएँ भले ही सिगरेट न पीती हों लेकिन भारत के बहुत सारे समाज की स्त्रियों के बीच धूमपान का रिवाज है। आशुतोष मुखर्जी के कारखाने से बी० ए०, एम० ए० पास करने के बाद हमें जान-

कारो हासिल हुई है कि भारत के गाँव की जो औरतें धूमपान करती हैं वे असभ्य और अशिक्षित हैं। और धनी घर की जिन औरतों के हाथ में हम सिगरेट देखते हैं उन्हें अत्याधुनिका कहते हैं। केवल आर्थिक तार-तम्य के कारण ही एक ही चीज की दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

हम लोगों का भारत इसी तरह का है। दामाद लड़की के प्रति अनु-रक्त होता है तो हम खुशियों से झूम उठते हैं लेकिन बेटा यदि पुत्रवधू को खुश रखता है तो हम जल उठते हैं। औरतों का सिगरेट पीना हम-लोग बरदाश्त नहीं कर पाते हैं लेकिन हम लोगों के देश की औरतों की तरह शायद दुनिया के किसी दूसरे देश की औरतें इतनी अधिक मात्रा में तंबाकू का सेवन नहीं करती हैं। मेरी बड़ी मौसी ने ही गुण्डी-दोक्ता-जर्दा खाने के बाद अब सुँघनी लेना शुरू कर दिया है। हर शनिवार को घुट्टी के बाद बड़े मौसा का काम था सुँघनी खरीदकर घर वापस आना। किसी कारण वश गलती हो जाती थी या न ला पाते थे तो मौसी कुह-राम मचा देती थी। यहाँ तक कि सास भी अपनी पुत्रवधू का समर्थन करते हुए उम्र दराज पुत्र की भर्त्सना करती थी, "तू किस काम में ऐसा व्यस्त रहता है कि बहू के लिए सुंघनी का एक डब्बा तक नहीं ला सका ?" चोर की तरह एक प्याली चाय पीने के बाद ही मौसा जी तत्क्षण 'एक्सट्रा स्पेशल सुँघनी' लाने को भागे-भागे जाते थे।

दुनिया के और-और देशों में शिक्षा और विधान के प्रसार के कारण वहाँ के लोग संस्कार से मुक्त हो गये हैं, परन्तु हमारे देश में नहीं हो सके हैं। हम शिक्षित होने के बावजूद संस्कार-मुक्त नहीं हो सके हैं। यही वजह है कि राममोहन, विद्यासागर और विवेकानन्द पर अनु-संधान करने के बावजूद सर्कुलर रोड के साइंस कालेज की प्रयोगशाला में कई वर्ष बिताने के बाद भी, हम शादी-विवाह के लिए सरो-सामान खरीदने में कुण्ठा का अनुभव नहीं करते।

स्टुअर्ट और सीनियर मोस्ट एयरहोस्टेस ने ड्यूटी फ्री ड्रिंक, सिगरेट-लाइटर और परफ्यूम बेचना शुरू कर दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय यातायात को आकर्षक बनाने के लिए यह तमाम राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत व्यवस्था है और यात्रियों में भी यह लोकप्रिय है। लन्दन एयरपोर्ट में काम करने के दौरान प्रत्येक यात्री के हाथ में कम से कम एक बोतल जरूर देखती थी। एयरपोर्ट के ड्यूटी-फ्री शॉप या एयरक्राफ्ट के अलावा और कहीं भी इतने सस्ते में यह सब नहीं मिलता है। एयर इंडिया के विमान के

द्वारा भारत जाने के दौरान ड्यूटी-फ्री वस्तुओं की खरीदगी के लिए भारतीय यात्रियों में कुतूहल होना स्वाभाविक है।

खरीदेंगे क्यों नहीं ? सभी खरीदते हैं। जो लोग शराब और सिगरेट नहीं पीते वे लोग भी सगे-संबंधी और दोस्त-मित्रों के लिए खरीदते हैं। अच्छी और शौक की वस्तु हमारे देश के लोगों को नहीं मिलती है, मिलना संभव नहीं हो पाता है। यह उनके सामर्थ्य के परे की बात है।

मैं भारतीय हूँ। मैंने भारत में जन्म लिया है। उम्मीद है, भारत में ही मेरी मृत्यु होगी। पहले समझ नहीं सकी थी लेकिन अब कुछ वर्ष ब्रिटेन में बिताने के बाद समझ में आया है कि अपने देश में जो सम्मान, प्यार और गौरव प्राप्त हो सकते हैं, वह किसी दूसरे देश में नामुमकिन है। लेकिन साथ ही यह भी समझती हूँ कि सिर्फ उसी रसद को संबल बनाकर मनुष्य आनन्दित और सुखी नहीं हो सकता है। और भी बहुत-कुछ की जरूरत पड़ती है। अन्न, वस्त्र, वासस्थान, शिक्षा और चिकित्सा की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा आनन्द और विश्राम के सुयोग की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश में आम लोगों को क्या यह सब अवसर प्राप्त हो सकेगा ?

मालूम नहीं। मैं अर्थशास्त्र या राजनीति की छात्रा नहीं हूँ कि इन प्रश्नों का उत्तर मुझे मालूम हो और मैं इस संदर्भ में कुछ बता सकूं। फिर भी जितना कुछ मुझे मालूम है, जितना कुछ मैंने देखा है उसके बल पर आशावादी नहीं हो सकती हूँ। लन्दन के अखबारों में भारत के बारे में बहुत ज्यादा खबरें न छपने पर भी आदमी का आना-जाना लगा ही रहता है। उनसे सारी बातों का पता चल जाता है। इसके अलावा ब्रिटेन के भारतीयों के हाथ में कुछ रकम जमा होते ही या तो वे मकान खरीदते हैं या भारत का एक चक्कर लगा आते हैं। भविष्य में स्वदेश लौटने की योजना लगभग तमाम भारतीयों की रहती है लेकिन एक बार स्वदेश से आने के बाद वे उस योजना की फिर कभी चर्चा नहीं करते हैं। भारत विलायत या योरोप नहीं है, यह बात सब को मालूम है। भारत का सब कुछ विलायत की तरह हो हो जाये, यह बात भी कोई नहीं कहता। लेकिन अस्पताल में इलाज क्यों नहीं होगा ? हावड़ा स्टेशन में रिश्वत दिये बगैर टिकट क्यों नहीं मिलेगा ? मुसीबत के वक्त पुलिस की मदद के लिए एम० एल० ए० या मंत्रियों की पैरवी की जरूरत क्यों पड़ेगी ? नाम-गोत्रहीन अज्ञात दरिद्र से दरिद्र भारतीय

को ब्रिटेन में इस तरह की ग्लानि या अपमान बरदाश्त नहीं करना पड़ता है। राममोहन राय से शुरू कर लाखों भारतीय ब्रिटेन जा चुके हैं, वहाँ रह चुके हैं, लेकिन कभी किसी को यह सुनने को न मिला कि चारिंग क्रॉस स्टेशन पर रिश्वत दिये बगैर टिकट नहीं मिलता है या हाइड पार्क में दुर्घटनाग्रस्त होने पर जॉर्जेस अस्पताल जाने पर डॉक्टर और नर्सों की अवहेलना बरदाश्त करनी पड़ती है। कभी किसी को यह सुनने को नहीं मिलेगा कि मुसीबत में पुलिस की सहायता और सहयोग माँगने पर किसी भारतीय को फटेहाल होना पड़ा है या रिश्वत न देने के कारण किसी लखपति भारतीय व्यापारी को आयकर कार्यालय में अपमानित होना पड़ा है।

इन यातनाओं, दुख-दर्दों और अपमानों की बात छोड़ सकते हैं। लेकिन हड्डी तोड़ परिश्रम करने पर भी इस आणविक युग में एक अच्छा-सा कुरता भी पहन न सकेगा? सरदियों में एक कोट भी खरीद नहीं सकेगा? लिखने-पढ़ने के लिए एक अच्छा-सा फाउन्टेन पेन भी नहीं मिल सकेगा?

मुट्ठी भर रुपया देने से सब कुछ मिल जाता है लेकिन आम लोगों को मुट्ठी भर रुपया कहाँ से मिलेगा? इस विमान के भीतरी हिस्से में यात्रियों के असबाब में क्या-क्या चीजें हैं, यह मालूम नहीं परन्तु हैट रैक की ओर देखने पर पता चल जाता है कि हमारे भारतीय सहयात्री अपने लोगों के लिए कितनी ही तरह की चीजें लेकर जा रहे हैं। एक-डेढ़ या दो पौंड में टेरीकॉट की शर्ट मिलने पर कौन नहीं ले जायेगा? मार्क्स एण्ड स्पेंसर, सी० एण्ड ए० और ब्रिटिश होम स्टोर्स में जितनी रकम में स्कॉटिश ऊन का कॉर्डिगन-पुलऑवर मिल जाता है उतनी रकम में कलकत्ते में सूती बुश्शर्ट भी मिलेगा या नहीं, इसमें सन्देह है।

गरमागरम पकौड़ी की तरह स्टुअर्ट और एयरहोस्टेस स्कॉच ह्विस्की और सिगरेट बेच रहे हैं। किसी जमाने में हमारे देश में शराबियों के संबंध में कहानी-उपन्यास लिखे जाते थे लेकिन फिलहाल औद्योगिक विकास के युग में दिन भर की बेहद थकावट के बाद बहुतेरे लोग एक-दो पेग शराब की आवश्यकता महसूस करते हैं। बहुतेरे लोग सिर्फ आनन्द के लिए शराब पीते हैं। हर आदमी की आनन्द प्राप्ति का तौर-तरीका अलग-अलग होता है। वह आनन्द अगर दूसरे को हानि नहीं पहुँचाता है, समाज की शान्ति में खलल नहीं डालता है तो फिर इसमें

आपत्ति की बात ही क्या है ? अपने देश में हम लोगों में से बहुतेरे लोग खुशियां नहीं मना सकते हैं इसलिए दूसरों को खुशियां मनाते देखकर हमें रश्क होता है ।

थोड़ी देर बाद ही रोम आ जायेगा । उसके बाद वेरुत । उसके बाद ही दिल्ली । दिल्ली यानी इंडिया । भारत । लेकिन मैं स्वदेश के जितने ही निकट आ रही हूँ, चिन्ता मुझे उतनी ही घेरती जा रही है । हर पग पर समस्या का सामना करना होगा । स्वदेश में रहूँगी या नहीं, मालूम नहीं, मगर रहूँ तो क्या नौकरी मिल जायेगी ? कलकत्ता जाने की कोई योजना नहीं है । मगर जाना चाहूँ तो रेल का टिकट मिल सकेगा ? मुसीबत में फँस जाने पर पुलिस सहायता करेगी ? एकाएक अस्वस्थ हो जाने पर अस्पताल में भर्ती हो सकूँगी ?

मालूम नहीं ।

कई बरसों तक लन्दन में रहने के दौरान यह सब समस्या के रूप में मेरे सामने नहीं खड़ा हुआ था । लेकिन अब जितना ही दिल्ली की ओर बढ़ती जा रही हूँ, यह सब बात उतनी ही अधिक याद आ रही है । भारत से भारतीय ही देश-प्रेमी हैं और विदेश में जो सब भारतीय रहते हैं वे विश्वासघाती हैं, ऐसी बात नहीं । हजारों भारतीय स्वदेश लौटने को पागल रहते हैं लेकिन आखिर में भय से उन्हें पीछे की ओर कदम रखना पड़ता है । कितने ही डाक्टर इंजीनियर स्वदेश लौटने के बाद दुबारा विलायत भागकर चले आते हैं । श्रीकान्त का मित्र सुविमल घोष ने एडिनबरा में एफ० आर० सी० पास किया और तुरन्त स्वदेश चला गया । श्रीकान्त ने बहुत बार मना किया था मगर वह माना नहीं । एक साल पूरा होते न होते सुविमल का पत्र आया—यह एक साल का अरसा कैसे गुजरा, यह जनाने की मुझमें शक्ति नहीं है । सोचा था, चाहे मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल की नौकरी न मिले लेकिन एफ० आर० सी० पास किये रहने के कारण हजार-डेढ़ हजार की नौकरी अवश्य ही मिल जायेगी । यही वजह है कि वापस आते ही माँ-बाप के दबाव पर सबसे पहले शादी की रस्म पूरी कर ली । चौबीस वर्षीया सुन्दरी और एम० ए० पास शिउली के साथ कुछ महीने मौज के साथ बिताने के बाद रिजेन्ट स्ट्रीट में खरीदे सूट को पहनकर नौकरी की कोशिश में लग गया । पुराने अध्यापकों और मित्रों के घर पर आना-जाना शुरू कर दिया, राइटर्स बिल्डिंग के डिरेक्टर ऑफ हेल्थ सर्विसेस

के पास हर महीने एक रजिस्टर्ड पत्र भेजने के बाद अन्ततः बेरोजगार वैज्ञानिक का भत्ता ले जिन्दा रहने के लिए दिल्ली के सी० एम० आई० के दफ्तर में धरना देना शुरू किया। कहीं कुछ नहीं हो सका। ढाकुरिया के अपने घर पर चार रुपया फ़ीस लेकर प्राइवेट प्रैक्टिस करने पर देखने को मिला कि महीने के अन्त में तीन सौ-चार सौ रुपया घर में देना मुश्किल है। "माँ-बाप को जताये बिना मैंने और शिउली ने बैंक लॉकर से उसका गहना निकाल कर बेच दिया है और लन्दन के दो टिकट कटा लिये हैं।

पत्र के अन्त में लिखा था—मैं नाम-यश या प्रभाव का सपना नहीं देख रहा हूँ। अब वहाँ जाकर जीवन-भर के लिए रजिस्ट्रार की नौकरी स्वीकार कर लूँगा और चाहे कुछ न कर सकूँ मगर इतना जरूर होगा कि हम दोनों की गृहस्थी अच्छी तरह चल जायेगी। साथ ही बूढ़े माँ-बाप को हर महीने कुछ न कुछ सहायता अवश्य कर सकूँगा। अठारह तारीख को जरूर ही गाड़ी लेकर एयरपोर्ट चले आना वरना शिउली की निगाह में मेरी प्रतिष्ठा बरकरार नहीं रह पायेगी।

ब्रिटेन में भी अन्याय-अविचार होता है मगर उसकी वजह से किसी भूखों नहीं मरना पड़ता है। माइनिंग के एम० एस-सी० महीन्दर सिंह ने माइनिंग छोड़कर ट्रैवल एजेन्सी खोली है, यह देखकर आश्चर्य हुआ। बाद में पता चला था कि एक अंग्रेज को एम० एस-सी० पास करने पर जितना वेतन मिलेगा, उतना किसी विदेशी को नहीं मिल सकता है। महीन्दर ने गुस्से में आकर नौकरी छोड़ दी और व्यवसाय करना शुरू कर दिया। उसने हँसते हुए मुझसे कहा था, "अच्छा ही हुआ। नौकरी में एक-दो सौ पौंड अधिक मिलने से सर्वनाश ही होता। व्यवसाय में कोई बाधा नहीं दे सकता है। महीन्दर सिंह अब धनी आदमी हो गया है। ब्राडफोर्ड में तीनेक मकान खरीदकर किराये पर लगा दिया है। जालंधर जिले के अपने गाँव में दो मंजिला मकान बनवाने के अतिरिक्त भी बहुत कुछ किया है। अपने भाई के लिए लुधियाना में स्वेटर का एक छोटा-सा कारखाना खुलवा दिया है।

सिर्फ महीन्दर ही क्यों, और भी कितने ही भारतीय, पाकिस्तानी और बांगला देश के बंगालियों ने इसी वजह से नौकरी छोड़ दी थी और व्यवसाय करना शुरू कर दिया था। आज वे बड़े आदमी हैं। हर साल लाखों पौंड अपना देश भेज रहे हैं। सगे-संबंधियों के लिए काफी कुछ

कर रहे हैं। निष्ठा के साथ परिश्रम करने पर संबलहीन लोग क्या अपने देश में इस सौभाग्य के भागी हो सकते थे ?

हमलोगों के देश में पैदा होने के बाद एक मात्र मृत्यु ही सुनिश्चित है। बीच के दिन वे कैसे जियेंगे, इसका पता किसी को भी नहीं है। उस अनिश्चय के अँधेरे में जाकर मैं क्या जिन्दा रह पाऊँगी ?

यदि संगीहीन एकाकी जीवन जीना चाहूँ तो भी बहुत सारी समस्याएँ हैं। चारों तरफ हमारे संबंध में चर्चा चलने लगेगी। मेरे जीवन के रहस्यों की खोज के लिए कितने ही जासूस स्वेच्छा से कष्ट उठाने को तैयार हो जायेंगे। जवानी आदमी की सबसे बड़ी संपदा होती है मगर हमारे देश के लिए वह अभिशाप है। सन्देह की वस्तु। कॉलेज-यूनिवर्सिटी, ट्राम-बस-लोकल ट्रेन, दुकान-बाजार, सिनेमा हॉल और दफ्तर—हर जगह लोग संगीहीन युवती की ओर देखकर मन ही मन रस का उपभोग करते हैं। कितनी ही झूठी कहानियों की कल्पना कर लेते हैं। योरोप का आदमी यौवन जीते हैं मगर हम लोगों के देश की तरह वहाँ जवानी का कालाबाजार नहीं होता है।

बावजूद इन खामियों के भारत भारत ही है। चाँद की तरह भारत में कलंक रहने के बावजूद उसमें एक ऐसा स्निग्ध आकर्षण है जो दुनिया में और कहीं नहीं मिलता। आदमी का यहाँ ऐसा प्यार मिलता है जो किसी और दूसरी जगह देखने को नहीं मिलता है। सब कुछ में कंजूसी बरतने के बावजूद भारतवासी प्रेम के मामले में कंजूसी नहीं करते हैं। सिराजुद्दौला इतिहास का कलंक है फिर भी हमने उसके जैसे अकर्मण्य, निठल्ले और चरित्रहीन आदमी को भी प्यार किया है। उसके बारे में नाटक करते हैं, आँखों से आँसू बहाते हैं। हम शाहजहाँ को क्यों प्यार करते हैं ? कामुक और अत्याचारी शाहजहाँ को हम भूल गये हैं। यह भी भूल गये हैं कि ताजमहल बनानेवाले के दोनों हाथ उसने अपने हाथ से काट दिये थे। हम केवल प्रेमी शाहजहाँ को याद रखे हुए हैं। उसके संबंध में हम काव्य-साहित्य की रचना करते हैं, गर्व के साथ रवीन्द्रनाथ की 'शाहजहाँ' कविता का पाठ करते हैं और विभोर होकर शचीनदेव बर्मन का गीत सुनते हैं। प्रेम करते हुए सब कुछ भूल जाने की नजीर और किसी देश के इतिहास में इस तरह की नहीं मिलती है। रोहिणी, देवदास और सावित्री सिर्फ हमारे देश में ही मिलेंगे। उदयन

की ही बात लें तो वैसा व्यक्ति पूरे योरोप में भी नहीं मिलेगा। ये लोग उपभोग के लिए प्यार करते हैं, न कि मन के आनन्द और प्राणों की शक्ति के लिए। यही वजह है कि एक के चले जाने पर शून्य-स्थान की पूर्त्ति करने में इन्हें दुविधा का अनुभव नहीं होता।

रंजन मुझे छोड़कर चला गया मगर उसकी जगह कोई अंग्रेज पति होता तो उसकी आँखों में आँसू भर आते ? नहीं। यदि वह बहुत भला और सभ्य होता तो मेरी हड्डी को चूमते हुए कहता, "गुड बाइ डार्लिंग।" उसके बाद किसी दिन कहीं मुलाकात हो जाती तो पूछता, "हैलो, हाउ डू यू डू ?" बस, इतना ही। लेकिन रंजन से अगर मेरी फिर मुलाकात हो जाये तो ? हो सकता है, वह एक बार मेरी ओर देखकर भौंचक रह जाये और उसकी आँखों से आंसू गिरने लगें। हो सकता है, पागल की तरह मुझे अपनी बाँहों में जकड़ ले। और मैं ? मैं क्या उसे अपमानित कर पाऊंगी ? उसकी अवहेलना कर पाऊँगी ? असंभव है। यदि वह किसी मुसीबत में फँस जाये या उसके जीवन में उतार-चढ़ाव का दौर आये तो उसकी सूचना पाकर मैं खामोश रह पाऊँगी ? उस समय क्या बीते दिनों की बातें याद कर मैं उसकी सहायता के लिये आगे नहीं बढ़ आऊँगी ? हम प्यार करने पर देह के साथ-साथ मन भी समर्पित कर देते हैं। मन समर्पित किये बिना देह समर्पित नहीं कर पाते हैं।

उदाहरण के लिए श्रीकान्त को लिया जा सकता है। वह वाकई मुझे प्यार करता है। मैं भी उसे प्यार करती हूँ। वह दफ्तर के काम से एक-दो दिन के लिए बाहर चला जाता है तो मैं एकाकीपन की पीड़ा से छटपटाने लगती हूँ। वह कुछ कहे बगैर भी जाता है तो मैं उसके लिए रसोई पकाकर फ्रिज में रख देती हूँ। सोचती हूँ, अचानक जब वह आ जायेगा तो उसे खाना परोसकर दूँगी। सचमुच ही वह एकाएक आकर हाजिर हो जाता है। रात दस-ग्यारह बजे या उसके बाद भी। उसकी कोई बात सुनने के पहले ही मैं उससे कहती हूँ, "जाओ वाश करके आओ। मैं खाना परोस रही हूँ।"

वह अवाक् होकर मुझसे पूछता है, "तुमने क्या मेरे लिए रसोई पकायी है ?"

"कब ऐसा हुआ है कि बाहर से आने पर तुम्हें खाना न मिला हो ?"

श्रीकान्त आता है और मुझे पीछे से अपनी बाँहों में भरकर कहता है, "अच्छा रुणु, रंजन अगर फिर लौट कर चला आये तो मेरा क्या होगा?"

मैं उसकी बात को कोई तूल नहीं देती हूँ। "रंजन आ चुका और तुम भी आ चुके।"

"लेकिन यदि सचमुच ही आ जाये?"

मैं हँस देती हूँ। पूछती हूँ, "अभी आ रहा है?"

वह खामोश हो जाता है।

"ऊल-जलूल चिन्ता न कर खाना खा लो।"

श्रीकान्त इसके बाद कोई सवाल नहीं करता है और हाथ-मुँह धोकर खाने बैठ जाता है। थका-माँदा श्रीकान्त नीचे उतर गाड़ी स्टार्ट करते हुए चला जाता है। लेकिन यदि कभी ऐसा हो कि वह जाये नहीं और मेरे डब्ल बेड के बिस्तर पर ही देह निढाल छोड़ दे तो?

"एक्सक्यूज मी।" मिस्टर वाल मेरे कान के पास अपना मुँह लाकर बोले, "फैसन योर सीट बेल्ट। अभी तुरन्त हमें रोम में उतरना है।"

"रोम पहुँच गये?"

"हाँ।"

बगल की खिड़की से बाहर की ओर ताकूँ कि इसके पहले ही विमान के अण्डर-कैरेज ने रनवे की भूमि का स्पर्श किया।

"गुड यू हैव ए राउण्ड ऑफ इटालियन बारमूथ?"

मैंने हँसते हुए कहा, "नोट ए बैड आइडिया बट फॉर यू ओनली।"

रोम।

लिओनार्दो दा विनसी एयरपोर्ट।

अब तक मैं तरह-तरह की चिन्ताओं में डूबी हुई थी। सोचा नहीं था कि एयर क्राफ्ट से निकलते ही इस लंबे और खूबसूरत शीशे से घिरे टर्मिनल बिल्डिंग को देखकर चौंक उठूँगी। ऐसा होता है। पत्र से सुख या दुःख की कोई खबर पाकर एक तरह की प्रतिक्रिया जगती है मगर एकाएक उस सुखी या दुखी मनुष्य से मुलाकात हो जाने पर विगलित

हो जाना पड़ता है। हिसाब कर सुख या दुःख का अनुभव नहीं किया जा सकता है।

कलकत्ते से जब लन्दन जा रही थी तो इस लिओनार्दो विनसी एयरपोर्ट में ही योरोप से मेरा पहला साक्षात्कार हुआ था। बड़ा ही अच्छा लगा था। मैं इतिहास की छात्रा हूँ। इस रोम के संबंध में मेरे लिए सैकड़ों कहानियाँ हैं। सब की सब जबानी याद हैं। अब भी लिखने कहा जाये तो पृष्ठ के पृष्ठ रंग सकती हूँ। जिस शहर का कोई इतिहास और एतिह्य नहीं है वह शहर चाहे जितना ही खूबसूरत और आधुनिक क्यों न हो, उसे मन से प्यार नहीं किया जा सकता है। कम से कम मैं तो नहीं कह सकती हूँ। यही वजह है कि आज भी पूजा की छुट्टी में कलकत्ते के जितने आदमी पुरी, वाराणसी, इलाहाबाद, लखनऊ और दिल्ली जाते हैं उसका चौथाई हिस्सा भी नेहरू के नये भारत के तीर्थ देखते नहीं जाता है और जायेगा भी नहीं।

उस वक्त ज्यादा से ज्यादा एक घण्टा इस एयरपोर्ट पर बिताया होगा। उससे अधिक नहीं। लेकिन उसके बाद? जब गर्मियों की छुट्टी में रंजन के साथ आया था तो?

मैंने बहुत बार मना किया था। कहा था, इतनी दूर जाकर क्या होगा? लन्दन के आस पास क्या घूमने-फिरने की जगह नहीं है?"

रंजन ने हँसते हुए कहा था, "है क्यों नहीं? किंग्स क्रॉस, लिवरपुल स्ट्रीट चारिंग क्रॉस, वाटर लू, विक्टोरिया या पैडिंगटन स्टेशन जाकर किसी ट्रेन में सवार हो एकाध घण्टे की यात्रा करने के बाद कितनी ही सुन्दर जगहें घूमने-फिरने लायक मिल जायेंगी।"

"फिर?"

मेरा सवाल सुनकर अब वह चुप नहीं रह सका। उठकर आया, पीछे से मुझे अपनी बाँहों में जकड़ लिया और मेरे चेहरे पर अपना चेहरा रखते हुए बोला, "किसी दूसरी लड़की से शादी करने से तुमसे शादी करने का आनन्द या सुख प्राप्त होता?"

सुनकर मुझे खुशी हुई थी, फिर भी गुस्से का भान करते हुए मैंने उसके हाथ से मुक्त होने की चेष्टा की थी और कहा था, "फालतू बातें मत करो।"

एकाएक उसने मुझे छोड़ दिया और पीछे की ओर से सामने की ओर चला आया। मुझे सिर से पैर तक गौर से देखते हुए बोला, "सच

कह रहा हूँ रुणा, तुम्हें यदि मिनि स्कर्ट-ब्लाउज पहनाकर ऑक्सफोर्ड स्ट्रीट में छोड़ दूँ तो दंगा छिड़ जाये।"

मैंने जरा हँसते हुए कहा, "सो तो है ही। मुझसे खूबसूरत लड़की उन लोगों ने कभी नहीं देखी है।"

उसने बेझिझक कहा, "तुम खूबसूरत नहीं बल्कि एक जीवन्त ज्वालामुखी पर्वत हो। यू मैन बर्न एण्ड बरी एवरीथिंग एण्ड एवरीबॉडी।"

मैं अब खड़ी नहीं रह सकी। छिटककर कमरे से बाहर निकल गयी।

मुझे मालूम था कि एकबार जब उसके दिमाग में यह बात आ गयी है तो वह अगली छुट्टियों में रोम अवश्य ही जायेगा। इसलिए जब उसने गम्भीर होकर मेरे सामने लेखा-जोखा प्रस्तुत किया तो मैं चुप हो गयी। आखिर में वह बोला, "देखो रुणा, उस तरह खुलकर जीवन का उपभोग करना और कहीं दिखायी नहीं पड़ेगा।"

रोम के प्रति उसमें दुर्बलता होने की वजह थी। कलकत्ता से आने के बाद रोम में ही उसने अपने सक्रिय जीवन की शुरुआत की थी। जेनेवा बन्दरगाह से घूमते-फिरते हुए वह रोम आया। तब भी उसकी जेब में कुछ डॉलर बचे हुए थे मगर कुछ दिन यहाँ रहने पर कई बोतल बारोला और मारलोत वाइन पीने के बाद उसने पाया कि उसके पास ट्रेन पर चढ़कर लन्दन जाने का भी पैसा नहीं है। ठीक उसी समय ग्रैण्ड स्वीपर के सामने स्पेनिश स्क्वायर में एक युवक और एक युवती को अपनी ओर ताकते हुए देखकर उसने हँसकर कहा, "ग्रजी? धन्यवाद।"

लड़की ने आगे बढ़कर पूछा, "हमें धन्यवाद क्यों दिया?"

"तुम लोग हँसोगे तो मैं धन्यवाद न दूँ?"

युवक ने पूछा, "तुम टूरिस्ट हो?"

रंजन ने कहा, "नहीं, मुझे टूरिस्ट नहीं कहा जा सकता।"

"फिर?"

दुखित रहने के बावजूद रंजन हँस दिया। बोला, "बड़ी लम्बी दास्तान है।"

इटली के लोग बात करना और सुनना पसन्द करते हैं। योरोप के

और किसी स्थान में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। चुप्पी ही जैसे उनकी विशेषता है।

इटलीवासी ठीक इसके विपरीत हैं। ये लोग शोर-गुल करते हैं और शोर-गुल सुनना पसन्द करते हैं। चुप्पी उनकी निगाह में कोई गुण नहीं, बल्कि जिन्दादिली के दैन्य की सूचक है।

रंजन को अपने साथ लाकर वे ग्राण्ड स्वीपर की सीटी पर ही अगल-बगल बैठ गये। सारी बातें सुनीं। युवक ने पूछा, "कितने दिनों का वीसा है?"

"तीन महीने का।"

इन दोनों युवक-युवती की सहायता से ही रंजन ने चमड़े के बैग तैयार करनेवाले कारखाने में लुक-छिपकर काम कर लन्दन जाने के लिए राह-खर्च का इन्तजाम किया। इतालवियों के प्रति रंजन अत्यन्त उच्च धारणा रखता है। रवाना होने के पहले उसने कितनी की बातें बतायीं। कई दिनों तक सिर्फ इटली के बारे में ही उससे सुनने को मिला। अन्त में बोला, "यहाँ यदि किसी मुसीबत में पड़ जाऊँ तो कोई अंग्रेज मेरा हाल-चाल पूछने नहीं आयेगा, लेकिन वहाँ यह कल्पना के परे की बात है। सुख के दिन वे दौड़े-दौड़े आते हैं और मुसीबत में भी भीड़ लगाकर इकट्ठे हो जाते हैं।"

शुरू में थोड़ा-बहुत द्वन्द्व और संशय रहने के बावजूद जब गैटविक एयरपोर्ट से ब्रिटिश कैलेडोनियन वायु-मार्ग के चार्टर्ड फ्लाइट से रवाना हुई तो उस समय सचमुच ही आनन्द और उत्तेजना से मन परिपूर्ण हो उठा था। आनन्द मुखर छुट्टी के यात्रियों के बीच में ही एकमात्र भारतीय महिला थी, इसलिए मुझे देखकर सब लोग खुशियों से चहकने लगे।

आज उन दिनों की स्मृति आते ही मन दुखित हो जाता है। छाती के अन्दर कुछ टीसने लगता है। ऐसा क्यों नहीं होगा? एयर क्राफ्ट से एरोरैंप में उतरने के दौरान रंजन का चेहरा मेरे कंधे पर था और उसका एक हाथ मेरी कमर को लपेटे था। मैंने कहा, "लोग सोचेंगे, हम हनीमून मनाने आये हैं।"

"रुणा, तुम्हारा-मेरा हनीमून जिन्दगी भर चलता रहेगा। मेरे प्यार में कभी उतार नहीं आयेगा।"

नयी शादी के बाद हर कोई पत्नी के साथ जरा अधिक पागलपन

करता है। उस वक्त बदसूरत औरत भी खूबसूरत लगती है, उसकी देह की बनावट पति के मन में खुशियों का सैलाब ले आता है। और यदि पत्नी खूबसूरत हो तो यह सैलाब बहुत दिनों तक टिका रहता है। एक महीना, दो महीना, तीन महीना। शायद और कुछ ज्यादा दिनों तक। उसके बाद सैलाब का पानी सूखने लगता है। यह स्वाभाविक भी है। मोह कभी चिरस्थायी नहीं हो सकता और न होता है। शरद ऋतु के बादलों की तरह वह कुछ क्षणों के लिए आता है और फिर विदा हो जाता है। सभी ऋतुओं को पारकर जो अमलिन रहता है यह है प्रेम। इस दुनिया के कितने लोगों के अन्दर वह प्रेम है? पारिवारिक और सांसारिक जीवन में एक साथ रहने को ही हम भूल से प्रेम समझने लगते हैं।

आज इस लियोनार्दो दा विनसी हवाई अड्डे पर कदम रखते ही बीते दिनों के लेखा-जोखा के खाते को एकबार और अच्छी तरह जाँच किये बगैर रह नहीं पा रही हूँ। हँसने का मन करता है। रंजन के चले जाने के बाद कितनी बार उसके प्रेम-प्यार, औदार्य और दैन्य को जाँच कर चुकी हूँ, उसकी कोई सीमा नहीं। हर रोज कम से कम एक बार उसे कटघरे में खड़ा कर न्याय करती हूँ। कोई सुख की स्मृति है तो कोई दुःख की। उस सुख-दुःख की स्मृति को दुहराने को बाध्य हो जाती हूँ। ठीक रानी दीदी की ही तरह।

कलकत्ते के हम लोगों के मकान के ठीक सामने वाले घर के अमर चाचा की लड़की रानी दी थी। मुझसे सिर्फ चार वर्ष की बड़ी थी। शादी के ठीक दो साल बाद रानी दी विधवा हो गयी। हर वक्त वह कुछ न कुछ सोचती रहती थी। एक दिन मैंने कहा, "अच्छा रानी दी, एक बात कहूँ?"

"कहो।"

"तुम हमेशा क्या सोचती रहती हो?"

जरा खामोश रहने के बाद रानी दी बोली, "हमेशा नहीं, तब हाँ, बीच-बीच में जरूर सोचती हूँ।"

"क्या सोचती हो?"

एक लम्बी साँस लेकर उसने कहा, "अब सोचूँगी ही क्या! इन दो बरसों की स्मृति को छोड़कर सोचने के लिए और कोई मसाला नहीं है।"

मेरी हालत भी बहुत-कुछ रानी दी जैसी ही है। बहुत कुछ के बीच भी बार-बार रंजन की याद आ जाती है। कटुता और फक्कड़पन की स्मृति मन में जमा रहने पर भी उसके बारे में सोचना अच्छा लगता है। इसका कारण है। रंजन से जितना कुछ प्राप्त हुआ है उसमें किसी प्रकार की त्रुटि या अपूर्णता नहीं थी। सावन की धारा की तरह रंजन ने हमेशा आदर और प्यार की धारा उलीच दी थी। कोहबर की रात से लेकर चले जाने के एक दिन पहले तक। मुझे विरामहीन गति में उसका प्यार प्राप्त हुआ है। एक दिन भी ऐसा महसूस नहीं हुआ था कि उसके प्यार में उतार आ गया है।

इस रोम में आकर उसने कैसा काण्ड किया था! अचानक रात में नींद टूटने पर देखा, वह सामने के सोफे पर बैठा है और टेबल-लाइट जल रही है। पूछा, "तुम नहीं सो रहे हो?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"यों ही।"

"यों ही का मतलब? अभी न सोओगे और सवेरे न उठ सकोगे तो ड्यूटी पर कैसे जाओगे?"

उसने इतना ही कहा, "तुम सो रहो।"

"तुम नहीं सोओगे?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"आज रात-भर तुम्हें देखता रहूँगा।"

"इसका मतलब?"

"सच आज सोऊँगा नहीं, सिर्फ तुम्हें देखता रहूँगा।"

"बगल में लेटकर नहीं देख सकते हो?"

सचमुच वह उस रात नहीं सोया। रात-भर सोफे पर बैठकर मेरी ओर ताकता रहा, ताकता रहा। दूसरे दिन सवेरे कहा, "तुम जब सो जाती हो तो देखने में कितनी खूबसूरत लगती हो!"

टर्मिनल बिल्डिग में घुसते ही देखा, सूरज अस्त होने-होने पर है। मिस्टर वाल ने कहा, "सूर्य अस्त होनेवाला है। दिल्ली पहुँचते ही पुनः सूर्य दिखायी पड़ेगा।"

इतालवियों के काले बाल और काली आँखें देखते ही लगने लगता है कि योरोप की सरहद के आखिरी छोर पर पहुँच गये हैं। ठीक इसी वक्त वाल की बात सुनकर लगा कि सचमुच ही रास्ते का अन्त होने जा रहा है। शून्यता के बीच तैरने की अवधि अब लम्बी नहीं है। अब मिट्टी की धरती पर उतरना होगा, यथार्थ के सामने खड़ा होना पड़ेगा और किसी न किसी निर्णय पर पहुँचना होगा। इतने दिनों तक जो कुछ घटित हो चुका है, वह अपनी रफ्तार में ही घटित हो चुका है। लिखाई-पढ़ाई, शादी-ब्याह, विलायत जाना, सब कुछ। मुझे कुछ तय नहीं करना पड़ा है, लेकिन अब मुझे ही सब कुछ तय करना है, मुझे ही अपने पथ का चुनाव करना होगा। सफल हो सकूँगी क्या ?

मालूम नहीं।

बस इतना ही मालूम है कि विवेक यदि बाहु बढ़ाकर मुझे ग्रहण न करे, यदि उसमें विन्दु मात्र भी संशय दिखायी पड़े तो तत्काल एयर इण्डिया ऑफिस जाकर रिटर्न टिकट कटा लूँगी। चाहे और कुछ न हो मगर लौटने लायक पैसा मेरे पास है। लन्दन लौटकर पुनः नौकरी करना शुरू कर दूँगी। इस्लाम साहब के घर में रहूँगी। शनिवार और रविवार विजया और श्रीकान्त के साथ बिता दूँगी। यदि थकावट महसूस होने लगे, यदि एकाकीपन के कष्ट से बेचैन हो उठूँ, तो भी श्रीकांत पर कोई अधिकार नहीं जता पाऊँगी। लेकिन श्रीकान्त यदि आगे बढ़ आये, यदि वह अपना कोई अधिकार जताये, तो उसको निराश नहीं करूँगी। निराश कर भी नहीं पाऊँगी। स्वयं को उसके हाथों में समर्पित कर दूँगी। स्वेच्छा और आनन्द के साथ। क्यों नहीं करूँगी ? वैसा भलाई चाहनेवाला, सहृदय मित्र और कोई नहीं है। विजया तो अकसर मजाक में कहती है, "तेरी श्रीकान्त से घनिष्ठता न रहती तो मैं उससे शादी कर लेती।"

"मुझसे उसकी क्या बहुत अधिक घनिष्ठता है ?"

"तू यह भी नहीं जानती ?"

"कहाँ जानती हूँ ?"

विजया ने हँसते हुए कहा, "तू भले ही बात दबाकर रख ले मगर वह तो खुल्लम-खुल्ला स्वीकार करता है।"

"स्वीकार क्या करता है ?"

"यही कि तेरे सिवा और कोई उसे अच्छा नहीं लगता।"

"उसने यह बात मुझसे कभी नहीं कही है।"

"न कहने पर भी तू समझती है। समझती नहीं है क्या? जानती नहीं है?"

"श्रीकान्त मेरा भला चाहता है मगर प्यार करता है, यह मालूम नहीं।"

"फिर जानना तेरे लिए जरूरी नहीं है।"

अब मैं कोई सवाल नहीं करती हूँ। विजया भी बहुत देर तक खामोश रहती है। उसके बाद कहती है, "चाहे तू जो कुछ कह रुणु, तुम दोनों को एक साथ देखने से मुझे बड़ा ही अच्छा लगता है।"

"क्यों?"

"चाहे स्वभाव की बात लो, चाहे चरित्र की, तुम दोनों में बहुत अधिक समानता है।" एक बार हँसते हुए चेहरे से मेरी ओर देखकर बोलो, "वकील विज्ञापन की भाषा के यू आर मेड फॉर इच अदर।"

मैं हँस देती हूँ।

विजया एकाएक खासी गम्भीर होकर बोली, "रुणु, तूने तो जिंदगी में एक ही मर्द को देखा है, लेकिन मैं बहुत सारे मर्दों के साथ हिल-मिल चुकी हूँ। सच कह रही हूँ, श्रीकान्त जैसा युवक शायद ही मिलता है।"

"श्रीकान्त अच्छा है इसमें किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं।"

"अच्छा होने पर भी कोई श्रीकान्त नहीं हो सकता।"

"इसका मायने?"

"देख रुणु, इस दुनिया में सभी पाना चाहते हैं। बहुत कुछ पाना चाहते हैं और उनका उपभोग करना चाहते हैं। कोई खुलेआम उपभोग करता है और कोई छिपे तौर पर। मन ही मन। श्रीकान्त के अन्दर पाने का कोई आग्रह नही है। लन्दन में रहकर इस तरह का संयम और उदारता रखना आसान बात नहीं है।"

श्रीकान्त के बारे में विजया अत्यन्त उच्च धारणा रखती है, यह बात मुझे मालूम है। इसके बहुत सारे कारण हैं। विजया अकसर लोगों से कहती है, "रात के वक्त श्रीकान्त के साथ एक हो कमरे में रहूँ तो भी मेरे लिए भय की कोई बात नहीं है। मैं जानती हूँ; श्रीकान्त विजया के पास जाता है। वहाँ रहता है, खाना खाता है। ऐसा बहुत बार

हुआ है कि मैं अचानक वहाँ पहुँच गयी हूँ। विजया या श्रीकान्त ने हँसकर दरवाजा खोल दिया है। कभी किसी को मैंने चौंकते हुए नहीं देखा है। श्रीकान्त और मैं कहाँ नहीं गये हैं? कितने ही दिन इस कमरे में घण्टों तक रहे हैं। सवेरे, दोपहर और शाम में। एक बार भी उसे असंयत आचरण करते नहीं देखा है। पिछले वर्ष दशहरे के दिन शाम के वक्त जैसे ही यह मेरे कमरे के अन्दर आया, मैंने उसे प्रणाम किया। उसने थोड़ी दूरी रखते हुए हौले से अपने बाहुओं में मेरे गले को समेटते हुए पूछा, "मुझे तुमने प्रणाम क्यों किया रुणु?"

मैंने एक बार उसकी ओर देखा और फिर आँखें झुकाकर कहा, "आज के दिन तुम्हारे अतिरिक्त और किसको प्रणाम कर आशीर्वाद की कामना करूँ?"

मैं दिल्ली क्यों जा रही हूँ, यह बात विजया को मालूम नहीं है। मैंने उसे नहीं बताया है। बता नहीं सकी हूँ। तब हाँ, उसे शायद कुछ सन्देह हुआ है। कई दिन पहले उसने मुझसे कहा था, "इतना खर्च कर इण्डिया क्यों जा रही है?"

क्या जवाब दूँ? मैं खामोश रही।

"जल्दी ही घूम-फिर कर चली आना। तू न रहेगी तो मैं और श्रीकान्त कैसे दिन बितायेंगे?"

"मैं न रहूँगी तो धरती का घूमना बन्द नहीं हो जायेगा। तुम लोगों का दिन भी ठीक से·····"

विजया ने मुझे वाक्य पूरा नहीं करने दिया। "नहीं री रुणा, सचमुच ही दिन बिताना मुश्किल हो जायेगा। तू जा रही है, यह सुनकर श्रीकान्त बेहद अपसेट हो गया है।"

मैं पुनः चुप्पी ओढ़े रही।

विजया ने एकाएक हँसते हुए कहा, "तू लौटकर आयेगी तो श्रीकान्त सम्भवतः माला लिए ही हियरो एयरपोर्ट पर उपस्थित रहेगा।"

मेरी बगल से कोट उठाकर मिस्टर बाल ने मेरा हाथ पकड़कर पुकारा, "गेट अप मिस रुणु।"

धीरे-धीरे मैं टर्मिनल बिल्डिंग से निकल मिस्टर बाल के पीछे-पीछे बाहर आयी। थोड़ी देर बाद ही रैम्प से विमान में चढ़ते वक्त मैंने सुदूर आकाश की ओर देखा, सूरज बिलकुल अस्त हो चुका है। विमान के अन्दर जाने के पहले एक बार ठिठककर पीछे की ओर देखा। योरोप

के अन्तिम छोर की सीमा पर खड़े रहने के बावजूद दूसरे छोर पर बसे लन्दन का सब कुछ साफ-साफ दिखायी पड़ा। श्रीकान्त का उदास चेहरा भी दीख गया। बरदाश्त नहीं हुआ। जल्दी-जल्दी विमान के अन्दर जाकर अपनी सीट पर बैठ गयी।

मिस्टर बाल ने मेरी ओर देखा तो वे अवाक् हो गये, "ह्वाट द रांग ? यू आर इन टीअर्स। तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों ?"

मैंने जबरन हँसने की कोशिश की लेकिन मेरे मुँह से एक भी शब्द बाहर नहीं आया।

विमान के अन्दर जाते ही मुझे लगा, अब भारत दूर नहीं है। निकट आ गया है। बीच में बेरुत पड़ता है। उसके बाद ही दिल्ली। दिल्ली मेल से दिल्ली से हावड़ा आने के दौरान आसनसोल पार करने के बाद बार-बार यही लगता है कि अब ठिकाने पर पहुँच गये हैं। वर्धमान पार करने के बाद ही तो हावड़ा है। कलकत्ता है। खिड़की से निहारते रहने पर जब रोम आँखों से ओझल हो गया तो मेरे मन की हालत भी ठीक वैसी ही हो गयी।

'नो स्मोकिंग और फैसन योर सीट बेल्ट' के संकेत-आलोक के ओझल होते ही एयर क्राफ्ट कमाण्डर ने सूचित किया कि रोम से बेरुत की दूरी चौदह सौ पचपन मील है। टु-थ्री फोर-टु किलोमीटर। तीनेक घण्टे का रास्ता। रास्ते में एथेंस और निकोसिया मिलेगा।

मिलने दो। छोटे-मोटे और कितने ही शहर मिलेंगे लेकिन किसी को देख नहीं पाऊँगी। अतः किस शहर के ऊपर से उड़कर जा रही हूँ, यह जानने से फायदा ही क्या है ? ट्रेन से जाने के समय कम से कम शहर का एक छोर दिखायी पड़ जाता है। स्टेशन पर कुछ आदमी दिखायी पड़ते हैं। ट्रेन न रुकती है तो भी यह सब दिखायी पड़ता है। प्लेन में ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती। तीस हजार फीट ऊपर से जाते हुए सिर्फ थोड़ी-बहुत रोशनी दिखायी पड़ती है, और कुछ भी नहीं। सुदूर आकाश के कुछ तारों के अतिरिक्त अभी खिड़की से बाहर की ओर ताकने पर और कुछ भी नहीं दीख पड़ेगा।

धीरे-धीरे जितना ही दिल्ली के समीप पहुँचती जा रही हूँ, मन के अन्दर चिन्ताएँ उतनी ही अपनी जकड़ मजबूत करती जा रही हैं। जब टिकट कटा रही थी उस समय विवेक के सम्बन्ध में अनेकानेक सपने देखे थे। मन ही मन अपना और विवेक का एक छोटा-सा घर-संसार

गढ़ लिया था। अब यह सपना देखने में बेढंगा जैसा लगता है। मन में हो रहा है, नहीं-नहीं, मैं इतनी बौनी नहीं हो सकूँगी। नहीं होऊँगी। होऊँ ही क्यों? चाहे किसी कारणवश मैं अपने पति को नहीं पा सकी लेकिन अपनी खूबसूरती और जवानी की दुकान सजाकर विवेक से सौदेबाजी करने क्यों जाऊँ?

यह असंभव है। मेरे लिए कल्पना के परे की बात। विमान पर चढ़ चुकी हूँ तो दिल्ली जाऊँगी ही। कुछ दिनों तक उसके घर में ठह-रूँगी। कुतुबमीनार, लाल किला, पार्लियामेन्ट हाउस और राष्ट्रपति भवन देखूँगी। और अगर संभव हो सका तो एक दिन के लिए आगरा जाकर ताजमहल देख आऊँगी। मैंने यह सब नहीं देखा है। दिल्ली जा रही हूँ तो इस अवसर से लाभ उठाकर यह सब देख लेना ही अच्छा रहेगा। और कभी यह सुयोग मिलेगा या नहीं, मालूम नहीं। संभावना कम ही है। यदि विवेक अच्छा बर्ताव करे, आग्रह दिखाये तो फिर कुछ दिन टिक जाऊँगी वरना एक-दो दिन रहकर ही चली आऊँगी।

एकाएक अकेलेपन की पीड़ा बरदाश्त न कर पाने के कारण, निहा-यत भावावेश में ही दिल्ली जा रही हूँ, यह ठीक है; मगर मैं किसी से दया की भीख नहीं माँगूँगी। किसी के गले का काँटा बनकर नहीं रहूँगी। कई साल लन्दन में बिताने के कारण मैं आत्म-मर्यादा के प्रति काफी सजग हो गयी हूँ। भारत छोड़कर लन्दन जाने पर मुझे बहुत कुछ से हाथ धोना पड़ा है, मगर बहुत-कुछ पाया भी है। उनमें से एक है यह आत्म-मर्यादा।

भावावेग में आकर दिल्ली जाने का निर्णय लेने के बावजूद इस आत्म-मर्यादा बोध के कारण रिटर्न टिकट कटा लिया है। जिस दिन और जिस क्षण महसूस करूँगी कि अच्छा नहीं लग रहा है, उसी दिन और उसी क्षण एयर इंडिया के दफ्तर में जाकर रिटर्न बुकिंग करा लूँगी। लन्दन लौट जाऊँगी। रात में पागलपन करने के लिए एक मर्द के अति-रिक्त वहाँ सब कुछ है। सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। मेरा घर-द्वार, गृहस्थी, नौकरी-चाकरी सब कुछ है। बार्कले बैंक से लगभग सारा पैसा निकाल लेने के बावजूद अब भी चालीस पौंड पड़े हुए हैं। यदि मैं एक सौ पौंड का चेक लेकर जाऊँ तो भी वे वापस नहीं करेंगे। धीरे-धीरे बाकी पैसा जमा कर देने से ही वे लोग खुश हो जायेंगे। इसके अलावा एक-दो महीने का किराया न दूँ तो भी इस्लाम साहब कुछ नहीं कहेंगे।

इस पर मेरी नौकरी है। अतः विवेक में यदि आन्तरिकता का अभाव दिखायी पड़ेगा तो लौट आऊँगी।

अच्छा, अगर किसी कारणवश विवेक हवाई अड्डे पर नहीं आये तो ? यह जरूर है कि थोड़ी-वहुत परेशानी में पड़ जाऊँगी, लेकिन उससे अधिक कुछ भी नहीं। एयरपोर्ट से फोन कर एक मझोले किस्म के होटल में चली जाऊँगी। उसके वाद यदि संभव हुआ तो खुद ही घूम-फिर कर देख लूँगी। हो सका तो आगरा भी जाऊँगी। सुनने में आया है, ताज एक्सप्रेस नामक एक अच्छी-सी ट्रेन है। लन्दन से जाने-पहचाने जो आदमी दिल्ली आये हैं, वे इसी ट्रेन से जाकर आगरा देख आये हैं। यदि अच्छा लगे और सुविधा हो तो फिर आगरे में एक दिन ठहर सकती हूँ। उसके वाद कलकत्ता चली जाऊँगी।

सुनने में आया है, दिल्ली से कलकत्ते का टिकट पाना बड़ा ही कठिन काम है। दो व्यक्तियों से सुनने को मिला है कि रिश्वत देने से टिकट मिल जाता है। लेकिन मेरे द्वारा यह काम नहीं हो सकेगा। यदि रेलगाड़ी का टिकट नहीं मिलेगा तो हवाई जहाज से चली जाऊँगी। मेरे पास एक सौ पौंड का ट्रेवलर्स चेक के अलावा लगभग पचास-पचपन पौंड है। इसका मतलब यह है कि भारतीय मुद्रा में तीन हजार रुपया। एकाध महीने की छुट्टी विताने के लिए पर्याप्त है।

प्याली को मैंने सूचना दी है कि दिल्ली होकर कलकत्ता आ रही हूँ मगर कव पहुँचूंगी, मालूम नहीं। तब हाँ, इतना जरूर लिखा है कि कलकत्ता जाने पर उसके यहाँ ही ठहरूंगी। मैंने उसे कई बार लिखा है, "तेरे पति को तो मोटी तनख्वाह मिलती है। हर बार छुट्टियों में दिल्ली, शिमला, बंबई और मद्रास का चक्कर लगाने के बजाय एकबार मेरे पास चली आओ। कुछ दिनों के लिए ही सही, लेकिन वीते दिनों का स्वाद फिर से प्राप्त हो जायेगा।" उत्तर भेजा प्याली के पति ने—आप दस नवंर डाउनिंग स्ट्रीट के सौजन्य से सुख और स्वच्छन्दता से जीवन जी रही हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे बारे में कोई जान-कारी ही न रखें। हम लोगों के साथ इस तरह का मजाक करने के वदले आप ही एक बार चली आयें। पुराने दिनों के कलकत्ते में ही बीते दिनों का आनन्द पाना संभव है, न कि लन्दन में। इसके अलावा आप की प्रशंसा सुनते-सुनते मैं पागल जैसा हो गया हूँ। आइये। कुछ दिनों तक आप दोनों सहेलियों के साथ दिन विताने पर मैं स्वयं धन्य समझूंगा।

मैं यद्यपि दिल्ली में विवेक के पास ठहरूँगी लेकिन यह बात मैंने किसी से नहीं कही है। लोगों को मालूम है कि एक-दो दिन दिल्ली का चक्कर लगाने के बाद ही मैं कलकत्ता चली जाऊँगी। विजया और श्रीकान्त को प्याली का पता देकर आयी हूँ। जरूरत पड़ेगी तो वे लोग उसी के पते पर पत्र भेजेंगे। उन दोनों पर मैं कुछ कामों की जिम्मेदारी भी सौंप आयी हूँ। उस संबंध में भी वे लोग मेरे पास पत्र भेजेंगे।

परसों विजया ने मुझे अपने यहाँ खाने पर बुलाया था। श्रीकान्त भी था। विजया ने मुझे कुछ मुर्शिदाबादी साड़ियाँ लाने को कहा है। कलकत्ते के बैंक में उसकी खासी अच्छी रकम है। मुझे वह चेक दे रही थी मगर मैंने लिया नहीं। कहा था, जरूरत पड़ेगी तो सूचित करूँगी। मुझे मालूम है कि श्रीकान्त को बहुत दिनों से शौक है कि वह तसर का कुर्ता पहने, मगर उसके पास नहीं है। उसने मुझे रुपया देना चाहा परन्तु मैं ले नहीं सकी। रात के खान-पान और गपशप के बाद श्रीकान्त की गाड़ी से ही घर वापस आयी। घर के सामने पहुँचने पर उसने कहा, "भारत जा रही हो, तुम्हारा बहुत ही पैसा खर्च हो जायेगा। इसलिए मेरा कहना है कि यदि तुम कुछ अन्यथा न लो तो फिर....."

इतना कहकर कोट के अन्दर की जेब से पौण्ड की एक गड्डी निकाल कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "रख लो, एकाएक जरूरत पड़ सकती है।"

मैंने नोट की गड्डी लेकर पुनः उसे उसके कोट के अन्दर की जेब में ही डाल दिया।

"क्या हुआ ? लिया नहीं ?"

"नहीं, जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"अचानक जरूरत पड़ सकती है। जरूरत न पड़े तो वापस आने के बाद लौटा देना।"

"यदि खो जाये ? चोरी हो जाये ?"

श्रीकान्त ने बस इतना ही कहा, "चोरी हो जाये तो इत्मीनान की साँस ले पाऊँगा।"

एकाध घण्टे बाद ही विजया और श्रीकान्त का फोन आया। दोनों ने मेरे कलकत्ते के पते को नोट कर लिया। मैं समझ गयी कि मेरे द्वारा पैसा न लेने पर उन्होंने फोन पर आपस में बातचीत कर मेरे पते को

जानकारी प्राप्त कर ली है। लगता है, उन दोनों को मेरे पास कुछ रकम भेजे बिना शान्ति नहीं मिलेगी।

अच्छा ही होगा। मुसीबत कब आ जाये, इसके बारे में कोई कुछ कह नहीं सकता। इसके अलावा इतने दिनों के बाद कलकत्ता जाने पर किस प्रकार की परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा, कौन जाने ! उन लोगों के पैसे से खरीद-फरोख्त करने के बजाय यदि अपनी जरूरत में खर्च कर दूँ तो भी वे लोग अन्यथा न लेंगे।

आज बहुत सवेरे ही जग गयी थी। घर का सब कुछ सहेजने के बाद स्वयं तैयार हुई थी। थोड़ा-बहुत खाना खाया था। उसके बाद इस्लाम साहब वगैरह को सारा कुछ बताकर भाभी को चाबी दे आयी थी और टैक्सी से एयर टर्मिनल चली आयी थी। वहाँ से हिथरो। उसके बाद दिन भर हवाई जहाज से यात्रा करती रही हूँ। बड़ी थकावट लग रही है। पलकें झपक रही हैं। मिस्टर बाल ने हैट रैक से जैसे ही एक छोटा-सा तकिया मेरे सिर के नीचे रखा, समझ गयी कि मैं सो गयी हूँ। आँख फैलाकर होठों की मुस्कराहट के माध्यम से उन्हें धन्यवाद जनाया। इतनी नींद आ रही है कि जबान से एक भी शब्द बोल नहीं पा रही हूँ।

बाल साहब के द्वारा पुकारे जाने पर मेरी नींद टूटी। "एक्सक्यूज मी मिस रुणु, फैसन योर सीट बेल्ट। हम बेरुत पहुँच गये हैं।" मैंने झटपट कमर में सीट-बेल्ट लगा लिया। मेरे द्वारा हैण्डबैग से रूमाल निकाल कर मुँह पोंछते ही अण्डर कैरेज ने रनवे का संस्पर्श किया।

बेरुत।

कलकत्ते से लन्दन जाने के दौरान कैरो होकर गयी थी। अबकी पहली बार बेरुत के दर्शन कर रही हूँ। कितना विशाल और सुन्दर टर्मिनल बिल्डिंग है ! योरोप के अनेक हवाई अड्डे पर इतना बड़ा और सुन्दर टर्मिनल बिल्डिंग देखने को नहीं मिलता है। पता नहीं क्यों मुझे पश्चिम एशिया और मध्य पूर्व पिछड़ा हुआ अंचल नहीं लगता। अधिकांश भारतीयों की यही धारणा है। बेरुत का एयरपोर्ट टर्मिनल

बिल्डिंग और वहाँ के लोगों का स्वास्थ्य देखने पर लगता ही नहीं कि वहाँ किसी प्रकार का अभाव और कमी है।

टर्मिनल बिल्डिंग के अन्दर और ट्रांजिट लाउंज के बीच दुकानों की कतारें हैं। ड्यूटो फ्री शॉप्स। स्विस घड़ी, जर्मन कैमरा, जापानी ट्रांजिस्टर और टेप रेकार्ड से शुरू कर लेबनान का विश्व-विख्यात रेकेड एम ब्रॉयडरीज, सोने का गहना, चमड़े का सामान वगैरह बहुत सारी चीजें मिलती हैं। हम लोगों के हवाई जहाज के तमाम यात्री इन दुकानों के सामने इकट्ठे हो गये हैं। देख-सुन रहे हैं, खरीद-फरोख्त कर रहे हैं। उन लोगों की तरह मैंने भी दुकानों के सामने घूमना और चीजों को देखना शुरू किया। उसके बाद पता नहीं मन में क्या विचार आया कि पाँच पौण्ड में एक अंगूठी खरीद ली।

"फॉर योर ब्यॉय फ्रेण्ड मिस रेणु ?" मिस्टर बाल ने हँसते हुए पूछा।

"आपके अलावा और कोई मेरा ब्यॉय फ्रेण्ड नहीं है।" मैंने भी हँसते हुए ही उत्तर दिया।

"यही सुनने के लिए ही तो मैंने पूछा था।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद!"

मिस्टर बाल मुझसे सटकर खड़ा हो गया और मेरे कान के पास मुँह लाकर बोला, "क्लाइव से आपकी मुलाकात हुई होती तो फिर हम इंडिया को जीत नहीं सकते थे।"

उसकी बात पर मैं हँस देती हूँ।

"आप हँस क्यों रही हैं ? मैंने ठीक ही कहा है। क्लाइव हारकर भूत ही जाता तो भी हँसते हुए लन्दन लौटकर चला आता।"

हम लोगों के बेरुत की बस की एक घण्टे की अवधि समाप्त हो गयी। पुनः यात्रा शुरू हो गयी। हवाई जहाज में नया क्रू है। एयर-होस्टेस से लेकर कमाण्डर तक नये हैं। हवाई जहाज ने जैसे ही उड़ान भरा, नये कमाण्डर ने अपनी और अपने सहकर्मियों की ओर से शुभ-कामना प्रकट की। इसके अलावा दिल्ली की दूरी की सूचना दी। दो हजार आठ सौ अड़तीस मील। चार हजार पाँच सौ अड़सठ किलो-मीटर। यानी लगभग दो घण्टे का रास्ता है। लेबनान के अलावा सिरिया, इराक, ईरान, अफगानिस्तान पार करने के बाद, पाकिस्तान

की बगल से उड़ान भरते ही हम दिल्ली पहुँच जायेंगे। दमिश्क कार-मानशा, कंधार के अलावा और कितने ही शहरों के ऊपर से उड़ान भरते हुए हम यात्रा करेंगे।

और?

अभी डिनर परोसा जायेगा।

डिनर लेते हुए मिस्टर वाल ने पूछा, "दिल्ली पहुँचते ही आप गायब हो जायेंगी?"

"गायब क्यों हो जाऊँगी?"

"मुलाकात होगी?"

"मैं कितने दिन दिल्ली में ठहरूँगी, इसका कोई ठीक नहीं है।"

"उसके बाद कहाँ जाइएगा?"

"कलकत्ता।"

"उसके बाद?"

क्या जवाब दूँ? खुद मुझे ही पता नहीं है तो उन्हें क्योंकर बताऊँ? कहा, "दिल्ली में एक-दो दिन ठहरे बिना कुछ बताना मुश्किल है।"

मिस्टर वाल बोले, "मैं एयर इंडिया के न्यूयार्क ऑफिस में काम करता हूँ। भारत में पंद्रह-बीस दिन रहने के बाद लौट जाऊँगा।"

मैंने हँसी रोककर पूछा, "एक साथ आगरा चलिएगा?"

"क्यों नहीं चलूँगा?"

"आपसे कहाँ संपर्क स्थापित किया जा सकता है?"

"मैं जनपथ होटल में ठहरूँगा।"

"ठीक है।"

"फोन कीजिएगा?"

"करूँगी।"

मिस्टर वाल ने छुरी-काँटा नीचे रख दोनों हाथ आगे बढ़ाते हुए मुझसे हैण्डसेक किया और मेरे कान में कहा, "भय की बात नहीं है, आपके ब्यॉय फ्रेण्ड की अँगूठी पर मैं अधिकार जताने नहीं जाऊँगा।"

"ताज देखते-देखते आपके विचारों में कहीं परिवर्त्तन तो नहीं आ जायेगा?"

"मैं थोड़े ही पॉलिटिशियन हूँ कि हर घण्टे अपने विचारों में परि-वर्त्तन लाता रहूँ?"

"धन्यवाद।"

डिनर समाप्त हो गया। रास्ते में सिगरेट, लाइटर, परफ्यूम और ड्रिंक्स बेचने का दौर शुरू हो गया। प्याली के लिए एक परफ्यूम खरीदा। इसके अलावा एक कार्टून स्टेट एक्सप्रेस सिगरेट भी खरीदी। लेकिन यह किसे दूँगी? विवेक को या प्याली के पति को?

रोशनी बुझ गयी। एयरहोस्टेस ने हैट रैक से कंबल और छोटे-छोटे तकिये निकालकर यात्रियों को दिये। यात्रियों ने अपनी-अपनी सीट को स्लामबरेट कर सिर के नीचे तकिया और पैरों पर कंबल रख सोने की कोशिश की। मैंने भी। मिस्टर बाल ने रीडिंग लाइट जलाकर एक किताब पढ़ना शुरू कर दिया।

"गुड नाइट।"

"गुड नाइट।"

सिर के नीचे फोम का तकिया और कमर तक कंबल खींचकर मैंने चित होकर आँखें बन्द कर लीं। अवसाद और क्लान्ति के कारण नींद आने के बावजूद ठीक से सो नहीं सकी। इस रात के खत्म होते ही किस संभावना के साथ दिन की रोशनी देखूँगी, यह ईश्वर ही जानता है। बहुत देर तक बहुत-कुछ सोचने-विचारने के बाद अन्ततः इस निर्णय पर पहुँची हूँ कि विवेक से कोई प्रत्याशा नहीं रखूँगी। लेकिन अपने बारे में उसे निस्पृह पाऊँगी तो अवश्य ही मेरे मन को ठेस लगेगी। चाहे कोई जाने या न जाने लेकिन मैं मन ही मन विफलता की ग्लानि का अनुभव करूँगी। इस दुनिया में कोई भी हर कदम पर सफलता प्राप्त करना नहीं चाहता, लेकिन पराजय के अपमान और विफलता की ग्लानि से जरूर बचना चाहता है। मैं भी बचना चाहती हूँ।

सोचती हूँ, रात का अँधेरा खत्म होने के पहले ही दिल्ली पहुँच जाऊँ तो अच्छा रहे। आघात या दुःख पाने पर भी, हो सकता है कि किसी की निगाह में यह बात न आये। लेकिन ऐसा नहीं होगा। साढ़े पाँच बजे हवाई जहाज दिल्ली पहुँचेगा। उस समय जरूर ही दिन की रोशनी दिल्ली हवाई अड्डे पर फैली रहेगी। मोटे तौर पर पूरे योरोप के आसमान में सूरज का कार्यकाल और प्रभाव सीमित रहता है। आज की ही बात लें साढ़े सात बजे जब मैं बकिंघम पैलेस रोड के एयरवेज टर्मिनल में पहुँची तो उस समय भी दिन की रोशनी साफ-साफ दिखायी नहीं पड़ रही थी। वहाँ चूँकि अन्याय और अविचार या कोई विशेष अँधेरा नहीं है इसीलिए शायद सूर्य के प्रकाश की उतनी जरूरत नहीं पड़ती है।

से जब रवाना हुई उस समय चार-साढ़े चार बज रहे थे लेकिन सूर्य फीका पड़कर ढल चुका था।

इसके अलावा रात में हवाई अड्डे का सौंदर्य और ही तरह का लगता है। मुझे बड़ा ही अच्छा लगता है। शाम का अंधेरा जैसे ही उतर जाता है, हवाई अड्डा नयी दुलहन-सा सज जाता है। लंबे रनवे की रंगीन प्रकाश-माला नयी दुलहन के गले की मोती की माला जैसी लगती है। टैक्सी, ट्रक या एप्रेन के बड़े-बड़े फ्लड लाइट दूसरे-दूसरे गहनों जैसे लगते हैं। और सिर के ऊपर का विकन लाइट सिन्दूर के टीके जैसा लगता है। परिचय के मुख्य संकेत जैसा। एयरक्राफ्ट आते हैं और चले जाते हैं। खिड़कियों से धुँधली, खूबसूरत रोशनी दिखायी पड़ती है। ऊपर और नीचे की, सामने और पीछे की नैविगेशन रोशनियाँ जलती हैं और बुझती हैं। लगता है, ये लोग भी जैसे थोड़े-बहुत गहनों का ताम-झाम दिखाकर दुलहन को देखने आती हैं और चली जाती हैं। टर्मिनल बिल्डिंग जैसे विवाह-घर हो। चारों तरफ रोशनी ही रोशनी, व्यस्त आदमियों की भागदौड़, जगमगाते झलमलाते वस्त्र पहने आदमियों की भीड़। गाँवों, कस्बों, शहरों और नगरों में शाम की शक्ल और तरह की होती है और रात की शक्ल उससे बिलकुल भिन्न। रात गहराती है तो वह शक्ल भी बदल जाती है। लेकिन रात का हवाई अड्डा मानो उर्वशी हो—अनन्त यौवना उर्वशी। रात के किसी क्षण उसके यौवन में उतार नहीं आता है। रात नौ बजे बेरुत एयरपोर्ट से रवाना हुई लेकिन मेरी कलाई में यदि घड़ी न होती या किसी जादूगर ने यदि तमाम घड़ियों का समय बदल दिया होता तो भी बेरुत एयरपोर्ट के प्रति मेरे मोह में जरा भी कमी नहीं आती। जब दिल्ली पहुँचूँगी तो दुलहन को फिर देख नहीं पाऊँगी। विवाह-घर का भी कोई तामझाम बाकी नहीं रह जायेगा।

नींद आ रही है। आँखें बन्द हैं। फिर भी बीच-बीच में खुल जाती हैं। खिड़की से सुदूर आकाश को देख रही हूँ। तारे टिमटिमा रहे हैं। कहीं वे मुझे देखकर मुसकरा तो नहीं रहे? आहिस्ता-आहिस्ता सचमुच ही मैं नींद की बाँहों में खो गयी।

अचानक एक सपना देखते ही मेरी नींद टूट गयी। देखा, कि नहीं है, श्रीकान्त नहीं है, रंजन दिल्ली हवाई अड्डे पर मेरा स्वागत कर रहा है। उसके बाद वह मेरे कान में कहता है, "चलो, कुछ के लिए हम खो जायें।

मैंने गंभीर होकर कहा, "तुम्हारे हाथ से [illegible]
ही तो इतनी दूर आयी हूँ मगर…"

रंजन हँसने लगा; बोला, "हुमा, हिसाब में [illegible]
हूँ मगर अब सब ठीक हो जायेगा।"

"सच कह रहे हो ?"

उसने जैसे ही मुझे छुआ, मैं चिहुँक उठी [illegible]
गयी। झट से सीधी होकर मैं बैठ गयी और [illegible]
दौड़ायी। करीब-करीब सब लोग नींद में [illegible]
सीधे सामने की ओर चली गयी। [illegible]
घड़ी की ओर देखा। पांच बजकर पांच [illegible]

भोर हो गयी है। बहुतों से सुना है, [illegible]
लेकिन…

एप्रेन में आकर एयरक्राफ्ट स्थिर होकर खड़ा हो गया है। यात्रियों ने उतरना शुरू कर दिया है। मिस्टर वाल ने खड़े होकर कहा, "कम ऑन, लेट अस मूव।"

मैंने इशारे से उसे आगे बढ़ने को कहा। जान-सुनकर ही मैं पीछे रह गयी। उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता एयरक्राफ्ट से बाहर आ चारों तरफ दृष्टि दौड़ाने पर जब अपरिचित परिवेश और मनुष्य ही नजर आये तो मन उदास हो गया। स्वयं को असहाय जैसी महसूस करने लगी। लगा, यहाँ आकर गलती की।

अनमनेपन में डूबी, तरह-तरह की बातें सोचती हुई टर्मिनल बिल्डिंग में आयी। इमिग्रेशन काउन्टर पारकर कस्टम्स एनक्लोजर में आयी। एक हास्यकर छोटे कनवॉय के बेल्ट पर चढ़कर सरो-सामान आया। अपना सूटकेस लिए मैं एक कस्टम्स ऑफिसर के सामने आकर उपस्थित हुई। उसने पासपोर्ट देखा, मुझे देखा। उसके बाद सूटकेस के अन्दर के सामानों को टटोलते हुए पूछा, "एनीथिंग स्पेशल? एनी कलकुलेटर?"

"नहीं।"

सूटकेस टटोलने के बाद जब कुछ नहीं मिला तो उसने मुझे छुटकारा दे दिया। गेट पास हाथ में देते हुए कहा, "प्लीज चेंज योर फॉरेन कैरेन्सी फ्रॉम द स्टेट बैंक काउन्टर।"

धन्यवाद देकर स्टेट बैंक काउन्टर से स्टर्लिंग-पौण्ड के नोट देकर जैसे ही भारतीय कैरेंसी ली तो देखा कि नोटों का आकार बदल गया है। एक सौ और दस रुपये के नोट अब पहले की तरह नहीं हैं। बहुत-कुछ पौण्ड-डॉलर की तरह हो गये हैं। नोटों को बैग के हवाले कर एक-बार मिस्टर वाल को देखने की कोशिश की मगर भीड़ में वे दिखायी नहीं पड़े। कस्टम्स एनक्लोजर से बाहर आने के बाद दिग्भ्रान्त नाविक की तरह उम्मीद की हल्की रोशनी देखने के खयाल से चारों तरफ निगाह दौड़ायी। मेरी हम उम्र एक शादीशुदा स्त्री ने आगे बढ़कर मुझसे पूछा, "एक्सक्यूज मी, आप ही क्या रुणु हैं···"

जमीन पर खड़ी रहने के बावजूद मुझे लगा कि मेरा हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया है। विवेक नहीं आया? उसने शादी की है? लेकिन उसने तो मुझे कोई सूचना नहीं दी। पत्र पढ़कर लगता था कि वह मेरे बारे में सपना देख रहा है, मेरा इन्तजार कर रहा है।

शायद एक सकेण्ड का ही अरसा गुजरा होगा। इसी बीच हजारों प्रश्न मन में भीड़ लगाकर खड़े हो गये। विवेक ने क्या मुझे खेल का पुतला समझा था ?

मेरा सिर चकराने लगा। फिर भी किसी तरह स्वयं को संयत करते हुए मैंने हँसकर कहा, "आप अवश्य ही विवेकदा की पत्नी हैं ?"

"हाँ।"

"विवेकदा क्या दिल्ली में नहीं हैं ?"

"नहीं। अचानक जरूरी काम से⋯"

पूरी बात नहीं सुन सकी। सुनने की इच्छा हो नहीं हुई। बहुत सारे विवाहित लोगों में गन्दी इच्छा और अतृप्त कामना छिपी रहती है मगर विवेक भी इसी तरह का है, यह नहीं जानती थी। शास्त्र में लिखा है—स्त्रियों के चरित्र का पता ईश्वर तक को नहीं होता है, वह उसका चरित्र समझ नहीं पाता है। लेकिन ईश्वर अगर एक बार मिल जाता तो मैं कहती, "लालबाजार या स्कॉट लैण्ड यार्ड के जासूसों को तैनात कर एकबार पुरुषों के क्रिया-कलापों की जानकारी बटोरने के बाद ही स्त्रियों की निन्दा करते तो अच्छा रहता चाहे बहुत अधिक न भी हो लेकिन कम से कम सहृदय मैत्री की मैंने विवेक से अपेक्षा की थी। इस दुनिया में असंख्य आदमी हैं, परन्तु वक्षस्थल रहने के बावजूद हरेक में हृदय नामक चीज नहीं हुआ करता है। बहुतों से जान-पहचान हो सकती है लेकिन मित्र सचमुच मुश्किल से ही मिलते हैं।

"मेरे कारण आपको कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ा।"

विवेक की पत्नी हँस दी। बोली, "इसमें परेशानी की कौन-सी बात है ?"

"मैं कभी दिल्ली नहीं आयी थी इसीलिए⋯"

"चलिये, गाड़ी में चलते-चलते बातें होंगी।"

"बग़ल में ही एक पैण्ट-बुश्शर्ट पहने सज्जन खड़ा था। मेरे [illegible] आपत्ति करने के बावजूद उसने मेरा सूटकेस हाथ में उठाकर गाड़ी में रख दिया। गाड़ी के पिछले दरवाजे को खोलते ही हम दोनों अन्दर जाकर बैठ गयीं। उसके बाद जब वह सज्जन स्टियरिंग के सामने बैठ गया तो समझ गयी कि वह ड्राइवर है।

"विवेकदा ने मेरे लिए कोई होटल बुक करके रखा है ?"

उन्होंने हँसते हुए कहा, "हमारे यहाँ रहने के बजाय आप होटल में रहेंगी, यह क्या संभव है ?"

"आप बहुत तकलीफ उठा चुकी हैं, अब तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं। मैं होटल में ही...."

"यह असम्भव है। यदि मेरे यहाँ रहने में आपको तकलीफ होगी तो फिर चली जाइएगा।..."

सचमुच ही संभव नहीं हुआ। विवेक की पत्नी रेखा की आन्तरिकता के कारण एक-दो दिन नहीं, बल्कि एक सप्ताह दिल्ली में गुजार दिया। उसकी गाड़ी से ही आगरा और जयपुर का भ्रमण कर आयी। उसके बाद विवेक के पहुँचने के ठीक एक दिन पहले कलकत्ता रवाना हो गयी। एक दिन और रहने के लिए रेखा ने बहुत बार अनुरोध किया मगर मैं रुकी नहीं। मन ने नहीं चाहा कि विवेक से मिल लूँ।

हावड़ा स्टेशन पर उतरते ही मैंने और प्याली ने एक-दूसरे को पागल की तरह बाँहों में जकड़ लिया। आनन्द और उत्तेजना में कई मिनट गुजर गये। शान्त होने के बाद पूछा, "तू अकेले ही आयी है ?"

प्याली की बगल की ओर नजर जाते ही एक भले आदमी ने चेहरे पर हँसी ले, हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार करते हुए कहा, "वे अकेली नहीं आयी हैं, साथ में यह ड्राइवर भी आया है।"

मैंने हँसकर हाथ जोड़ते हुए नमस्कार किया। उसके बाद प्याली से कहा, "फिर तो तू अच्छी ही है।"

प्याली ने गर्व की मुसकराहट के साथ कहा, "बाहर से अच्छी ही लगती हूँ मगर क्या चीज लेकर घर-गृहस्थी चला रही हूँ, यह बात तुम्हें बाद में बताऊँगी।"

मिस्टर सरकार ने जरा झुककर प्याली से कहा, "इसका मतलब क्या यह है कि आज रात मेरा भविष्य अँधेरे में है ?"

"देख रही है रुणु, कितना असभ्य है।"

मैंने कहा, "प्लेटफार्म पर ड्राइवर से प्रेम करने के बजाय चलो हम घर चलें।"

डिकी में सरो-सामान रखने के बाद कौन कहाँ बैठेगा, इस संबंध में चर्चा छिड़ते ही मैंने कहा, "हम तीनों जने सामने ही बैठेंगे।"

मिस्टर सरकार ने कहा, "इस तरह के पैसेंजर रहें और ड्राइवरी करने में क्या आनन्द मिलता है!" अब उन्होंने मुझसे कहा, "आप ही बीच में बैठें।"

मैंने गंभीरता के साथ कहा, केवल आपकी बगल में बैठने से ही मेरा मन नहीं भरेगा।"

"भरेगा तो मेरा भी नहीं लेकिन लेट अस मेक ए बिगनिंग।"

"अभी तुरन्त या शाम के बाद?"

"उतनी देर तक क्या धीरज धारण किये रह सकूँगा?"

प्यालो बोली, "जानती है रुणु, लाख कहने पर भी मैं एक दिन के लिए भी इसे दफ्तर जाने से रोक नहीं सकी हूँ। तू आ रही है यह सुनकर एक महीने की वार्षिक छुट्टी ले ली।"

मैंने एक बार उन दोनों की ओर निगाह दौड़ाने के बाद कहा, "फिर तो मैं सैकड़ों बार बीच में ही बैठूँगी।"

मैं कभी हल्ला-हुड़दंग नहीं कर पाती हूँ परन्तु मौज मनाना मुझे अच्छा लगता है। जी खोलकर हँसना, खेलना और घूमना-फिरना मुझे अच्छा लगता है। जिस आनन्द का स्वाद मैं भूल चुकी थी, प्यालो को अपने निकट पाकर उसी आनन्द के सैलाब में बहने लगी।

बहुत दिनों बाद हावड़ा ब्रिज पर नजर पड़ने पर बहुत ही अच्छा लगा। और अच्छा लगा हजारों लाखों लोगों को देखना। लगा, इनमें से बहुतेरे व्यक्ति मेरे जाने-पहचाने हैं। एसप्लेनेड-चौरंगी में औरतों को देखकर लगा, इनमें से अनेकों मेरे साथ कमला गर्ल्स स्कूल या कॉलेज में पढ़ती थी। घर द्वार, आने-जाने वाले लोगों की ओर देख रही हूँ और बीते दिनों की बहुत सारी बातें याद आ रही हैं। माँ, बाबूजी और भैया की याद आ रही है। हर रविवार को बाबूजी हमें अपने साथ ले घूमने जाते थे और हमें आइसक्रीम खरीद देते थे। चूँकि मैं जल्दी-जल्दी आइसक्रीम नहीं खा पाती थी, इसलिए गल-गलकर मेरे फ्रॉक पर गिरने लगता था। माँ बिगड़ेंगी, यह सोचकर भैया झटपट हाथ से पोंछ देता था। उन दिनों भैया कितना अच्छा था! बाबूजी के मरने के बाद भी भैया के हाथ में कुछ पैसा आते ही वह मेरे लिए आइसक्रीम खरीदकर ले आता था। उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता बड़े होने पर हम दोनों भाई-बहन कितना चक्कर लगाते थे! और आज?

...या को मालूम भी नहीं है कि मैं कलकत्ता आयी हूँ। मालूम होता तो ...भी वह कहता कि चिट्ठी नहीं मिली है।

और भी कितना-कुछ याद आ रहा है! उदयन, प्याली और मैंने क्या कम चक्कर लगाये हैं! सिनेमा देखते थे। सिनेमा देखने के बाद बस-ट्राम पर सवार न होकर हम पैदल ही गपशप करते हुए घर लौटते थे। मेरे और प्याली के हाथ को हिलाते हुए उदयन कभी-कभी दबे हुए स्वर में गीत गाता था—

"सखी, प्यार किसे कहते हैं
सखी, यातना किसे कहते हैं
रात-दिवस तुम सब जो कहते
प्यार-प्यार रटते रहते हो
सखी, प्यार किसे कहते हैं!"

मैं हँसी रोककर कहती हूँ, "नहीं हुआ।"

उदयन जानना चाहता है, "क्यों?"

"उल्टोडांगा और दमदम से निकलकर ट्रेन अब बहुत दूर जा चुकी है। अब गाना होगा—

यह कैसी है तृष्णा, यह कैसा है दाह
अग्निलता ने लिपट-लपट कर
घेर लिया है प्यासे कंपित प्राणों को।
उत्तप्त हृदय
सर्वाङ्ग आना चाहता है टूटकर।"

तब बात-बात में हम 'गीति वितान' की पंक्तियाँ दुहराते थे। और अब? वे दिन कहाँ खो गये?

यह सब बातें मैं सोच रही हूँ, राह-बाट की ओर देख रही हूँ, लोगों की ओर निगाह दौड़ा रही हूँ। बीच-बीच में हम तीनों आपस में बातचीत भी करते हैं। एकाएक प्याली ने कहा, "अरे एक बात कहन... ही भूल गयी थी! रुणु, तेरी दो चिट्ठियाँ आयी हैं।"

"साथ ले आयी है?"

"नहीं। किसी जरूरी चिट्ठी के आने की बात है?"

"नहीं, जरूरी आनेवाली नहीं है। दो-चार व्यक्तियों पर कुछ क... की जिम्मेदारी सौंप आयी हूँ। शायद उन्हीं लोगों ने उसकी सूचना... है।"

समझ गयी कि विजया और श्रीकान्त के पत्र हैं।

गाड़ी रुकी। दोमंजिले से नौकर तेज कदमों से आया। हम तीनों ऊपर की ओर गये। चार कमरों वाला सुन्दर-सा फ्लैट। कमरे तसवीर की तरह सजे हुए हैं। एक बेडरूम का दरवाजा खोलते ही मिस्टर सरकार ने कहा, "यही मेरा और आपका कमरा है।"

मैंने हँसते हुए कहा, "मैंने सोचा था, आप और मैं शिलांग या दार्जिलिंग में छुट्टियां वितायेंगे।"

मिस्टर सरकार ने एक बार प्यालो की ओर देखा और उसके बाद बोले, "प्यालो ने इस कमरे को इतना सजा-सँवार कर रखा है, इसलिए कुछ दिन इसी कमरे में वितायें।"

मैंने गंभीरता के साथ कहा, "एग्रीड।"

"थैंक्स!"

गुसलखाने से मुँह-हाथ धोकर आने के बाद ड्राइंग रूम में बैठकर हम लोगों ने चाय पी। कलकत्ता और लन्दन के संबंध में बातचीत चलते-चलते प्यालो ने दोनों पत्र लाकर मुझे दिये। दोनों श्रीकान्त के पत्र हैं। इच्छा रहने के बावजूद उन लोगों के सामने नहीं खोला। सज्जन और संयमी होने के बावजूद उसने हियरो एयरपोर्ट पर जिस प्रकार मुझे विदा किया था, उस पर गौर करने के बाद पत्र खोलने का साहस नहीं हुआ। हो सकता है, उतने दिनों तक जो बात वह मुझसे कह नहीं सका था, उसे ही पत्र में लिख भेजा हो। एक बार एरोग्राम के चारों तरफ निगाह दौड़ाकर उपेक्षा के साथ उन पत्रों को अपनी बगल में रख दिया।

चाय पीना खत्म हो जाने के बाद मिस्टर सरकार अपने कमरे में चले गये। प्यालो रसोईघर की ओर चली गयी। डाकघर की मोहर देखकर पहली चिट्ठी खोली—सोचा था, तुम्हारे पहुँचने का जब तक समाचार नहीं मिल जाता है तब तक पत्र नहीं लिखूँगा मगर उतने दिनों तक धैर्य धारण करना संभव नहीं हो सका। इतने दिनों तक तुमसे हिलने-मिलने के बावजूद जो बात कह नहीं सका था, वही बात कहने के लिए मन छटपटा रहा है। मुझे लगता है, उस बात को न कहने के कारण ही तुम रूठकर भारत चली गयी हो। लौट आओ। जिस सूनेपन की पीड़ा तुम्हें बरदाश्त करनी पड़ रही है, सूनेपन की पीड़ा से मैं भी बेचैन हूँ। अब बरदाश्त नहीं कर पा रहा हूँ।

पत्र पढ़कर कई मिनटों के लिए न जाने मैं कहाँ खो गयी। दूसरे पत्र में भी वही बात है, वही स्वर। पत्र के अन्त में लिखा है, अटोवा से अशोकदा का पत्र मिलने पर पता चला कि तीनेक महीने पहले रंजन-दा की गाड़ी से एक दूसरी गाड़ी बुरी तरह टकरा गयी थी···

इस एक पंक्ति को पढ़ते ही मेरे हाथ-पाँव जड़ जैसे हो गये। सिनेमा के चित्रों की तरह मेरी आँखों के सामने विनाश के बहुत सारे दृश्य एक के बाद एक तिर आये। चिल्लाकर रोने की इच्छा होने के बावजूद मैंने जबरन स्वयं को संयत किया। उसके बाद पुनः पत्र पढ़ना शुरू किया—एक दो व्यक्ति हालांकि मौत के शिकार हो गये परन्तु रंजनदा जीवित हैं।

मन ही मन ईश्वर को कोटि-कोटि प्रणाम निवेदित किये बिना न रह सकी।

रात में खाना खाने के लिए बैठने पर मिस्टर सरकार से मैंने पूछा, "यहाँ एयर इंडिया का दफ्तर कहाँ है?"

"यहाँ एयर इंडिया का दफ्तर नहीं है।"

मैंने हँसते हुए कहा, "ठीक है, मैं टेलीफोन डाइरेक्टरी में देख लूंगी।"

प्याली ने पूछा, "वहाँ तुम्हें कोई काम है?"

मैंने कहा, "लौटने का रिजर्वेशन कराना है।"

"अभी रिजर्वेशन क्यों करायेगी?"

मैं उसे बता नहीं सकी कि मन में बड़ी ही बेचैनी का अहसास हो रहा है।

श्रीकान्त का दूसरा पत्र आया नहीं होता तो शायद कुछ दिन रुक जाती। लेकिन अब जल्द ही वापस चली जाऊँगी। जल्द से जल्द। कनाडा न भी जाऊँ तो लन्दन अवश्य ही जाऊँगी। उसके बाद देखा जायेगा। मैंने उससे यह सब नहीं बताया। बस, इतना ही कहा, "बहुत सारा काम अधूरा ही छोड़कर चली आयी हूँ। इसके अलावा कोई खास छुट्टी भी नहीं मिली है।"

मिस्टर सरकार बोले, "कम से कम एक-दो महीने तक तो मेरे साथ घर-गृहस्थी बसाये रहिएगा।"

मन की सारी बेचैनी को दबाकर मैंने कहा, "आपने सोचा है कि मैं अकेली ही लौट जाऊंगी?"

"मुझे ले चलिएगा ?"

"जरूर ले जाऊँगी। वरना इतना खर्च कर आती ही क्यों ?"

मिस्टर सरकार बोले, "फिर चलिये, अभी ही एयरइंडिया ऑफिस से हो आते हैं।"

"यहाँ आते ही पहले दिन इतनी रात में आप और मैं बाहर निकलेंगे तो प्याली को दुःख होगा। बेहतर है कि कल सवेरे चले चलेंगे।"

रात एक-डेढ़ बजे तक हम तीनों गपशप करते रहे। उसके बाद लेटे-लेटे प्याली और मैं कितने दिनों की कितनी ही बातें कहती-सुनती रहीं। रंजन की बात उसे मालूम थी। मैंने सूचित किया था। जो कुछ नहीं जानती और जो कुछ उसे जना नहीं सकी थी, वह सब भी बताया। श्रीकान्त की बात भी दबाकर नहीं रखी। बेड साइड लैंप जलाकर हैण्ड बैग से दोनों चिट्ठियाँ निकालकर उसे पढ़ने दी। इससे अलावा विजया के बारे में बताया।

प्याली ने भी बहुत कुछ बताया, "यकीन करो रुणु, शुरू के कुछ महीने मैं उसकी बगल में सो नहीं पाती थी। केवल उदयन की याद आती थी।"

"मुझे आज भी उसकी याद आ रही थी।"

"क्यों ?"

"एसप्लेनेड-चौरंगी-विक्टोरिया की बगल से आने के वक्त सिर्फ उन दिनों की बात याद आ रही थी।"

"सच ?"

"सच कह रही हूँ। जब भी बीते दिनों की याद दुहराती हूँ, मुझे उसकी याद आ जाती है। सोचती हूँ, एक बार यदि उससे मुलाकात हो जाती···"

एकाएक प्याली ने मुझे अपने सीने से चिपका लिया और कहा, "तू उससे मुलाकात करेगी ?"

मैंने उत्तेजना के साथ पूछा, "तुझसे उसकी मुलाकात होती है ?"

"साल में एक दिन।"

"कब ?"

"दस दिसंबर को।"

याद आया, प्याली का जन्म-दिन दस दिसबर है। उदयन कि

खुशियाँ मनाता था ! उन खुशियों का हिस्सेदार होकर मेरा मन भी परिपूर्ण हो जाता था। पूछा, "अब भी क्या उसी तरह..."

प्याली के चेहरे पर उदास हँसी तिर आयी। बोली, "नहीं। सवेरे उठकर माँ-बाबूजी को प्रणाम करने के लिए जाने के दौरान विक्टोरिया घूम-फिर लौट आती हूँ।

मैंने आश्चर्य से साथ पूछा, "वह वहाँ आता है ?"

"हाँ।"

"क्या कहता है ?"

"कोई बातचीत नहीं होती है।"

"क्यों ?"

"यकीन करो, हम दोनों एक भी शब्द नहीं बोलते

"फिर ?"

"मैं उसे प्रणाम कर टैक्सी में बैठ जाती हूँ।"

"तू अपनी गाड़ी से नहीं जाती है ?"

"नहीं।"

"उसने शादी की है ?"

"नहीं। उसने शादी नहीं की है इसीलिए उस दिन उसे प्रणाम किये बिना रह नहीं पाती हूँ।" बहुत धीरे-धीरे इन शब्दों को कहने के बाद एकाएक जोर से बोल उठी, "तू उससे मुलाकात करेगी ?"

"नहीं; रहे।"

"क्यों ?"

"मुलाकात होने पर उसका मन और उदास हो जायेगा।"

दूसरे दिन काफी वेला ढलने के बाद आँख खुली। नाश्ता करते-करते मिस्टर सरकार से पूछा, "आप कब सोकर उठे ?"

"सोया ही कब था जो उठूँ।"

"नींद नहीं आयी थी ?"

"बगल के कमरे में दो ज्वालामुखी पर्वत हो तो कहीं नींद आ सकती है ?"

नाश्ता खत्म होने के बाद हम तीनों एयर इंडिया आफिस गये। तीन-चार दिन बाद ही रिजर्वेशन मिलने जा रहा था मगर उनके कारण

बाध्य होकर दो सप्ताह के बाद का रिजर्वेशन कराया। दिल्ली से ट्रेन से आयी हूँ, डिलक्स एक्सप्रेस से। लौटने के लिए विमान का टिकट ही कटाया। घर लौटने के दौरान पोस्टऑफिस में खड़े-खड़े विजया और श्री कान्त को पत्र लिखा। उन्हें सूचित किया कि आगामी २१ तारीख शनिवार को एयर इंडिया फ्लाइट एक सौ ग्यारह से सवेरे ग्यारह बजे लन्दन पहूँचूंगी।

रिजर्वेशन करने के वक्त दो हफ्ता बड़ा ही लंबा समय लग रहा था। लेकिन दीघा और शान्ति निकेतन का चक्कर लगाने के बाद कलकत्ते में कुछ बंगला फिल्में देखते-देखते दिन समाप्त हो गये। 'वन पलाशी' पदावली' देखकर हॉल से निकलने के समय कहा, "फिर कब बंगला सिनेमा देखूंगी, कौन जाने !"

मिस्टर सरकार बोले, "यहाँ रह जाइये। सिर्फ सिनेमा ही नहीं देखिएगा बल्कि फिल्म की हिरोइन बना दूंगा।"

प्याली ने कहा, "हीरो कौन बनेगा ? तुम ?"

"फिर तुमने क्या यह सोचा है कि उत्तम कुमार ?"

मैंने कहा, "फिर तो हॉलीवुड जाना पड़ेगा।"

उस रात हम दोनों में से कोई सोयी नहीं। बात करते-करते ही रात कैसे बीत गयी, इसका पता नहीं चला। सवेरा होते ही प्याली ने लंबी साँस लेकर कहा, " तो तू फिर आज ही जा रही है !"

मैंने प्याली को अपनी बाँहों में भर लिया और हम दोनों रो दिये।

तीसरे पहर दमदम एयरपोर्ट आने पर गौर किया, मिस्टर सरकार की हँसी गायब हो गयी है। आँखें भी छलछला आयी हैं। सिक्यूरिटी चेकअप के पहले उनके हाथों को थाम कर मैंने कहा, "एक बार आप दोनों आयें। मेरा और तो कोई है नहीं।"

"आयेंगे।"

सिक्यूरिटी चेकअप के लिए अन्दर घुसने पर भी एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखे बिना रह नहीं सकी। देखा, प्याली रो रही है और मिस्टर सरकार रूमाल से आँखें पोंछ रहे हैं।

हियरो !
लन्दन !

हेल्थ इमिग्रेशन पार करने के बाद ही देखा, श्रीकान्त खड़ा है। उसकी गोद में एक गोरा-चिट्टा खूबसूरत बालक है। चार-पाँच साल का। दोनों पैर और एक हाथ में पलस्तर है। श्रीकान्त ने हौले से बच्चे को मेरी गोद में रख दिया। एकाएक रुलाई की आवाज सुनकर चिहुँक उठी। देखा, रंजन एक किनारे खड़ा है और रो रहा है।

"तुम !"

"इस मातृहीन शिशु को लेकर और कहाँ जाऊँगा रुणा ?"

मैंने रोते हुए कहा, "मैं तो हूँ। वह मातृहीन क्यों होगा ?"

गहरे कोहरे से भरा लन्दन का आसमान एकाएक रोशनी से जगमगा उठा।